प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक मे पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. द्वारा अपने प्रवचनो मे प्रसगोपात्त उल्लिखित कथाओ, रूपको या उदाहरणों का सकलन किया गया है। आचार्य श्री जी, अपने प्रवचनों के बीच विविध उदाहरणों और उक्तियो का उपयोग करके प्रतिपाद्य विषय को सजीव और सप्राण बनाने की कला में पारगत थे और उनका उपसहार इस अनूठी शैली मे करते थे कि श्रोताओं के हृदयों पर उसका सीधा असर हुए बिना नही रहता था।

कथा-कहानियो का लोक मे सदैव महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। विश्व के किसी भी समय के साहित्य को देखें तो उसका बहुत बडा अश कथा-कहानियों एव उदाहरणो से समलकृत, मिलेगा और ऐतिहासिक तथ्यो को प्रस्तुत करने के साथ-साथ मानव को विकास हेतु प्रेरणा दी है।

शिक्षण के क्षेत्र मे भी इनकी उपयोगिता सर्वोपरि है। छोटे-छोटे बच्चे कहानी पढ या सुनकर, उससे मिलने वाली सीख को शीघ्रातिशीघ्र हृदयगम कर लेते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक उदाहरणमाला मे सकलित उदाहरणो का जवाहर साहित्य मे अपना अनूठा स्थान है। आचार्य श्री जी के विद्वत्ता पूर्ण विचारो को पूर्णरूपेण आत्मसात करने में असमर्थ पाठकों के लिये यह सग्रह बहुत ही उपयोगी है और बालको को भी नीति की शिक्षा देने मे सक्षम होगा।

उदाहरणमाला के प्रथम और द्वितीय भाग की तरह इस तृतीय भाग का प्रथम सस्करण समाज के अग्रगण्य स्व० सेठ

श्री इन्द्रचन्द जी गेलड़ा कुचेरा निवासी द्वारा अपनी मातुश्री गणेश बाई की पुण्य स्मृति में श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर को प्रदत्त ११११११०० में से साहित्य प्रकाशन के लिये ६०१०.०० रुपये से हुआ था और मूल रकम को कायम रखते हुए नया-नया साहित्य प्रकाशित करने की नीति के अनुसार इस द्वितीय संस्करण का प्रकाशन पुनः उसी रकम से हो रहा है।

पुस्तक प्रकाशन में श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ और उसके द्वारा संस्थापित, संचालित जैन आर्ट प्रेस के कार्यकर्ताओं के सक्रिय सहयोग लिये सधन्यवाद आभारी हैं।

भीनासर — संघ सेवक

सं. २०२५ मिती मार्गशीर्ष शुक्ला १५ — चम्पालाल बांठिया

दि० ४-१२-६८ — मंत्री- श्री जवाहर साहित्य समिति

अनुक्रमणिका

१.	अध्यवसाय	१
२.	सज्जन स्वभाव	३
३.	हृदय बल	३
४.	शिक्षा	५
५.	प्यासा	१०
६.	कुम्भ कलश	११
७.	सच्चा सुख	१३
८.	साँप का ज़हर	१५
९.	धर्म का फल	१६
१०.	बहिरात्मा	२२
११.	साकार से निराकार की ओर	२४
१२.	परसुख मे अपना दुख	३०
१३.	जिंदगी के गुलाम	३५
१४.	सोऽहं	३६
१५.	बेबुनियाद	३९
१६.	मूल का सुधार	४१
१७.	अन्धापन	४२
१८.	कर्त्तव्य-पथ	४३
१९.	मोह का छाला	५०
२०.	फकीरी और अमीरी	५२
२१.	धार्मिक की पहिचान	५४
२२.	अन्याय का धन	५७
२३.	सरलता	५९

२४. ईमानदार मुनीम ६२
२५. फूलां बाई ६६
२६. माता–पिता का उपकार ७६
२७. विद्वान और मूर्ख ८३
२८. राजा और चोर ८७
२६. वक्ता ६६
३०. कषाय विजय १०२
३१. ईमानदार श्रावक १०८
३२. दोष–स्वीकृति १०६
३३. पोथी का बेंगन १२१
३४. झूठी साक्षी १२४
३५. अक्षय तृष्णा १३०
३६. माया १३२
३७. पुण्य का प्रताप १३४
३८. खरा–खोटा १३८
३६. तत्त्व-ज्ञान १४२
४०. परिग्रह १४५
४१. जाट-जाटिनी १४६
४२. लज्जा १५१
४३. खान-पान की शुद्धि और सामायिक १५८
४४. भार १६०
४५. मिश्री का हीरा १६३
४६ कर्तव्य पालन १७०
४७. निष्काम-सेवा १७३
४८. ढोंग १७८
४६. समभाव १८२
५०. लेश्या १८६
५१ जीते-जी पुनर्जन्म १८६
५२. नीरवन्य-नाश १६३

५३. माँ-बाप सावधान १९५
५४. विवेकहीनता १९८
५५. चमार गुरु २००
५६. परमात्म-प्रीति २०५
५७. लक्ष्मी २०८
५८. ठसक का रोग २१३
५९. हठ २१५
६०. महल का द्वार २१६
६१. पतिव्रता २१८
६२. आप मरे बिना स्वर्ग नही मिलता २२१
६३. वीर २२४
६४. व्यापार की बेईमानी २२५
६४. आत्म निरीक्षण २२९
६६. सभ्य चोरी २३०
६७. परोपकारी २३२
६८. मनोयोग २३९
६९. स्वामी नही, ट्रस्टी २४२
७०. समझदारी २४४
७१ अदृश्य-शक्ति २४६
७२. दूसरा विवाह २४८
७३. चार ब्राह्मण २४९
७४. छोटा और बडा २५०
७५. सत्य निष्ठा २५१
७६. सत्य भाषण २५७
७७. अंतिम अवस्था २६४
७८ असलियत २६५
७९. मृतक भोज २६७
८० समय का मोल २६९
८१. श्रद्धा २७५

८२.	ऊँची भावना	२७६
८३.	पाप-पुण्य	२७७
८४.	यह भी न रहेगी	२७८
८५.	मच्छीमार साधु	२८०
८६.	शरणागत प्रतिपाल	२८२
८७.	वफादार	२८३
८८.	पचों का मकान-शरीर	२८६
८९.	सौ-सयाने एक मत	२८९
९०.	अस्पृश्यता का अभिशाप	२९१
९१.	माया की महिमा	३०२
९२.	भ्रम का अनर्थ	३०३

१ : अध्यवसाय

एक नगर मे दो मित्र रहते थे। उसी नगर मे कुछ महात्मा भी आये थे और वेश्या भी आयी थी। एक ही समय पर एक जगह तो महात्मा का उपदेश होने वाला था और दूसरी जगह वेश्या का नाच। एक मित्र ने दूसरे मित्र से कहा कि चलो उस नयी आई हुई वेश्या का नाच देखने चलें। दूसरे मित्र ने कहा— नहीं, मैं नाच देखने नही चलूंगा, मैं महात्मा का उपदेश सुनने जाऊँगा। दोनो मित्र अपनी-अपनी रुचि के अनुसार दोनो स्थानो पर गये।

वेश्या का नाच हो रहा था। वेश्या चारो ओर घूम-घूम कर कटाक्षपूर्वक सब की ओर देखती हुई नाच रही थी। लोग वेश्या की प्रशंसा के पुल बांधे देते थे। उसी समय वह मित्र उस नाच की महफिल मे पहुचा। वेश्या को इस प्रकार नाचने और लोगों को उसकी प्रशंसा करते देखकर उस मित्र को विचार हुआ कि आत्मा तो इस वेश्या का भी शुद्ध है, परन्तु न मालूम किन पापो के कारण इसके आत्मा पर अज्ञान का आवरण है। इसी से यह अपने इस सुन्दर शरीर को विषय-भोग मे लगा रही है और थोडे से धन के लोभ मे अपना शरीर कोढी को सौंपने मे भी सकोच नही करती है। हाय ! हाय !! यह तो साक्षात् ही नरक की खान है। ये देखने वाले भी कैसे मूर्ख हैं, जो इसके चारो ओर इस प्रकार लगे हुए हैं, जैसे मरे हुए पशु को कुत्ते घेर लेते है। यद्यपि यह वेश्या किसी व्यक्ति विशेष को नही देखती है—सबको उल्लू बनाने के लिये उनकी तरफ देखती है—फिर भी ये सब लोग अपने-अपने मन मे यही समझ रहे हैं कि यह मुझे ही देख रही है।

मैं इस पापस्थान में कहाँ आ गया ! मित्र ने कहा था, फिर भी मैं महात्मा का उपदेश सुनने के लिये नही गया । धन्य है मित्र को ! जो इस समय महात्माओ के पास बैठा हुआ धर्मोपदेश श्रवण कर रहा होगा और अपना कल्याण साधता होगा ।

वेश्या की महफिल मे गया हुआ मित्र तो इस प्रकार विचार कर रहा है तथा महात्माओं का उपदेश सुनने के लिए गये हुए मित्र को धन्य मान रहा है, परन्तु जो मित्र महात्मा के समीप गया था, वह कुछ और ही विचारता है । जिस समय वह महात्माओ के समीप पहुँचा, उस समय महात्मा लोग विषयो के प्रति घृणोत्पादक वैराग्य का उपदेश सुना रहे थे । इस मित्र को महात्माओ का उपदेश रुचिकर नही हुआ, इससे वह अपने मन मे कहने लगा कि मैं कहाँ आ गया ! मित्र ने कहा था, फिर भी मैं नाच देखने नही गया । धन्य है मित्र को, जो इस समय महफिल मे बैठा हुआ आनन्द मे नाच देख रहा होगा और गाना सुन रहा होगा ।

दोनों मित्र इस प्रकार अपने-अपने मन मे विचार कर रहे हैं और अपनी निन्दा करते हुए दूसरे मित्र की प्रशंसा कर रहे हैं। वेश्या के यहाँ गया हुआ मित्र, वेश्या के नाच को घृणा-पूर्वक देखता है, उसका मन साधुओ के उपदेश मे लगा हुआ है, और साधुओ के यहाँ गये हुये मित्र का मन वेश्या के नाच मे लगा हुआ है तथा वह नाच देखने के लिये गये हुए मित्र की प्रशंसा कर रहा है । इस तरह वेश्या के नाच —जो पापस्थान है, मे बैठा हुआ मित्र तो पुण्य-प्रकृति बाध रहा है और साधु के स्थान—जो धर्मस्थान है, मे बैठा हुआ मित्र पाप-प्रकृति बांध रहा है । क्योंकि पाप, पुण्य या धर्म अध्यवसाय पर निर्भर हैं और वेश्या के नाच मे बैठे हुए मित्र के अध्यवसाय अच्छे तथा साधुओ के उपदेश स्थान मे बैठे हुए मित्र के अध्यवसाय बुरे हैं ।

२ : सज्जन स्वभाव

एक ब्राह्मण गगा के किनारे खडा हुआ था। किनारे के वृक्ष पर एक बिच्छू चढा था। वह गगा के जल मे गिर पडा और तडफड़ाने लगा। यह देखकर ब्राह्मण को दया आ गई। उसने एक पत्ता लेकर बिच्छू को उठाया। लेकिन बिच्छू हाथ पर चढ़ गया और उसने हाथ मे डंक मार दिया। डक लगते ही ब्राह्मण का हाथ हिल गया और बिच्छू फिर पानी मे गिर पडा। ब्राह्मण ने उस विच्छू को फिर उठाया लेकिन फिर भी ऐसा ही हुआ। ब्राह्मण ने तीन–चार बार बिच्छू को उठाया लेकिन हरबार बिच्छू ने उसे काटा। यह हाल देख कर वहाँ खडे, कुछ लोग कहने लगे यह ब्राह्मण कितना मूर्ख है! बिच्छू इसे बार–बार काटता है और यह उसे बार–बार उठाता है! उसे मरने क्यो नहीं देता?

इन लोगो के कथन के उत्तर मे ब्राह्मण ने कहा—बिच्छू अपना स्वभाव प्रकट कर रहा है और मैं अपना स्वभाव दिखला रहा हू। जब विच्छू अपना स्वभाव नहीं त्यागता तो मैं अपना स्वभाव कैसे त्याग दू ?

३ : हृदयबल

सुना है, एक अमेरिकन पुरुष भारत में आया। एक भार-तीय से उसकी मित्रता हो गई। अमेरिकन अपना कार्य समाप्त

करके अमेरिका लौट गया। उसका वह भारतीय मित्र जब अमेरिका गया तब उसने अपने अमेरिकन मित्र से मिलने का विचार किया। वह उसके घर पहुंचा। साहब उस समय घर नही था। उसकी पत्नी ने भारतीय अतिथि का सत्कार करके उसे बिठलाया। भारतीय ने पूछा— साहब कहाँ गये हैं? मेम साहिबा ने कहा— आप बैठिये, अब उनके लौटने मे कुछ ही समय बाकी है। आते ही होंगे।

भारतीय सज्जन बैठे रहे। थोडी देर बाद ही उन्होने देखा कि साहब आ रहे हैं मगर उनके दोनों कन्धो पर दो कुदाल रखे हैं और वे मिट्टी से लथपथ हैं। भारतीय सज्जन मन ही मन सोचने लगे— भारत मे यह इतने ऊंचे पद पर कार्य करता था और बडे ठाट से रहता था। यहाँ इसका यह कैसा हाल है? क्या इसका दीवाला निकल गया है? इस प्रकार सोचते हुए वह भारतीय उससे मिलने के लिए आगे बढे। उन्होंने साहब का अभिवादन किया। मगर साहब उनसे कुछ भी न बोले। जब साहब की लडकी ने उन्हें पानी दिया और साहब स्नान करके अपनी बैठक मे आये, तब वह अपने मित्र से मिले।

भारतीय मित्र ने साहब से पूछा—आप भारत मे तो बडे पद पर थे। अब यहाँ इस प्रकार क्यों रहना पड़ता है! साहब बोले—हम लोग भारतीयों सरीखे नही हैं। भारतीय तनिक आगे बढे कि वास्तविकता को और अपने असली धंधे को भूल जाते है। हम लोग नहीं भूलते। खेती करना हमारे बाप-दादों का धंधा है। मैं जब तक भारत मे था, दूसरा काम करता था। लेकिन जब यहाँ आया हूँ तो अपने पैतृक धंधे मे लगा हूं।

इस प्रकार की विचारधारा हृदयबल से ही उत्पन्न होती है। भारतीय लोग हृदयबल को जल्दी भूल जाते हैं इस कारण जहाँ कोई बी० ए० एल-एल० बी० होता है कि दो—चार

आदमियो के लिए भी भारभूत हो जाता है। कारण यही है कि उसका हृदयबल दब जाता है और मस्तिष्क का बल उमड आता है।

५ : शिक्षा

एक राजा था। उसके एक लडका था, जो गुरुकुल मे शिक्षा प्राप्त करता था। इधर राजा को अपने शरीर पर कुछ ऐसे चिन्ह दिखाई दिये जो वृद्धावस्था के द्योतक थे। उन चिन्हों को देखकर राजा ने विचारा कि बुढापे का नोटिस आ गया है, इसलिये मुझे कोई ऐसा काम करना चाहिये, जो भावी सन्तान के लिए आदर्श-रूप भी हो और जिसके करने से मेरे आत्मा का भी हित हो। इसलिये मुझे राजपाट राज-पुत्र को सौंप कर दीक्षा ले लेनी उचित है।

इस प्रकार निश्चय कर, राजा ने प्रधान को बुला कर अपने विचार प्रकट करते हुये राजकुमार के राज्याभिषेक की तैयारी करने का हुक्म दिया। सारे नगर मे यह समाचार फैल गया कि राजा अपने राजपाट का भार पुत्र को सौंप कर आप दीक्षा ले रहा है। होते-होते यह खबर उस गुरुकुल मे भी पहुची, जिसमें कि कुमार पढ रहा था। कुमार को पढाने वाले शिक्षक ने विचार किया कि राजकुमार कल राजा बनेगा, लेकिन अभी इसे वह शिक्षा तो देनी रह ही गई है, जिस शिक्षा से जनता का हित होने वाला है। आज तो मैं इसका गुरु हूं और यह मेरा विद्यार्थी है। आज मैं इसे जैसी और जिस तरह चाहूं शिक्षा दे सकता हूं, परन्तु कल

जब कि यह राजा हो जाएगा इसे कुछ न तो कह ही सकूंगा, न यह मानेगा ही । इसे जो शिक्षा देनी है, वह कई दिन मे दी जाने की है और यह मेरे पास केवल आज भर है । कल तो चला ही जायगा । अब बहुत दिन मे दी जाने वाली शिक्षा इसे आज ही कैसे दे दू ?

शिक्षक इस चिन्ता में पड गया । सोचते-सोचते उसने यह उपाय सोच लिया, जिससे कुमार को वह आज ही मे शेष शिक्षा दे सके । उसने कुमार को एकान्त में बुलाकर उसके हाथ-पैर बांध दिये और एक बेंत से खूब पीटा । राजकुमार एक तो सुकुमार था, दूसरे उसने मार के नाम पर कभी एक थप्पड भी नही खाया था, इसलिये उसे शिक्षक का उक्त व्यवहार बहुत दुखदायी हुआ । उसके शरीर की चमडी निकल आई । वह अपने मन मे, दुख करने के साथ ही शिक्षक के विषय मे बहुत से बुरे सकल्प कर रहा था । यद्यपि इस मार से राजकुमार को बहुत पीडा हुई, परन्तु शिक्षक ने उसे इतने मे ही नही छोडा, अपितु एक अन्धेरी कोठरी मे बन्द कर दिया । निश्चित समय तक राजकुमार को एक कोठरी मे बन्द रखकर शिक्षक ने उसे कोठरी से निकाला और अपने शिष्यों के साथ उसे उसके घर भेजकर राजा से कहलवा दिया कि तुम्हारा पुत्र सब शिक्षा प्राप्त कर चुका है, अत शिक्षक ने इसे आपके पास लौटा दिया है ।

राजकुमार अपने पिता के पास पहुंचा । अपने शरीर को बताते हुए उसने राजा से शिक्षक के निर्दयतापूर्ण व्यवहार की शिकायत की । पुत्र के शरीर पर मार के चिन्ह देख और उसकी शिकायतें सुनकर राजा को शिक्षक के ऊपर बहुत ही क्रोध हुआ । उसने उसी क्रोधावेश में यह आज्ञा दी कि शिक्षक को पकड कर फांसी लगा दी जावे ।

राजा की आज्ञा पाकर राज-सेवक शिक्षक को पकड़ लाये ।

शिक्षक अपने मन मे समझ गया कि यह सजा राजकुमार को शिक्षा देने की ही है। उसने राजकर्मचारियो से पूछा कि मैं क्यो पकड़ा जाता हू ? उन्होंने उत्तर दिया कि यह हम नही जानते, परन्तु राजा की आज्ञा तुम्हे फाँसी देने की है। अत. तुम फाँसी पर चढने को तैयार हो जाओ।

फाँसी के समय नियमानुसार शिक्षक से उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गई। शिक्षक ने कहा कि मेरी इच्छा केवल यही है कि मैं राजा से मिलकर एक बात पूछ लूँ। अधिकारियो ने शिक्षक की इस इच्छा की सूचना राजा को दी। राजा ने पहिले तो यह कह कर कि ऐसे आदमी का मुँह नही देखना चाहता, शिक्षक से मिलना अस्वीकार कर दिया, परन्तु अधिकारियो के समझाने-बुझाने पर उसने शिक्षक से मिलना और उसकी बात का उत्तर देना स्वीकार कर लिया।

शिक्षक को राजा के सामने लाया गया। राजा को शिक्षक का प्रसन्न चेहरा देखकर आश्चर्य हुआ। शिक्षक के चेहरे से यह ज्ञात होता था कि जैसे इसे मरने का दु:ख नही, किन्तु सुख है। राजा ने शिक्षक से कहा कि तुम क्या कहना चाहते हो ? कहो ! शिक्षक ने कहा कि मैं आपके पास प्राण-भिक्षा के लिये नही आया हूँ। मुझे, फासी लगने का किंचित् भी भय नही है। मैं केवल आपसे यह जानना चाहता हूँ कि आपने मुझे किस अपराध पर फासी का हुक्म दिया है ? सब को मेरा अपराध मालूम हो जाना अच्छा है, नही तो मुझ पर यह कलक रह जावेगा, कि शिक्षक ने न मालूम कौनसा गुप्त अपराध किया था, जिससे उसे फासी दे दी गई।

शिक्षक की इस बात ने तो राजा का आश्चर्य और भी बढ़ा दिया। वह विचारने लगा, कि यह भी कैसा विचित्र आदमी है, जो मरने से भय नहीं करता है ? उसने शिक्षक की बात के

उत्तर मे कहा कि क्या तुमको अपने अपराध का पता नही है ? तुमने कुमार को बड़ी निर्दयतापूर्वक पीटा और कोठरी मे बन्द कर दिया, फिर अपराध पूछते हो !

राजा के उत्तर के प्रत्युत्तर मे शिक्षक ने कहा कि मैने तो कुमार को नही मारा ! शिक्षक की यह बात सुनकर राजा का आश्चर्य क्रोध मे परिणत हो गया। वह, शिक्षक तथा वहां पर उपस्थित लोगो को कुमार का शरीर दिखाकर कहने लगा कि मैं शिक्षक की अब तक की बात से तो प्रसन्न हुआ था, परन्तु अब यह मरने के भय से झूठ बोलता है। देखो, इसके शरीर पर अब तक मार के चिह्न मौजूद है, फिर भी यह कहता है कि नही मारा।

राजा ने कुमार के मुह से घटना की समस्त बातें कहलवाई। सब लोग शिक्षक की निन्दा करते हुए कहने लगे कि वास्तव मे इसने फासी का ही काम किया है। शिक्षक ने कहा कि मैंने इसे मारा जरा भी नही है, जिसे आप मार कहते हैं वह तो मैंने शिक्षा दी है। यदि शिक्षा देने के पुरस्कार मे ही आप मुझे फासी दिलवाते हैं, तो यह आपकी इच्छा। मुझे आपसे इतनी बात करनी थी, अब आप मुझे फासी लगवा दीजिये।

शिक्षक की बात ने तो सभी को आश्चर्य मे डाल दिया। राजा ने शिक्षक से कहा कि तुम्हारी इस बात का अर्थ समझ मे नहीं आया, कि तुमने इसको इतना कष्ट दिया और फिर कहते हो कि मैंने मारा नही, किन्तु शिक्षा दी है ? बतलाओ कि तुम्हारे इस कथन का रहस्य क्या है ? शिक्षक कहने लगा, कि मुझे मालूम हुआ कि राजकुमार कल राजा होगा। मैंने विचारा कि कुमार अब तक सुख मे ही रहा है, दुःख का इसे किंचित् भी अनुभव नहीं है। इससे यह राज्याधिकार से मत्त होकर बिना विचार किये ही प्रजा मे से किसी को कैद करने की आज्ञा देगा। यह इस बात का

विचार नही करेगा कि मारने, बांधने और कैद करने से इसे कैसा दुःख होगा ! इस प्रकार विचार कर मैंने निश्चय किया कि कुमार को इसका अनुभव करा दिया जावे, जिसमे यह आज्ञा देते समय अपने अनुभव पर से दूसरे के कष्ट को जान सके और विचार कर आज्ञा दे। यद्यपि यह मैं पहिले ही जानता था कि कुमार को जो शिक्षा मैं दे रहा हू, इसके बदले में सम्भव है कि मुझे फांसी की सजा भी मिले। लेकिन इसके लिए मैंने यही निश्चय किया कि मेरी फासी से अनेको आदमी कष्ट से बचेंगे, इसलिए मुझे फासी का भय न करना चाहिये और कुमार को शिक्षा दे देनी चाहिये। यही विचार कर मैंने कुमार को शिक्षा दी है, कुमार को मारा नही।

शिक्षक की बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। वह शिक्षक की प्रशसा करने लगा कि तुमने वह काम किया है जिसके विषय में मुझे अब तक चिन्ता थी, तुमने मुझे चिन्तामुक्त कर दिया। यद्यपि तुम्हारे इस कार्य से प्रसन्न होकर मुझे उचित था कि मैं तुम्हे पुरस्कार देता, परन्तु मैं इस रहस्य को अब तक न जान सका था इसलिए मैंने तुम्हे फासी देने की आज्ञा दे दी। अब मैं तुम्हें फांसी देने की अपनी आज्ञा को वापिस लेता हूँ और इस ग्राम की जागीर देकर तुम्हारे सिर पर यह भार देता हूँ कि जिस तरह इस बार तुमने अपने प्राणो की परवाह न करके कुमार को शिक्षा दी है, इसी प्रकार सदा शिक्षा देते रहना। राजा की बात के उत्तर मे शिक्षक ने कहा कि आपकी यह आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु मैं जागीर नहीं ले सकता। यदि जागीर लूंगा तो फिर आपकी आज्ञा का पालन नही कर सकूंगा। क्यो कि तब मैं शिक्षक न रहूँगा किन्तु गुलाम होऊंगा। मुझे अपनी जागीर छिन जाने का सदा भय बना रहेगा, जिससे मैं सच्ची बात न कह कर ठकुर-सुहाती बात कहूगा।

५ : प्यासा

एक आदमी गगा के किनारे खडा रो रहा था। वह इतने जोर से रो रहा था कि राहगीरो को भी उस पर दया आ जाती थी। किसी राहगीर ने उससे पूछा—भाई, रोते क्यो हो ? तुम्हे क्या कष्ट है ?

रोने वाला रोते-रोते बोला—मुझे जोर की प्यास लग रही है।

राहगीर—तो रोने से मतलब ? सामने गगा बह रही है। निर्मल जल है। शीतल है, मधुर है। पी ले। प्यास बुझा ले।

रोने वाले ने कहा—हाय ! गगा-जल पीऊं कैसे ? गगा की धारा इतनी चौडी है और मेरा मुंह जरा-सा है। यह धारा मुंह मे समाएगी कैसे ?

राहगीर का करुणा-रस हास्य-रस मे परिवर्तित हो गया। उसने हंसते हुये कहा—मूर्खराज, तुझे अपनी प्यास मिटाने मे मतलब है या गगा की धारा मुंह मे भरने से ? अगर तू इसी विचार मे डूबा रहेगा तो प्यास का मारा प्राण खो बैठेगा। न गंगा की धारा इतनी छोटी होगी कि तेरे मुंह मे समा जाय, न तेरा मुंह इतना बड़ा होगा कि यह उसे अपने भीतर घुसेड सके।

तात्पर्य यह है कि आजकल अनेक लोग तो हिंसा की व्यापकता को देखकर उससे जरा भी निवृत्त होने की चेष्टा नहीं करते और कुछ लोग सूक्ष्म हिंसा को अपनी जवाबदेही समझते हैं। ऐसे लोग न स्थूल हिंसा से बच पाते हैं, न सूक्ष्म हिंसा से ही। वे न इधर के रहते हैं, न उधर के रहते हैं।

६ : कुम्भकलश

एक मनुष्य ने, एक सिद्ध की सेवा करके उसे प्रसन्न किया। सिद्ध ने प्रसन्न होकर उस मनुष्य से कहा, कि मेरे पास कुम्भकलश भी है और कुम्भकलश बनाने की विधि भी मैं जानता हूं। कुम्भ-कलश में यह गुण है किसी भी वस्तु की इच्छा करने पर वह वस्तु उस कुम्भकलश से उसी समय प्राप्त हो जावेगी और कुम्भकलश बनाने की विधि जानने पर जब चाहो तभी कुम्भकलश बन सकता है। यदि तुम चाहो तो मेरे से कुम्भकलश ले सकते हो और यदि चाहो, तो कुम्भकलश निर्माण की विधि सीख सकते हो।

सिद्ध की बात सुनकर सिद्ध के सेवक ने विचार किया, कि प्रत्यक्ष लाभ को छोडकर अप्रत्यक्ष लाभ के पीछे दौडना मूर्खता है। कुम्भकलश से तो मैं अभी ही लाभ उठा सकता हूं परन्तु कुम्भकलश बनाने की विधि सीखने पर अभी लाभ नहीं उठा सकता। इसके सिवाय क्या ठीक है, कि उस विधि से कुम्भकलश बन ही जावेंगे। इसलिये यही उत्तम है, कि मैं सिद्ध के पास वाला कुम्भकलश ले लूं।

इस प्रकार विचार कर उसने सिद्ध से कुम्भकलश ले लिया और प्रसन्नमन घर को आया। घर आकर उसने अपने सब कुटु-म्बियो से कह दिया, कि अब अपने को न तो कोई काम करने की ही आवश्यकता है, न चिन्ता करने की ही। इस कुम्भकलश से जो वस्तु चाहेंगे, यह वही वस्तु देगा। इसलिए अब कोई काम मत करो और जो कुछ चाहिए, वह इस कुम्भकलश से मांगकर आनन्द उड़ाओ।

कुटुम्ब के सभी लोग, कुम्भकलश के आश्रित हो गये।

उन्होंने, खेती वाडी, पीसना-कूटना, वाणिज्य-व्यापार आदि सब कुछ छोड दिया। सभी लोग अकर्मण्य वन कर उस कुम्भकलश से मांग-मांग कर खाने लगे और इस प्रकार के जीवन को आनद का जीवन मानने लगे। कुम्भकलश से वे जो कुछ चाहते, कुम्भकलश उन्हे वही वस्तु देता।

एक दिन सब ने उस कुम्भकलश से अच्छी से अच्छी मदिरा मांगी। कुम्भकलश से मिली हुई मदिरा को सब लोगों ने खूब पिया और उसके नशे मे मस्त वन गये। फिर उस कुम्भ-कलश को एक आदमी के सिर पर रखकर सब लोग नाचने लगे। शराब मे मस्त होने के कारण उस समय उन लोगों को त्रैलोक्य की भी पर्वाह नहीं थी, तो कुम्भकलश की परवाह वे क्यों करने लगे थे! कुम्भकलश को सिर पर रख कर उपेक्षा-पूर्वक नाचने और आपस मे धौल-धप्पे करने से कुम्भकलश सिर पर से गिरकर फूट गया। कुम्भकलश के फूटते ही उन लोगो का नशा भी उतर गया। जिस कुम्भकलश की कृपा से अब तक कार्य चल रहा था वह तो नष्ट हो गया और जिन उपायों से कुम्भकलश मिलने के पहले जीवन निर्वाह होता था, उन्हें वे लोग भूल गये थे तथा उनके साधन भी नष्ट हो गये थे, इसलिये वे सब लोग एक साथ ही कष्ट मे पड गये।

मतलब यह, कि जो कुम्भकलश फूट गया है, उसके बनाने की विधि यदि उन लोगों में से किसी को मालूम होती, तो उन लोगों को कष्ट मे न पडना पडता। इसलिए पदार्थ देकर सुख देने की अपेक्षा, सुख-प्राप्ति का उपाय बताना बहुत बडा उपकार है। साधु लोग यही उपकार करते हैं। वे पदार्थ द्वारा सुख देकर अक-र्मण्य नहीं बनाते, किन्तु धर्म सुनाकर सुख प्राप्ति का उपाय ही बता देते हैं, जिससे फिर दुःख हो ही नहीं। वे लोग आध्यात्मिक विद्या सिखाते हैं। सब ऋद्धि इस विद्या को जानने वाले की दासी

है । यह विद्या जानने वाले को किसी भी प्रकार की कमी नहीं रहती ।

७ : सच्चा सुख

सुख के लिए कही भी वाहर की तरफ नजर फैलाने की जरूरत नही है । अपनी ही ओर देखने से, अपने मे ही लीन होने से सुख की प्राप्ति होगी । वाह्य वस्तुए सुख नही दे सकती । उनसे जो सुख मिलता मालूम होता है, वह सुख नही, सुखाभास है । शहद लपेटी हुई तलवार की धारा चाटने से क्षणभर सुख सा प्रतीत होता है, मगर उसका परिणाम कितना दुःखप्रद है ? यही बात ससार की समस्त सुख-सामग्री की है । अन्तत राजपाट, महल-मकान, मोटर, गाडी, भोजन, वस्त्र, कुटुम्ब-परिवार आदि सभी पदार्थ धोखा देने वाले हैं । अथवा इनमें जो मनुष्य का अनुराग है वह चिर दुःख का कारण है । अतएव इन सव से निरपेक्ष होकर एकमात्र आत्मपरायण वनना ही सुख का सच्चा मार्ग है ।

जहाँ वाह्य पदार्थों का ससर्ग होगा, वहाँ व्याकुलता होना अनिवार्य है, और जहाँ व्याकुलता है वहाँ सुख नही है । निरा-कुलता ही सुख है और निराकुलता तभी आती है जब सयोग-मात्र का त्याग कर दिया जाता है ।

एक पुरुष सुख रूपी पुरुष को पकडने दौडा । सुख रूपी पुरुष भागा । पकडने वाला उसके पीछे-पीछे दौडा और सुख आगे-आगे भागता ही गया । आखिर सुख हाथ न आया । पकडने के लिए दौड़ने वाला पुरुष थक गया । वह अशक्त होकर एक झरने के समीप, वृक्ष की छाया में वैठ कर सुख न पा सकने की चिन्ता

उन्होंने, खेती बाड़ी, पीसना-कूटना, वाणिज्य-व्यापार आदि सब कुछ छोड़ दिया। सभी लोग अकर्मण्य बन कर उस कुम्भकलश से मांग-मांग कर खाने लगे और इस प्रकार के जीवन को आनद का जीवन मानने लगे। कुम्भकलश से वे जो कुछ चाहते, कुम्भकलश उन्हें वही वस्तु देता।

एक दिन सब ने उस कुम्भकलश से अच्छी से अच्छी मदिरा मांगी। कुम्भकलश से मिली हुई मदिरा को सब लोगों ने खूब पिया और उसके नशे मे मस्त बन गये। फिर उस कुम्भ-कलश को एक आदमी के सिर पर रखकर सब लोग नाचने लगे। शराब मे मस्त होने के कारण उस समय उन लोगों को त्रैलोक्य की भी पर्वाह नहीं थी, तो कुम्भकलश की परवाह वे क्यों करने लगे थे! कुम्भकलश को सिर पर रख कर उपेक्षा-पूर्वक नाचने और आपस मे धौल-धप्पे करने मे कुम्भकलश सिर पर से गिरकर फूट गया। कुम्भकलश के फूटते ही उन लोगो का नशा भी उतर गया। जिस कुम्भकलश की कृपा से अब तक कार्य चल रहा था वह तो नष्ट हो गया और जिन उपायों से कुम्भकलश मिलने के पहले जीवन निर्वाह होता था, उन्हें वे लोग भूल गये थे तथा उनके साधन भी नष्ट हो गये थे, इसलिये वे सब लोग एक साथ ही कष्ट में पड़ गये।

मतलब यह, कि जो कुम्भकलश फूट गया है, उसके बनाने की विधि यदि उन लोगों मे से किसी को मालूम होती, तो उन लोगों को कष्ट मे न पड़ना पड़ता। इसलिए पदार्थ देकर सुख देने की अपेक्षा, सुख-प्राप्ति का उपाय बताना बहुत बड़ा उपकार है। साधु लोग यही उपकार करते हैं। वे पदार्थ द्वारा सुख देकर अक-र्मण्य नहीं बनाते, किन्तु धर्म सुनाकर सुख प्राप्ति का उपाय ही बता देते हैं, जिससे फिर दुःख हो ही नहीं। वे लोग आध्यात्मिक विद्या सिखाते हैं। सब ऋद्धि इस विद्या को जानने वाले की दासी

है। यह विद्या जानने वाले को किसी भी प्रकार की कमी नहीं रहती।

७ : सच्चा सुख

सुख के लिए कही भी बाहर की तरफ नजर फैलाने की ज़रूरत नही है। अपनी ही ओर देखने से, अपने मे ही लीन होने से सुख की प्राप्ति होगी। बाह्य वस्तुए सुख नही दे सकतीं। उनसे जो सुख मिलता मालूम होता है, वह सुख नहीं, सुखाभास है। शहद लपेटी हुई तलवार की धारा चाटने से क्षणभर सुख सा प्रतीत होता है, मगर उसका परिणाम कितना दुःखप्रद है ? यही बात ससार की समस्त सुख-सामग्री की है। अन्तत राजपाट, महल-मकान, मोटर, गाडी, भोजन, वस्त्र, कुटुम्ब-परिवार आदि सभी पदार्थ धोखा देने वाले हैं। अथवा इनमें जो मनुष्य का अनुराग है वह चिर दुःख का कारण है। अतएव इन सब से निरपेक्ष होकर एकमात्र आत्मपरायण बनना ही सुख का सच्चा मार्ग है।

जहाँ बाह्य पदार्थों का ससर्ग होगा, वहाँ व्याकुलता होना अनिवार्य है, और जहाँ व्याकुलता है वहाँ सुख नही है। निराकुलता ही सुख है और निराकुलता तभी आती है जब सयोग-मात्र का त्याग कर दिया जाता है।

एक पुरुष सुख रूपी पुरुष को पकडने दौडा। सुख रूपी पुरुष भागा। पकडने वाला उसके पीछे-पीछे दौडा और सुख आगे-आगे भागता ही गया। आखिर सुख हाथ न आया। पकडने के लिए दौडने वाला पुरुष थक गया। वह अशक्त होकर एक झरने के समीप, वृक्ष की छाया में बैठ कर सुख न पा सकने की चिन्ता

मे मग्न हो गया । सुख को न पा सकने से उसे इतना दुःख हुआ कि उसे अपने कपडे और यहाँ तक की शरीर भी भारी मालूम होने लगा । उसके पास खाने को था, मगर चिन्ता के कारण उसे खाना न सूझा ।

इतने ही मे उधर से एक मनुष्य निकला । उसने इस चिता-ग्रस्त पुरुष से चिल्लाकर कहा—'मुझे सुख दे !'

वह चिन्ताग्रस्त पुरुष आश्चर्य मे डूब गया । सोचा—यह कौन है जो मुझ से सुख माँग रहा है ? अगर मेरे पास सुख होता तो इतना भटकने की जरूरत ही क्या थी ? उसने उसकी ओर मुड कर देखा तो एक दरिद्र सा पुरुष उसे नजर आया । उस दरिद्र ने फिर उससे कहा —'मुझे सुख दे ।'

इसने उत्तर दिया—मेरे पास सुख कहाँ है ? मैं कहाँ से तुझे सुख दूं ?

दरिद्र ने कहा—तेरे पास सुख न होता तो मैं माँगता ही क्यों ?

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला प्रेम-दया रस का रे ।
नाभिकमल बिच है कस्तूरी, कैसे भर्म मिटे मृग का रे ।।पीले।।

दरिद्र पुरुष ने फिर कहा—मृग की नाभि में ही कस्तूरी होती है । फिर भी वह कस्तूरी की खोज मे इधर-उधर भागता फिरता है और यह नहीं जानता कि कस्तूरी मेरी ही नाभि में है, इसी प्रकार तू सुख के लिए दौड़-दौड कर थक गया परन्तु तुझे यह पता नहीं कि सुख तो तेरे ही पास है । और वह सुख भी थोडा नहीं, अनन्त है, अक्षय है, असीम है, अद्भुत है ।

दरिद्र पुरुष की यह बात सुनकर वह आश्चर्य मे आ गया । वह सोचने लगा—क्या यह मेरी हँसी करता है ? फिर उसने पूछा—मेरे पास सुख कहाँ है ?

दरिद्र ने कहा—मैं बता सकता हूं । तुम्हारे पास यह जो

खाना पड़ा है, यह मुझे दे दो तो मैं बतलाऊ ।

सुख के अभिलाषी पुरुष ने अपना खाना उसे दे दिया । दरिद्र खाना खाकर हसते हुए चेहरे से उसके सामने आ खड़ा हुआ फिर कहने लगा—अब देख ! मैं कितना सुखी हो गया हूँ । यह सब तेरा ही प्रताप है । तूने मुझे सुख दिया, इसी कारण मैं सुखी हो गया हूँ ।

दरिद्र पुरुष की बात सुनकर वह कहने लगा—अब मैं समझ गया । वास्तव में दूसरे से सुख मागने मे सुख नही है, किन्तु दूसरे को सुख पहुचाने मे सुख है । सुख भिखारी को नही, दाता को होता है ।

८ : साँप का ज़हर

सर्प के जहर ने आपके शरीर मे प्रवेश किया । दूसरा ज़हर आपका आपके शरीर मे विद्यमान है । दोनो के मिलने से ज़हर की शक्ति बढ जाती है और वह आपको मारने वाला हो जाता है । साँप के काटने पर आपको तनिक भी क्रोध न आवेगा तो जहर नही चढेगा ।

बिहार प्रान्त मे एक आदमी घास का छप्पर बाँध रहा था । एक सर्प छप्पर मे बँध गया और उसने उस आदमी को काट खाया । आदमी को खबर न हुई । उसने समझा—कोई काँटा चुभ गया है । अगले साल जब वह आदमी छप्पर खोलकर नये सिर से बाँधने लगा तो उसे मरा सर्प दिखाई दिया । उसे गत वर्ष की घटना याद आ गई । सोचा—अरे ! जिसे मैंने काँटा समझा था,

वह काँटा नहीं, साँप था ! क्रोध आते ही जहर ने असर किया और वह आदमी मर गया। सोचिये, इतने दिनों तक जहर कहाँ छिपा बैठा था ?

९ : धर्म का फल

अगर तुम्हारी आशा पूरी नहीं होती तो यह धर्म का दोष नहीं है, तुम्हारी करनी में ही कहीं कमी है। अतएव कांक्षा पूरी न होने के कारण धर्म को मत छोड़ो। कांक्षा ही तुम्हारी मुराद पूरी नहीं होने देती। कांक्षा ही तुम्हें धर्म-श्रद्धा से डिगा देती है। अतएव जहाँ तक हो सके, कांक्षा को ही छोड़ने का प्रयत्न करो। निष्कांक्ष हो जाने पर तुम्हारी समस्त कांक्षाएँ पूरी हो जाएँगी। एक वृद्धा स्त्री की बात कहता हूँ.—

किसी वृद्धा को धर्म से बड़ा प्रेम था। वह सदा साधुसन्तों के दर्शन करने जाती और उनका धर्मोपदेश सुनती। इतना ही नहीं वह आस-पास की स्त्रियों को भी साथ ले जाती। स्त्रियों में धर्म-भावना फैलाती। उन्हें सीख देती।

एक दिन उसे विचार आया—मैं इतना धर्म-ध्यान करती हूँ। धर्म के लिए उद्योग करती हूँ। अतएव मेरे पोता अवश्य होगा। इसके बाद पोता होने की आशा में दिन पर दिन और वर्ष पर वर्ष बीत गये परन्तु पोता नहीं हुआ। पोता न होने से उसकी धर्म-भावना मन्द पड़ने लगी। वह विचार करने लगी—'यह कौनसा धर्म है, जो मेरी साधारण-सी अभिलाषा भी पूरी नहीं करता। जो धर्म पोता नहीं दे सकता, वह मोक्ष क्या देगा ? इस

प्रकार वृद्धा की श्रद्धा घटने लगी। ठीक ही कहा—'श्रद्धा परम-दुर्लभा।' सब कुछ सरल हो सकता है, मगर श्रद्धा कायम रहना बहुत कठिन है। उस वृद्धा की श्रद्धा जोखिम मे पड गई। धीरे-धीरे उसे धर्म के प्रति इतनी अरुचि होगई कि स्वय साधु सन्तो के के समीप न फटकती और जो जाती उन्हें भी हटकती। कहती—'क्या रक्खा है दर्शन करने मे! क्यो घर के काम का नुकसान करती हो? वहाँ कुछ स्वाद होता तो मैं ही क्यो छोड बैठती?

वृद्धा जहा की थी, वहा अकसर साधु पहुचा करते थे। एक पुराने साधु वहां गये। बहुत-सी बहिनें दर्शन करने आई। मगर साधु ने वृद्धा को न देखा। वह किसी समय महिला समाज में अगुआ थी। धर्म मे उसे बडा उत्साह था। अतएव साधुजी ने पूछा—बहिनो! यहा एक धर्मशीला वृद्धा बाई थी। वह आज दिखाई नही दी। क्या कही गई है?

एक स्त्री ने मुंह मटका कर उत्तर दिया—'महाराज, वह तो मिथ्यात्विनी हो गई। खुद नही आती और दूसरो को भी आने से रोकती है।

साधु—अच्छा, यह बात है! उससे जरा कह देना कि अमुक मुनि आये हैं। व्याख्यान सुनना। अगर इच्छा न हो तो भी जैसे मिलने वालों से मिल जाते हैं, उसी प्रकार समझ कर व्याख्यान सुनना।

यह समाचार वृद्धा के पास पहुच गये। वह कहने लगी—मैंने बहुत दर्शन किये। कई व्याख्यान सुने। कोई मुराद पूरी नहीं हुई। अब वहाँ जाकर क्या करूंगी?

साधु प्राणीमात्र का भला चाहते हैं। उन्हें किसी पर क्रोध नहीं होता। उन्होंने वृद्धा को सन्मार्ग पर लाने के उद्देश्य से एक बार फिर कहला भेजा।

वृद्धा आई। अनमनी होकर, हाथ जोड, नीचा सिर किये

गुमसुम बैठ गई ।

साधुजी ने कहा—बहिन, आजकल तुम धर्मध्यान नही करती । पहले तो बहुत धर्मक्रिया किया करती थी ! क्या कारण है ?

लम्बी सास लेकर वृद्धा बोली—क्या कहू महाराज !

साधु—नही, नहीं बहिन, कुछ कहो । बात क्या है ? क्या श्रद्धा हट गई ?

वृद्धा—पूछकर क्या करोगे महाराज !

साधु—बन सकेगा तो उपाय करेंगे ।

वृद्धा उत्सुक होकर—आप सुनना चाहते हैं ?

साधु—हा, बहिन !

वृद्धा—तो सुनिये । मेरा लड़का है । आप जानते ही हैं कि मैं पहले कैसा धर्म करती थी और कैसी सेवा बजाती थी । मैं समझती थी कि धर्म के प्रताप से मेरे पोता होगा । आशा ही आशा में कई वर्ष व्यतीत हो गए, किन्तु पोता नही हुआ । धर्म यह जो आशा पूरी करे । बहुत धर्म करने पर भी आशा निराशा मे पलट गई । पोते का मुंह देखने को न मिला । इस कारण धर्मआस्था घट गई ।

साधुजी ने समवेदना दिखलाते हुई कहा—बहिन, सच कहती हो । जो धर्म आशा पूरी न करे वह कैसा धर्म !

अपने पक्ष का समर्थन होते देखकर वृद्धा कहने लगी—महाराज, आप सच फरमाते हैं । झूठ कहती होऊ तो आप बताइये ।

साधु—नही बहिन, तुम झूठ नहीं कहती । अच्छा एक बात तुमसे पूछता हूं । धर्म ने पोता नहीं दिया, यह मैंने माना मगर बहिन, ससार सम्बन्धी ऐसी कुछ बाधाएं भी होती हैं कि धर्म भी बिचारा क्या करे ? अगर अकेला धर्म ही पोता दे देता तो तुम पर में बहू आने से पहले ही मांगती । पर ऐसा नही, संसार सबधी

भी कुछ कारण मिलते हैं तब पोता होता है।

वृद्धा सिर हिलाकर—सच बात है।

साधु फिर कहने लगे—मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि इसमें कोई सासारिक बाधा ही कारण होगी।

वृद्धा—नहीं महाराज, सासारिक बाधा कुछ भी नहीं हैं।

साधु—बहिन, हो सकता है कि तुम्हे मालूम ही न हो। मान लो, पति-पत्नी मे मेल-मिलाप ही न हो तो?

वृद्धा—नहीं महाराज, दोनो मे इतना प्रेम है, जितना सीता और राम मे था।

साधु—सम्भव है, वहू रोगिणी हो! रोगिणी के बच्चा नही भी होता।

वृद्धा—अजी, उसके तो नख मे भी रोग नहीं है, वह खूब भली-चगी है।

साधु—तुम्हारे लडके मे कोई त्रुटि नही हो सकती?

वृद्धा—यह भी नही है। ऐसा होता तो सँतोप कर लेती कि जब लडके में कमी है तो पोता कैसे हो? पर वह तो बलिष्ठ और सुन्दर है। देखती हू, कई लडके खाट पर पडे रहते हैं, पर मेरा ऐसा नहीं है। वह पहाड सा बलवान् है।

साधु— इसके अतिरिक्त एक बात और हो सकती है।

वृद्धा—वह क्या?

साधु—सब कुछ ठीक हो, पर यदि तुम्हारा लडका परदेश चला जाता हो और वह तुम्हारे पास ही रहती हो तो पोता कैसे हो? एक बात और भी है। सम्भव, पति-पत्नी साथ ही रहते हो किन्तु मनुष्य को धन की चिन्ता बहुत बुरी होती है। इस चिन्ता से तुम्हारा लडका घुलता हो तो भी पोता न होना सम्भव है।

वृद्धा व्यग की हसी हँसकर बोली—मैं ऐसी भोली नही हूँ। काले केश पक गये हैं। ऐसा होता तो समझ जाती, मगर यह सब

कुछ नही है ।

साधु—एक बात पूछना फिर भूल गया ।

वृद्धा—वह भी पूछ लीजिए ।

साधु—जो माता-पिता की सेवा नहीं करते उनके भी प्रायः पोता नहीं होता ।

वृद्धा–महाराज, मेरा लडका और मेरी बहू–मिलकर मेरी इतनी सेवा करते हैं कि शायद ही किसी को नसीब होती हो। सब बातें आपने पूछ ली । अब बताइये, किसका दोष है ?

साधु—यह तो धर्म का ही दोष हैं।

वृद्धा जरा तेज स्वर मे–मैं पहले कहती थी कि यह धर्म का ही दोष है । इसी कारण मैंने धर्म छोड दिया । स्त्रियां मुझे मिथ्यात्विनी कहती हैं । कहती रहें मेरा क्या बिगडता है ? सच्ची बात तो कहनी पडेगी ।

साधु—मैं समझ गया बहिन, यह दोष धर्म का ही है । धर्म से जाकर अर्ज करनी पडेगी कि बहुत-से लोग बेचारे बूढे होकर मर जाते हैं, पर बेटे का मुंह नही देख पाते । तुमने उस वृद्धा को लडका देकर और दुखी कर दिया । नहीं तो वह धर्मध्यान करती । अब पोते के बिना उसे चैन नहीं पडती । उसे रात-दिन चिन्ता रहती है ।

वृद्धा चौंक कर बोली—ऐं महाराज ! यह क्या कहते हैं ?

साधु–सच ही तो कह रहा हूँ ।

वृद्धा—नहीं महाराज ! यह तो धर्म का ही प्रताप है । अच्छा पुण्य किया तो बेटा मिला है ।

साधु–कई लोग विवाह के लिए भटकते-फिरते है । तुम्हारे लडके का विवाह जल्दी हो गया, यह बुरा हुआ ?

वृद्धा–नहीं अन्नदाता, यह तो धर्म का ही प्रताप है ।

साधु–लोग पैसे–पैसे को मोहताज रहते हैं। तुम्हें पैसा देकर

धर्म ने बुरा किया ।

वृद्धा--हुजूर, यह क्या फरमाते हैं ! यह भी धर्मका ही प्रताप है ।

साधु—यह क्या ? सभी बातों मे धर्म ही धर्म का प्रताप बतलाती हो !

वृद्धा—सच बात तो कहनी ही चाहिये न ?

साधु—अच्छा तो पति-पत्नी की जोडी स्वस्थ मिली, यह बुरा हुआ। नहीं तो सन्तोष मानकर धर्म तो करतीं !

वृद्धा—यह भी धर्म का प्रताप है ।

साधु—पति-पत्नि अविनीत—माता—पिता से झगडने वाले मिलते तो ठीक था ।

वृद्धा—जिसने खोटे कर्म किये हो, उसी को ऐसे लडका-बहू मिलते हैं । आपकी कृपा से कुछ पुण्य-धर्म किया, उसी का यह प्रताप है ।

साधु—तुम सभी बातें धर्म के प्रताप से कहती हो ! ऐसा है तो जो धर्म सभी कुछ दे, सिर्फ एक पोता न दे, उस पर इतनी नाराजी क्यों ?

वृद्धा हाथ जोडकर बोली—क्षमा कीजिये महाराज ! मुझसे भूल हुई । मैंने धर्म का उपकार न माना । मैं बडी कृतघ्नी और पापिनी हूं । अब मैं समझ गई । मेरा मोह दूर हो गया । आपने मुझ पर असीम दया की, ठीक रास्ता दिखला दिया । अब मैं फिर यथाशक्ति धर्म की सेवा करूंगी ।

आपने यह दृष्टान्त सुना । ऐसे विचार वाले भाई— बहिन आप में कम नहीं होगे जो अपनी आशा पूरी होते न देख कह उठते हैं—वाह ? धर्म ने इतना भी न किया !

इस प्रकार की तुच्छ भावना से धर्म की दुर्दशा नहीं, आपकी ही दुर्दशा होती है । तुम सच्चे धर्मात्मा बनो, तुम्हारी मुराद तो क्या, त्रिलोकी तुम्हारे चरणों में लोटने लगेगी ।

१० : बहिरात्मा

एक देहाती मनुष्य बहुत बुद्धिमान् और होशियार आदमी था। उसने सोचा—देहात मे जैसी चाहिए वैसी इज्जत नहीं होती और न कोई काम ही है। ऐसा सोचकर वह शहर मे गया। शहर मे पहुचकर वह किसी सेठ की दुकान पर गया। सेठ साहब ने उससे कुछ भी बात नहीं की, क्योंकि वह देहाती था और सादी पोशाक पहने था। सेठ अपनी धुन मे मग्न था। दुकान पर दस-पाँच मुनीम काम कर रहे थे। कोई हुडी लिख रहा था, कोई कुछ और कर रहा था। उस देहाती से किसी ने कुछ न पूछा।

आगन्तुक पुरुष देहाती होने पर भी बुद्धिमान् था। वह समझ गया कि मेरी सादी पोशाक देखकर मुझसे कोई बात नही करता। वह वहाँ से उठा और धोबी के पास गया। धोबी से कहा—भाई, तुम्हारे पास किसी अमीर की पोशाक धुलने आई हो तो कुछ समय के लिए मुझे दे दो। मैं वापिस लौटा दूगा। तुम उसे दोबारा धोकर दे देना। अपना मेहनताना चाहे पहले ही से लो।

धोबी ने उसकी बात चीत से समझा—कोई भला आदमी है। उसने उसे कपड़े दे दिये। देहाती ने कपड़े पहने और वहीं से बढ़िया जूते भी खोज लिये। हाथ मे एक बेंत ले लिया। अब वह शहर मे ठाठ से चलता हुआ उसी सेठ की दुकान पर जा पहुचा। उसे आता देख सेठ खड़ा हो गया और बोला—पधारिये साहब, कहाँ से तशरीफ लाये हैं? कैसे पधारना हुआ?

देहाती बोला—आप ही से मिलने आया हूँ।

सेठ—ठीक, विराजिये।

देहाती शाल के साथ बैठ गया। सेठजी ने पूछा-आपको भोजन आदि करना होगा न?

देहाती—हां, कर लेंगे। जल्दी क्या है।

सेठजी की आज्ञा होते ही कोई नौकर रसोई की तैयारी में लगा, कोई पानी लाने लगा। देहाती बुद्धिमान् तो था ही, इधर-उधर की दो-चार बातें बनाईं। सेठ उसकी बुद्धिमत्ता पर रीझ गया। खूब खातिर की। भोजन तैयार हो गया तो भोजन के लिए कहा। देहाती भोजन करने गया। आसन पर बैठकर दो लड्डू इस जेब में डालने लगा और दो बर्फियां उस जेब में। तीसरी मिठाई साफे में बांधने लगा और कुछ सामान रूमाल में रखने लगा। यह देखकर सेठ भौंचक्का-सा रह गया। वह बोला—आप यह क्या कर रहे हैं?

देहाती ने धीमे स्वर में कहा—जिनके प्रताप से मुझे यह मिठाई मिली है, उन्हें तो पहले जिमा दूं।

सेठ—सो कैसे?

पहले सादी पोशाक पहन कर मैं आपकी दुकान पर आया था। तब आपने मुझसे बात भी न की। जब यह कपड़े पहनकर आया तब यह खातिर हुई। वास्तव में यह खातिर इन कपड़ों की है।

सेठ बड़ा लज्जित हुआ और उसने क्षमा मांगी।

आप में से बहुत से भाई इसी प्रकार का आदर-सत्कार करते हैं। परन्तु यह सच्चे श्रावक का लक्षण नहीं है। मित्रो! सभ्यता सीखो। सभ्यता के बिना धर्म का पालन नहीं हो सकता।

११ : साकार से निराकार की ओर

कहा जाता है कि हमने कभी परमात्मा के दर्शन नहीं किये। विना दर्शन हुए उससे प्रीति किस प्रकार की जाय ? कभी परमात्मा की बोली भी नहीं सुनी तो उसका स्मरण कैसे किया जाय ? यह प्रश्न ठीक है। इसका समाधान करने के लिए एक लौकिक दृष्टांत उपयोगी होगा। आप अशुध्द वस्तु को अच्छी तरह जानते हैं। उसके सहारे शुद्ध वस्तु को भी समझ जाएंगे।

एक मनुष्य किसी सुन्दरी महिला के रूप पर इतना मोहित हो गया कि उसके विना उसे चैन न पड़ता। उसे चलते-फिरते सदैव उसी बाई का ध्यान रहता। कब उससे मेरा मिलन हो और कब मैं अपने हृदय की प्यास बुझाऊं, बस ऐसा ही विचार उसके मन में सदा बना रहता था। उस आदमी की बात किसी दूसरी बाई ने जानी। वह विचारशील और सदाचारिणी थी। उसने सोचा—इस मनुष्य का पतन होने वाला है। यह स्वयं तो भ्रष्ट होगा ही, एक मेरी बहिन को भी भ्रष्ट करेगा अतएव इन्हें भ्रष्ट होने से बचाने का कोई उपाय करना चाहिए।

अगर आपको ऐसे भोगाभिलाषी पुरुष का पता चल जाय तो आप क्या करेंगे ? आप मारेंगे, पीटेंगे या दुत्कारेंगे। इसके सिवाय और कुछ नहीं करेंगे। परन्तु सुधार का यह मार्ग ठीक नहीं है। यह तो उसे और गहरे में डालने का उपाय है। किसी को दुत्कार कर, फटकार कर या किसी के प्रति घृणा करके उसे पाप से नहीं बचाया जा सकता। अगर पापी से प्रेम करो और शान्तिपूर्वक समझाओ तो वह बहुत आसानी से समझ जायगा।

उस दूसरी बाई ने यही रास्ता अख्तियार किया। वह उस

कामी पुरुष के पास जाकर बोली—भाई, तू इतनी चिन्ता क्यों करता है ? तेरे मन की बात मैं जानती हूँ । अगर तू मेरा कहना माने तो मैं तुझे उस स्त्री से मिला दूंगी ।

उस पुरुष ने घबराहट से कहा—ए, तुम मेरे मन की बात जानती हो ? और उसे मिला दोगी ? किसने तुमसे यह बात कही है ?

स्त्री—मैं तुम्हारे हाव-भाव से समझ गई हूँ । फिकर मत करो । मैं उससे मिला दूंगी ।

पुरुष को कुछ तसल्ली हुई । उसने सोचा चलो, अच्छा हुआ । अनायास और मुफ्त ही दूती मिल गई ।

स्त्री ने कहा—मैं तुम्हारा काम तो कर दूंगी, पर तुम्हे मेरा कहना मानना होगा । कहो, मानोगे ?

पुरुष वाह, मैं तुम्हारा कहना नहीं मानूंगा ? अगर तुम उससे मिला दोगी तो मैं तुम्हारे लिए तन-मन निछावर कर दूंगा ।

'तो बस ठीक है' इतना कहकर वह बाई चली गई । वह दूसरे दिन फिर आई । उसने पुरुष से कहा—भाई, चलो ।

पुरुष की प्रसन्नता का पार न रहा । उसने समझा, काम बन रहा है तो ढील क्यों की जाय । वह जल्दी—जल्दी सजकर साथ चलने के लिए तैयार हो गया ।

वह बाई उसे एक बड़े सफाखाने में ले गई । वहाँ कई रोगियों की चीरफाड़ की जा रही थी । कई सड़ रहे थे । कइयों के शरीर से लोहू और मवाद झर रहा था । चारों ओर दुर्गन्ध फैल रही थी ।

यह सब बीभत्स दृश्य देखकर उस पुरुष ने कहा—ऐसे गन्दे स्थान पर क्यों ले आई हो ? मारे दुर्गन्ध के सिर फटा जाता है । चक्कर आते हैं । चलो, जल्दी यहां से ।

स्त्री—जरा ठहरो, बस चलती ही हूं ।' इतना कहकर वह

रोगियो से पूछने लगी—भाइयो, तुम्हें यह रोग कैसे हो गये ?

रोगियों में से एक ने कहा—बहिन, क्या बताए, यह सब हमारे ही खोटे कर्मों के फल हैं। विषय-सेवन की मर्यादा न पालने से किसी को सुजाक, किसी को गर्मी, किसी को कुछ और किसी को कुछ रोग हो गया है। अगर हम मर्यादा मे रहे होते, पराई स्त्रियों को माता-बहिन समझते तो हमारी यह दुर्दशा न होती। मगर क्या किया जाय। अब तो अपने हाथ की बात रही नही।

स्त्री ने अपने साथी पुरुष को लक्ष्य करके कहा—सुना आपने, यह रोगी क्या कह रहे हैं ? ध्यान से सुन लीजिये।

वह बोला—हा सुना, सब सुना। तुम बाहर निकलो। मेरा सिर दुर्गन्ध के मारे फटा जा रहा है।

दोनों बाहर निकल पडे और अपने-अपने घर चले गये। स्त्री ने सोचा—मेरी दवाई ने पूरा असर नहीं किया। खैर,कल फिर देखा जायगा।

दूसरे दिन फिर वह उसके घर पहुची। चलने के लिये कहा। तब वह पुरुष कहने लगा—तुम उससे कब मिलाओगी ? चकमा तो नहीं दे रही हो ?

उत्तर मिला—भैया ! उसी से मिलाने के लिए तो उद्योग कर रही हूं।

पुरुष—तो ठीक है। चलो।

आज वह स्त्री उसे जेलखाने में ले गई। कोई आजन्म कैदी था, कोई आठ वर्ष की और कोई दस वर्ष की सजा पाया हुआ था।

स्त्री ने एक कैदी से पूछा—कहो भाई, तुम किस अपराध में सजा भोग रहे हो ?

कैदी बोला—हम लोग अलग-अलग अपराधों के अपराधी हैं। किसी ने चोरी की, किसी ने जालसाजी की, किसी ने परस्त्री-

गमन किया। इसी कारण हम लोग इस नरक में पड़े सड़ रहे हैं। किसी को भरपेट रोटी नहीं मिलती। कोई बहुत तंग कोठरी में रक्खा गया है। उसी कोठरी में खाना और उसी में पाखाना! कईयों को बेंत लगते हैं और बहुतों को चक्की पीसनी पड़ती है। हम लोगों को जीवित अवस्था मे ही नरक से पाला पड़ा है।

स्त्री ने अपने साथी से कहा--सुनो भैया, इनकी बातें। यह बेचारे कितना कष्ट पा रहे हैं! ध्यान दिया आपने!

वह पुरुष बोला--होगा, इससे हमें क्या सरोकार है?

स्त्री ने सोचा--अब भी मेरा उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। कल दूसरा प्रयोग करूंगी। यह सोच वह लौट गई।

प्रातःकाल होते ही वह उसे समझा-बुझा कर साथ ले गई। उसने आज कसाईखाने में प्रवेश किया। वहाँ बकरों की गर्दन पर खचाखच छुरियाँ चल रही थीं। प्राणी अपने प्राणो की रक्षा के लिए 'बें-बें' चिल्लाते हुए दूर भागना चाहते थे। मगर कसाइयों के हाथ से उन्हें कैसे छुटकारा मिल सकता था? बड़ा ही निर्दयतापूर्ण दृश्य था। कहीं गाय-भैंसों का सिर कटा पड़ा था। कहीं कलेजा कटा पड़ा धड़-धड़ कर रहा था। कहीं किसी जानवर का चमड़ा उधेड़ा जा रहा था। कहीं कोई मांस को इधर-उधर ले जा रहा था। कहीं हड्डियों के ढेर लगे थे और कहीं आगे कटने वाले जानवर खड़े थे। दुर्गन्ध की तो बात ही क्या पूछना। वह मनुष्य यह सब देखकर घबरा उठा। बोला--यह सब क्या हो रहा है?

स्त्री ने कहा--भैया, घबराओ नही। अभी इन आदमियों से पूछ लेती हूं। इतना कहकर एक कसाई से पूछा--भाई, तुम इन जानवरों को क्यों मारते हो?

कसाई--मारें नही तो क्या करें? पैसा कमावें कि नहीं? इन्हें मारकर इनका मांस बेचते हैं और अपने बाल-बच्चों की परवरिश करते हैं।

स्त्री—भाई, इन पर कुछ दया करो न ?

कसाई—दया किस पर ? यह तो हमारे खाने के लिए ही पैदा किये गए हैं।

साथ का पुरुष बीच ही में बोला—चलो यहाँ से। मुझ से यह दृश्य नहीं देखा जाता।

स्त्री ने सोचा—ठीक है, हृदय कुछ तो पिघला।

दोनों कसाईखाने से बाहर निकले। बाहर निकलने के बाद वह पुरुष कहने लगा—आखिर इतने पशु क्यों मारे जाते हैं ?

स्त्री—इन पशुओं ने पहले खराब काम किये होंगे।

पुरुष—क्या खराब काम किये होंगे इन बेचारों ने ?

स्त्री—खराब काम यही—चोरी करना, विश्वासघात करना, किसी को ठगना, परस्त्री पर मोहित होना आदि।

पुरुष—इन कामों का फल इतना भयंकर है ?

स्त्री—सो तो तुमने अपनी आँखों देखा है।

अन्त में दोनों अपने-अपने घर चले गये। उस स्त्री ने विचार किया—ऐसे ऐसे दृश्य दिखलाने पर भी ठीक परिणाम न निकला। वह अपनी बात के पीछे पागल हुआ जा रहा है। करना क्या चाहिये ?

संयोग की बात है कि जिस महिला पर वह मोहित था, उसका कुछ ही दिन बाद अचानक देहान्त हो गया। जैसे ही उस स्त्री को उसके देहान्त की खबर लगी कि वह दौड़कर उस पुरुष के पास गई। जाकर उससे बोली—आज उससे मिलने का मौका है। चलो, देरी मत करो।

वह पुरुष अत्यंत प्रसन्नता के साथ जल्दी तैयार हो गया। इत्र लगा कर और सुंदर वस्त्र धारण करके चला।

पुरुष के साथ आने वाली बाई को सभी जानते और आदर की दृष्टि से देखते थे। उसे वहाँ आती देख लोगों ने पूछा-आज

आपका यहाँ कैसे पधारना हुआ ?

उसने उत्तर दिया—भाइयो, आज मैं एक महत्त्वपूर्ण काम से आई हूँ। आप सब लोग थोडी देर के लिए जरा बाहर हो जाइये।

सब लोग बाई का कहना मानकर बाहर चले गये। उन्हें विश्वास था कि यह बाई किसी न किसी धार्मिक काम के लिए ही आई है। अतएव उसका कहना मानने मे किसी को आपत्ति नहीं हुई।

बाई पहले अकेली अन्दर गई। मृत स्त्री को अच्छे कपडे ओढाये और आभूषण पहनाये। इत्र भी लगा दिया। फिर वह बाहर आई और उस पुरुष को अन्दर ले जाने लगी।

दोनो भीतर गये। बाई बोली—भैया, लो यह तैयार है। भेट कर लो।

वह पुरुष कुछ आगे बढा और फिर एकदम एक कदम पीछे लौटता हुआ घबरा कर बोला—यह तो मर चुकी है।

बाई बोली—मरना कैसा ? वही शरीर है। वही कान और नाक है। वही मुख है। वही वस्त्र और आभूषण हैं। सभी कुछ वही तो है। फिर मर गई का क्या अर्थ ?

पुरुष—इसमें प्राण नही रहे।

बाई—तुम्हारा प्रेम प्राणों (आत्मा) से है या इस शरीर मे ?

पुरुष—यह तो बडा ही भयकर है। मुझे भय मालूम होता है।

बाई—तो क्या तुम इसकी आत्मा को भ्रष्ट करना चाहते थे ? अरे पागल ! कसाई बकरा मारकर उसके शरीर के मास को लेना चाहता है और तू इसके जीते जी ही इसके मांस आदि पर अपना अधिकार जमाना चाहता था ? जिसके लिए तू तडफ

रहा था, आज उसी से भयभीत हो रहा है। तेरा प्रेम ऐसा ही था!

पुरुष कुछ कहना ही चाहता था कि बीच में बाई फिर बोल उठी—अरे मेरे भाई! जितना प्रेम तू इस शरीर पर करता था, उतना अगर आत्मा पर किया होता तो तिर जाता, क्योंकि सब आत्माएँ समान हैं। आत्मा ही अपनी दबी हुई शक्तियाँ विकसित करके परमात्मा बन जाता है।

१२ : पर सुख में अपना सुख

किसी समय में एक राजा राज्य करता था। उसके पास बहुत से विद्वान् आते रहते थे। वे लोग राजा में जो दुर्गुण देखते दूर करने का उपदेश राजा को दिया करते थे। पर राजा किसी की कुछ मानता नहीं था। वह विद्वान् पण्डितों को अपने सुख में विघ्न डालने वाला समझता था। अगर कोई विद्वान् अधिक जोर देकर उपदेश देता तो राजा उसका अपमान करने से भी नहीं चूकता था। इस प्रकार किसी की बात पर कान न देने के कारण, राजा के दुर्व्यसन बढ़ते गये।

एक रोज राजा अपने साथियों के साथ, घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने के लिए जंगल में गया। वहाँ अपना शिकार हाथ से जाते देख उसने शिकार का पीछा किया। राजा बहुत दूर आ पहुँचा। साथी बिछुड़ गये। पर शिकार हाथ नहीं आया।

मनुष्य भले ही अपना दुर्व्यसन न छोड़े, मगर प्रकृति उसे चेतावनी जरूर देती रहती है। यही बात यहाँ हुई। बहुत दूर

चले जाने पर राजा रास्ता भूल गया। वह बुरी तरह थक गया गया। विश्राम के लिए किसी पेड के नीचे ठहरा। इतने मे जबर्दस्त आंधी उठी और पानी की वर्षा होने लगी। थोडी ही देर में बिजली चमकने लगी। मेघ घोर गर्जना करके मूसलाधार पानी बरसाने लगा और ओलो की बोछार होने लगी। राजा बडी विपदा में फस गया। उसने इसी जगल मे न जाने कितने निरपराध पशुओं को अपनी गोली का निशाना बनाया था। आज वह स्वय प्रकृति की गोलियों–ओलो का निशाना बना हुआ था। राजा ओलों से बचने के लिए वृक्ष के तने मे घुसा जाता था पर वृक्ष ओलों से उसकी रक्षा न कर सका। घोडा थका हुआ था ही। ओलों की मार से यह और हाँफ गया और अन्त मे उसने भी राजा का साथ छोड दिया। अब राजा को एक भी सहायक नजर नहीं आता था। उसके महलो मे सैकडों दास और दासियों का जमघट था, मगर आज मुसीबत के समय कोई खोज-खबर लेने वाला भी नसीब नही था।

विपत्ति हमेशा नही रहती। कभी न कभी टल जाती है। इस नियम के अनुसार पानी का बरसना, मेघों का गरजना और हवा का चलना बन्द हो गया। धीरे-धीरे बादल भी फटने लगे। अब राजा के जी मे जी आया। उसने चारों तरफ दृष्टि दौडाई तो जल ही जल दिखाई दिया। पर दूर की तरफ नजर दौडाने पर अग्नि का कुछ प्रकाश दिखाई दिया।

प्रकाश देखकर राजा के हृदय मे तसल्ली बधी। उसने सोचा वहा कोई मनुष्य अवश्य होगा। वहां चलना चाहिए। रास्ते मे गिरता-पडता–फिसलता हुआ धीरे–धीरे वह अग्नि के प्रकाश की तरफ बढ़ा। वह ज्यो-ज्यो आगे बढता जाता था, एक झोंपडी उसे साफ मालूम होती जाती थी। आखिर राजा झोंपडी के द्वार पर जा पहुचा।

राजा शिकारी के वेष में झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा हुआ। झोंपड़ी में एक किसान रहता था। राजा को देखते ही उसने कहा 'आओ भाई, अन्दर आओ।'

अहा! ऐसी घोर विपदा के समय यह स्नेह-पूर्ण 'भाई' सम्बोधन सुनकर राजा को कितना हर्ष हुआ होगा!

किसान राजा को शिकारी ही समझे था। उसके कपड़े पानी में तर देखकर किसान ने कहा—ओह! तू तो पानी से लथ-पथ हो गया है! आज तुझे बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी होगी!

किसान के सहानुभूति से भरे मीठे शब्द सुन कर राजा गद्गद् हो गया। भाटों और चारणों के द्वारा बखान की गई अपनी विरुदावली सुनने में और अपने मुसाहिबों के मुजरे में जो आनन्द उसे अनुभव नहीं हुआ होगा, वह अपूर्व आनन्द किसान के इन थोड़े-से शब्दों ने प्रदान किया।

किसान ने अपनी स्त्री से कहा- देख, इस शिकारी के सब कपड़े गीले हो रहे हैं। इसे ठण्ड लग रही है। अपना कम्बल उठा ला, इसे कम्बल देकर इसके कपड़े निचोड़ कर सूखने डाल दे।'

किसान की स्त्री कम्बल ले आई। राजा ने बहुत-से कीमती दुशाले ओढ़े होंगे, पर इस कम्बल के ओढ़ने में उसे जो आनन्द आया वह आनन्द दुशालों में नसीब न हुआ होगा।

[illegible] यह छोटी-सी झोंपड़ी [illegible] विशाल [illegible]

[illegible]

राजा सो गया। थकावट के मारे उसे गहरी नींद आ गई।

किसान ने स्त्री से कहा—बेचारे की ठण्ड अभी नहीं गई होगी, जरा आग से तपा दे। स्त्री फूटे-टूटे कम्बल के चीथड़ों का गोटा बना कर राजा को तपाने लगी। किसान की स्त्री अपने पुत्र के समान विशुद्ध-भाव से राजा की सेवा कर रही थी। सरल-हृदय किसान-पत्नी के हृदय में वही वात्सल्य था जो अपने बेटे के लिए होता है।

और किसान राजा के कपड़े हिला-हिला कर अग्नि के ताप से सुखाने में लगा हुआ था।

जब राजा अंगड़ाई लेता हुआ उठ खड़ा हुआ तब किसान ने कहा—अरे अब तो तू अच्छा दिखाई देता है। अब तेरा चेहरा भी पहले से अच्छा मालूम होता है। पर यह तो बता, तू घर से कब निकला था ?

राजा—सुबह।

किसान—तब तो तुझे भूख लगी होगी। अच्छा (स्त्री की तरफ देखकर) अरी जा, इसके लिए रोटी और ढूंगरी पालक की तरकारी ले आ।

राजा मोटी रोटी जंगली तरकारी के साथ खाने बैठा। उसने अपने ससुराल में, बड़ी मनवार के साथ अच्छे-अच्छे पकवान खाये होंगे। पर कहाँ वह पकवान और कहाँ आज की यह मोटी रोटी! उन पकवानों में जड़ का माधुर्य था, पर इस मोटी रोटी में किसान दम्पती के हृदय की मधुरता। उन पकवानों को भोगने वाला था राजा और इस रोटी को खाने वाला था साधारण मानवी! राजा इस भोजन में जो निस्वार्थ-भाव भाव भरा हुआ पाता था, वह उन पकवानों में कहाँ!

रात बहुत हो गई थी। किसान-दम्पती और उसके बाल-बच्चे सो गये। राजा भी उसी झोंपड़ी में फिर सो गया। मगर

राजा को नींद नहीं आ रही थी। मन ही मन वह किसान की सेवा पर लट्टू हो रहा था। पंडितों के उपदेश ने उसके हृदय पर जो प्रभाव नहीं डाला था, किसान की सेवा ने वह प्रभाव उसके हृदय पर डाला। एक ही रात मे उसका सारा जीवन पलट गया। अब तक वह निरा राजा था, आज किसान ने उसे आदमी भी बना दिया।

प्रातःकाल राजा ने अपने कपड़े पहने और किसान से जाने की आज्ञा माँगी। किसान को क्या पता था कि जिसके नाम-मात्र से बड़ों-बड़ों का कलेजा काँप उठता है, वह महाराजाधिराज यही है। उसकी निगाह मे वह साधारण मनुष्य था। किसान ने यही समझते हुए कहा—'अच्छा भाई, जा। यह झोंपड़ी तेरी ही है। फिर कभी आना।'

इस आत्मीयता ने राजा के दिल मे हलचल मचा दी। वह किसान के पैरों में गिर पड़ा। किसान को अपना गुरु मान वह वहाँ से चल दिया।

राजा अपने महल में पहुचा। राजा के पहुचते ही मुसाहबों ने मुजरा किया। रानियो ने आदर-सत्कार कर कुशल-क्षेम पूछी। पर राजा को यह सब शिष्टाचार फीका मालूम हुआ। राजा के दिल में किसान की सेवा-परायणता, किसान-पत्नि की सज्जनता और उन दोनो की सादगी एव वत्सलता ने घर कर लिया था। वह उसे भूल नहीं सका। बार-बार वही याद करके वह प्रफुल्लित हो जाता था।

विद्वानों ने उसे बहुतेरे उपदेश दिये थे, पर उनका कुछ भी असर नही हुआ था। किसान की सरल और निस्वार्थ सेवा ने राजा पर ऐसा जादू डाला कि उसका सारा जीवन-क्रम ही बदल गया। राज्य में जो त्रुटियाँ थीं, उसने उन्हें दूर कर दिया और अपने तमाम दुर्व्यसनों को तिलांजलि दे दी।

एक गरीब की प्रेम-पूर्ण सेवा ने सारे राज्य को सुधार दिया। राजा उस किसान को अपना आदर्श और महापुरुष मानने लगा। जब भी उसे किसान का स्मरण हो आता, तभी वह किसान के चरणों मे अपना सिर झुका देता।

मित्रो! दूसरे के सुख मे अपना सुख मानने वाले का प्रभाव कितना होता है, यह इस कहानी से समझो। वास्तव में वही सच्चे सुख का अधिकारी होता है जो दूसरो के सुख को ही अपना सुख मानता है।

१३ : जिंदगी के गुलाम

एक शहर मे डाके बहुत पड़ते थे। वहाँ के महाजनों ने सोचा—हमेशा की यह आफत बुरी है। चलो सब मिलकर डाकुओं का पीछा करें। उन्हे पकड़ें। सब महाजन तैयार हुए। शस्त्र बाँध कर शाम के समय जगल की तरफ रवाना हुए। रास्ते में विचार किया—डाकू आधी रात को आवेंगे। सारी रात खराब करने से क्या लाभ है? अभी सो जाएँ और समय पर जाग उठेंगे।

सब महाजन पक्तिवार सो गये। उनमें जो सब से आगे लेटा था, वह सोचने लगा—'मैं सब से आगे हू। अगर डाकू आए तो पहला नम्बर मेरा होगा। सब से पहले मुझ पर हमला होगा। मैं पहले क्यो मरूँ? डाका तो सभी पर पड़ता है और मैं पहले मरूँ, यह कौन-सी बुद्धिमत्ता है, अच्छा मैं उठ कर सब के पीछे चला जाऊँ।'

वह सब के अन्त में जाकर सो गया । अब तक जिसका दूसरा नम्बर था । उसका पहला नम्बर हो गया । उसने भी सोचा—'पहले मैं क्यों मरूँ ?' और वह उठा और सब के अन्त में सो गया । इसी प्रकार बारी-बारी सब खिसकने लगे । सुबह होते-होते जहाँ थे वहीं वापस आ गये ।

लड़ाई का काम वीरों का है । वीर पुरुष ही न्याय की प्रतिष्ठा और अन्याय के प्रतीकार के लिए अपने प्राणों की चिन्ता न करके जूझ पड़ते हैं । डरपोक उसमें फतह नहीं पा सकते । जिसके लिए प्राण-रक्षा ही सब कुछ है, जिन्होंने जीवन को ही सर्वोच्च आराध्य-मान लिया है, वे अन्याय बर्दाश्त कर सकते हैं, गुलामी को उपहार समझ सकते हैं और अपने अपमान का कड़ुवा घूँट चुपचाप पी सकते हैं । वे महाजन जीवन के गुलाम थे । इसी कारण वे लड़ाई के लिए निकल कर भी ठिकाने पहुँच गये ।

मित्रो ! जो कदम आपने आगे रख दिया है उसे पीछे मत हटाओ । तभी आप विजयी होंगे।

१९ : सोऽहं

एक गुरु के दो शिष्य थे । दोनों को सोऽहं का पाठ पढ़ाया गया और उस पर स्वतन्त्र विचार-अनुभव करने के लिए कहा गया ।

दोनों शिष्यों में एक उद्दण्ड स्वभाव का था । उसने साधना तो कुछ भी नहीं और सोऽहं—मैं ईश्वर हूँ, इस प्रकार कह कर अपने आप परमात्मा बन बैठा । वह अपने परमात्मा होने का

ढिंढोरा पीटने लगा। जो मिले उसीसे कहता—मैं ईश्वर हूँ। लोगों ने उसकी मूर्खता का इलाज करने के लिए उसके हाथों पर जलते अगारे रखने चाहे। तब वह बोला—हैं! क्या करते हो? हाथ पर अगार रखकर मुझे जलाना क्यों चाहते हो?

लोगों ने कहा—'भले आदमी! कही ईश्वर भी जलता होगा?' फिर भी वह मूर्ख शिष्य अपनी मूर्खता को न समझ सका। वह अपने को ईश्वर कहता ही रहा। एक आदमी ने उसके गाल पर चाँटा मारा। वह बोला—क्यों तुमने मुझे चाँटा मारा?

वह आदमी—मूर्ख! कहीं ईश्वर के भी चाँटा लगता है?

मगर उसकी मूर्खता का रग इतना कच्चा नही था। वह चढ़ा रहा। वह लोगो के विनोद का पात्र बन गया। उससे अधिक वह कुछ न कर सका। पर दूसरा शिष्य साधना मे लगा। वह एकान्तवास करने लगा और सोचने लगा—मैं अनेक प्रकार के रूप से देख रहा हूँ, यह आखो का प्रभाव है। मैं अनेक काव्य सुनता हूँ, यह कानों की शक्ति है। नाना प्रकार के रसों का आस्वादन करना जिह्वा का काम है। किसी वस्तु का स्पर्शज्ञान होना हाथ-पैर आदि का काम है। मैंने जो गध सूंघे हैं सो नाक के द्वारा। तो अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि यह इन्द्रियाँ ही सोऽहं है।

वह अपना निष्कर्ष लेकर प्रसन्न होता हुआ गुरुजी के पास पहुँचा। गुरुजी से बोला—महाराज, मैंने सोऽहं का पता पा लिया है।

गुरुजी—कैसे पता पा लिया?

शिष्य—जो इन्द्रियाँ हैं वही सोऽहं है।

गुरुजी—जाओ, अभी और साधना करो। तुम्हें अभी तक सोऽहं का ज्ञान नहीं हुआ।

शिष्य चला गया। उसने सोचा—मैं अब तक सोऽहं का

पता न पा सका। खैर, अब फिर प्रयत्न करता हूँ।

वह फिर साधना मे जुट गया। विचार करने लगा—गुरुजी ने कहा है—इन्द्रियां सोऽहं नहीं हैं। वास्तव मे इन्द्रियां सोऽहं कैसे हो सकती हैं इन्द्रियां सोऽहं होती तो अस्थिरता कैसे होती? इन्द्रियां बचपन मे जैसी थीं आज वैसी कहां हैं? इसके अतिरिक्त मैंने भूतकाल मे अनेक शब्द सुने थे। उनका आज भी मुझको भान है, यद्यपि वे वर्त्तमान मे नही बोले जा रहे हैं। भूतकाल में मैंने जो विविध रूप देखे थे वे आज दिखाई नही दे रहे हैं फिर भी उनका मुझे स्मरण है। अगर इन्द्रियां ही जानने वाली होतीं तो वर्त्तमान में भूतकालीन विषयो को कौन स्मरण रखता? इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि इन्द्रियों से परे कोई ज्ञाता अवश्य है। तब फिर वह कौन है?

उसने समस्या पर गहराई के साथ विचार किया। तब उसे जान पड़ा कि इन सब क्रियाओं में मन की प्रेरणा रहती है। अतएव मन ही सोऽहं होना चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके वह गुरुजी के पास आया। बोला—गुरु महाराज, मैं सोऽहं का मतलब समझ गया।

गुरुजी—क्या समझे?

शिष्य—यह जो मन है सो ही सोऽहं है।

गुरुजी—फिर जाओ और साधना करो।

शिष्य फिर चला गया। उसने फिर साधना आरंभ की। सोचा—मन सोऽहं नहीं है। ठीक है। मन को प्रेरित करने वाला कोई और ही है। उसी का पता लगाना चाहिए। उसने बहुत विचार किया। तब उसे मालूम हुआ। मन को बुद्धि प्रेरित करती है। इसलिए मन से परे बुद्धि सोऽहं है। वह फिर गुरुजी के पास पहुँचा। कहने लगा—गुरुजी, अब मैंने सोऽहं को समझ पाया है।

गुरुजी—क्या है, बताओ?

शिष्य—मन से परे बुद्धि सोऽहं है।

गुरुजी—बस्स, जाओ, अभी और साधना करो।

शिष्य बेचारा फिर साधना में लगा। सोच-विचार के पश्चात् उसने स्थिर किया—गुरुजी ने ठीक ही कहा है कि बुद्धि सोऽहं नही है। अगर बुद्धि सोऽहं होती तो उसमें विचित्रता-विविधता क्यों होती ? कभी वह विकसित होती है, कभी उसमें मंदता आ जाती है। कभी अच्छे विचार आते हैं, कभी बुरे विचार आते हैं। इससे जान पडता है कि बुद्धि के परे जो तत्त्व है वही सोऽहं है।

शिष्य बडी प्रसन्नता के साथ गुरुजी के पास पहुँचा। बोला —महाराज, अब की बार सोऽहं का पक्का पता चला आया हूँ।

गुरुजी—क्या ?

शिष्य—जो गुह्य तत्त्व बुद्धि से परे है, जिसकी प्रेरणा से बुद्धि का व्यापार होता है, वह सोऽहं है।

गुरुजी—(प्रसन्नतापूर्वक) हाँ, अब तुम समझे। जो कुछ तुम हो वही ईश्वर है। उसी को सोऽहं कहते हैं।

मित्रो ! आत्मा का पता आत्मा के द्वारा आत्मा को ही लग सकता है।

१५ : बेबुनियाद लड़ाई

चाँद नाम का एक मुसलमान था। उसने अपनी बीवी से कहा—मैं एक भैंस लाऊंगा।

बीवी बोली—बडी खुशी की बात है। मैं अपने मायके (पीहर) वालों को भी छाछ भेजा करूंगी।

यह सुनना था कि मियाँ का पारा तेज हो गया। वे बिगड़ते हुए उठे और बीबी को लतियाने लगे।

बीबी बेचारी हैरान थी। उसकी समझ मे ही न आया कि मियाँ साहब क्यो खफा हो उठे हैं? उसने पूछा—मियाँ, आखिर बात क्या है? क्यो नाहक मुझ पर टूट पड़े हो?

मियाँ गुस्से मे पागल हो गये। बोले—राँड कही की, भैंस तो लाऊँगा मैं और छाछ भेजेगी मायके वालो को?

इसके बाद फिर तडातड, फिर तडातड!

लोग इकट्ठे हुए। उन्हें मियाँ के कोप का कारण मालूम हुआ तो उन्हें भी जब्त न रहा। उन्होने मियाँ को मारना आरंभ किया। तमाचे पर तमाचे पडने लगे।

अब मियाँ की अक्ल ठिकाने आई। चिल्ला कर कहने लगे—खुदा के वास्ते माफ करो भाई, आखिर तुम लोग मेरे ऊपर क्यों पिल पडे हो?

लोगो ने कहा—तेरी भैंस हमारा सारा खेत खा गई है।

मियाँ—भैंस अभी मैं लाया ही कहाँ हूँ?

लोग—तेरी बीबी ने पीहर वालो को छाछ भेजी ही कहाँ है?

मियाँ समझे। उन्हें होश आया। अपनी भूल समझ कर शर्मिन्दा हुए।

स्त्रीशिक्षा का कार्य जब आरम्भ होगा तब होगा, पर उसके विरुद्ध अभी से काना-फूसी होने लगी है। जो लोग ऐसा करते हैं वे उक्त मियाँजी का दृष्टान्त चरितार्थ करते हैं।

एक ही बात नहीं, अनेक बातों में अक्सर इसी प्रकार बेबुनियाद लड़ाई-झगड़ा खड़ा हो जाता है और लाखों रुपया कच-हरी देवी की भेंट चढ़ जाता है। बेचारे जब हैरान-परेशान हो जाते हैं पर आग लगी—बुझी थमती नहीं।

१६ : मूल का सुधार

एक बाबाजी थली की ओर आ निकले । जगल का मामला था । बाबाजी को भूख प्यास सता रही थी । ऊपर से सूरज अपनी कठोर किरणें फेंक रहा था । पर विश्रान्ति के लिए न कहीं कोई वृक्ष आदि दिखाई दिया और न पानी पीने के लिए जलाशय ही नजर आया । बाबाजी हाँफते–हाफते कुछ और आगे बढ़े । थोडी दूर पर, रेतीले टीलो पर तस्तूम्बे के फल की बेल दिखाई दी । बाबाजी पहले कभी इस ओर आये नहीं थे । इस कारण इसके गुणों और दोषों से अनभिज्ञ थे । बाबाजी इन बेलों के पास आये और पीले–पीले सुन्दर फल देखे तो बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने सोचा—अब इनसे मैं अपनी भूख मिटाऊगी ।

बाबाजी ने एक फल तोडा और मुँह मे डाला । जीभ से स्पर्श होते ही उनका मुँह जहर सा कडुआ हो गया । उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । देखने मे जो फल इतना सुन्दर है, उसमें इतना कडुवापन । मगर वे धुन के पक्के थे । उन्होंने सोचा—देखना चाहिए, फल मे कटुकता कहाँ से आई है ? कटुकता की परीक्षा करने के लिए बाबाजी ने पता चखा । यह भी कटुक निकला । फिर तन्तु का आस्वादन किया तो वह भी कटुक ! अन्त में जड़ उखाड़ कर उसे जीभ पर रखा तो वह भी कटुक निकली । बाबाजी ने मन में कहा—जिसकी जड ही कटुक है उसका फल मीठा कैसे हो सकता है ? फल मीठा चाहिए तो मूल को सुधारना होगा ।

१७ : अन्धापन

कहा जाता है, एक बार बादशाह ने अपने दरबारियों से पूछा—कहा अन्धे ज्यादा हैं या आंख वाले ?

दरबारियों ने कहा—जहांपनाह, यह तो साफ दीखता है कि अन्धे थोड़े हैं और आंख वाले ज्यादा हैं ।

बादशाह इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुआ । उसने यही प्रश्न वजीर से किया । वजीर बोला—अन्धे ज्यादा हैं और आंख वाले कम हैं । आंख वाला तो हजारों-लाखों में एक निकलेगा ।

बादशाह ने कहा—तुम्हें अपनी बात सिद्ध करके बतानी होगी ।

वजीर— ठीक है । मैं साबित कर दूंगा ।

एक दिन वजीर बादशाह को जमना के किनारे ले गया । उसने वहां एक स्थान बैठने के लिए विशेष तौर से बनवाया था । उस स्थान पर बादशाह को तथा अन्य साथियों को बिठला कर वजीर अपने आपका स्वांग ले आया । जब वह स्त्री बन कर आया तब सब लोग उसे स्त्री कहने लगे । घड़ी भर स्त्री का स्वांग दिखा कर फिर पुरुष बन आया । तब सब लोग उसे पुरुष कहने लगे । इस प्रकार वजीर ने जितने स्वांग दिखाये, लोग उसे वैसा ही कहने लगे । अन्त में वजीर अपने असली रूप में आया । सब लोग कहने लगे—वजीर साहब तशरीफ लाये हैं ।

वजीर ने बादशाह से कहा—हुजूर, देखिये, सब लोग अन्धे हैं कि नहीं ? मैं अभी कई-एक भेष बना कर आया था परन्तु मुझे किसी ने नहीं पहचाना । कोई भी मेरा असली रूप नहीं देख सका । सभी लोग मेरे ऊपरी भेष के अनुसार अनेक नामों से मुझे

पुकारते रहे । अतएव इन सब को अन्धों की गिनती मे गिनना चाहिए । अब यही लोग मुझे वजीर कह रहे हैं, इसलिए भी अन्धे हैं । एक दृष्टि से देखा जाय तब तो मैं मनुष्य हू और दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो मैं आत्मा हू । स्त्री, पुरुष या वजीर हूं तब भी क्या मनुष्य से भिन्न हू ? मगर लोग असलियत नहीं देखते । मेरे ख्याल से जो असलियत नही देखता वह अन्धा है ।

इसी दृष्टान्त के अनुसार लोग अपने आपको और दूसरों को स्त्री, पुरुष या बच्चा कहते हैं । मगर वास्तव मे वह कथन ठीक नही है । स्त्री-पुरुष आदि तो आत्मा की औपाधिक पर्यायें हैं । आत्मा, ईश्वर है, यह बात ही सत्य है । लोग कडे और कण्ठी आदि को सोना कहना गलत मानते हैं और सोने को कडे कण्ठी आदि कहना सही समझते हैं । उस प्रकार आत्मा को ईश्वर मानना झूठ दिखाई देता है और गरीब, अमीर, पुरुष, स्त्री आदि मानना सत्य मालूम होता है । इसी भ्रम के कारण आत्मा ससार के झझटों मे पड़कर ईश्वर से दूर जा पडा है ।

१८ : कर्त्तव्य-पथ

कबूतरो की एक टोली जगल मे विचर रही थी । इस टोली का नेता चित्रग्रीव था । वैज्ञानिक कहते हैं कि सर्वसाधारण जनता जिन्हें अपने से बडा मानती है उनमे कोई असाधारण गुण होता है । इस कथन के अनुसार कबूतरों ने चित्रग्रीव मे नेता के योग्य गुण देखकर उसे अपना नेता बनाया था और उसकी सम्मति से सब साथ-साथ विचरते थे । विचरते-विचरते कबूतरों ने जगल में

चावल बिखरे देखे। एक पारधी ने चावल बिखेर कर उनके ऊपर जाल फैलाया था। चावलों को देखकर कुछ कबूतर कहने लगे—'चलो, चावल पड़े हैं, उन्हें खाएँ।' पर राजा चित्रग्रीव ने विचार कर कहा—

इस निर्जन वन में चावलों के दाने कहाँ से आये ? मुझे तो इन चावलों को खाने में कल्याण नहीं जान पड़ता। अतएव थोड़ी देर राह देखो मैं जाँच-पड़ताल कर आता हूँ।

राजा चित्रग्रीव ने ऐसा कहा। पर आज के युवक मानें, तो वे कबूतर मानें! ऐसे थे वे कबूतर! राजा या नेता बना तो दिया जाता है, पर बहुत बार उसकी आज्ञा मानने में कठिनाई प्रतीत होती। इस प्रकार एक हठी कबूतर को राजा चित्रग्रीव का कथन रुचिकर न हुआ। वह बोला-विपदा के वक्त बूढ़ों की बात माननी चाहिए। भोजन के समय बूढ़ों की बात मानने में तो हानि होती है। यदि हम ऐसी शंका करते रहेंगे, तो सभी जगह ऐसी शंकाएँ उत्पन्न होंगी और फल यह होगा कि तड़प-तड़प कर भूखों मरना पड़ेगा। आँखों के आगे चावल पड़े हैं, फिर भी चावल लेंगे तो 'यह होगा, वह होगा' इस तरह कार्य कारण, भाव का विचार करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ? राजा की यह बात हमें तो जँचती नहीं।

आज के नवयुवक यह कहने लगते हैं कि हम यदि इन वृद्धों के कथनानुसार चलेंगे तो अणु मात्र भी सुधार न हो सकेगा। कबूतर भी यही कहने लगे। पर ऐसी परिस्थिति में नेता का क्या कर्त्तव्य है, यह देखिए।

चित्रग्रीव ने सोचा—'सब कबूतर एक-मत हो गये हैं। मैं इनके मत में विरुद्ध चलूँगा तो अनैक्य आ घुसेगा। इस प्रकार विचार कर उसने कबूतरों से कहा—'यदि सभी का विचार चावल खाने का है, तो चलो। भूख तो मुझे भी लगी है।' चित्रग्रीव ने

यह नही कहा कि तुम लोग मेरी बात नहीं मानते तो तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मैं तो तुम से अलग ही रहूँगा। चित्रग्रीव को भली-भांति ज्ञान था कि यहां संकट है, फिर भी उसने सोचा— संकट-काल मे मुझे सब के साथ रहना चाहिए। यही मेरा कर्त्तव्य है। जब सिर पर संकट आ पड़ेगा, तब आप ही मेरी बात मानेंगे।

यह विचार कर राजा भी सब कबूतरों के साथ चल दिया। कबूतरों ने चावल के दाने तो खाये, पर सब के पैर जाल मे फस गये। वे उडने मे असमर्थ हो गये। अब सभी कबूतर उस जवान कबूतर को कोसने लगे कि तूने राजा की आज्ञा नही मानी और सबको जाल में फँसा दिया। राजा ने सबको सान्त्वना देते हुए कहा—जो होनहार था सो हो गया है। अब उसे कोसना छोडकर जाल मे से छुटकारा पाने का उपाय खोजो। उपालम्भ देने से काम नहीं चलने का।

राजा की यह बात सुनकर सब कबूतर कहने लगे—आप ही इसका कोई उपाय बताइए।' राजा बोला—'तो मेरी बात सब लोग मानोगे न ?' सब ने कहा—'पहले आपकी बात न मानने का कटुक फल यह भोगना पड रहा है। अब आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे और आप जो आज्ञा देंगे वही करेंगे।'

संकट एक शिक्षाप्रद बोध-पाठ है। राजा ने कहा—यदि सब एक मत हो जाओ तो हम संकट से मुक्त हो सकते हैं। एक भी कबूतर अगर अलग रहा तो संकट से मुक्त न हो सकेंगे। अतएव सब हिलमिल कर एक साथ उडो और बस जाल को साथ ही साथ उठाओ, तो जाल से मुक्ति पाई जा सकेगी।'

आज भारत मे फूट है और इसी फूट के कारण पारधियों की बन पडी है। फूट न होती तो भारत किसी के जाल मे न फंसता।

सब कबूतर मिलकर एक साथ जाल को लेकर आकाश मे

उड चले। कबूतरों को उडते देख पारधी उनके पीछे-पीछे दौडा और सोचने लगा— मैं इन कबूतरो को अपने जाल मे फँसाना चाहता था, पर यह तो मेरे जाल को लेकर चलते बने। इस समय यह सब एक-मत हो रहे हैं, पर जब इनमे फूट पडेगी तब सारे नीचे आ गिरेंगे। यह सोचकर पारधी कबूतरों के पीछे-पीछे भागने लगा। पारधी को पीछा करते देख राजा ने कहा—देखो, पीछे अपना शत्रु आ रहा है। अतएव आपस मे झगडना नही और यह न सोचना कि उडने में सब अपने बल का उपयोग कर रहे हैं तो मैं अपने बल का उपयोग क्यों करूँ? यदि आपस मे लडोगे-झगडोगे या एक-दूसरे को सहकार न दोगे, तो हम सभी नीचे गिर पडेंगे, काल का ग्रास बन जायेंगे। राजा की यह चेतावनी सुनकर सब कबूतर मिल कर उडने लगे। पारधी थोडी दूर तो पीछे-पीछे दौडा पर अन्त मे वह थक गया और वापस लौट गया। पारधी को पीछा लौटा देखकर कबूतरों ने राजा से कहा—शत्रु तो लौट रहा है, अब हमें क्या करना चाहिए? राजा ने कहा—हम लोग एक आपत्ति से मुक्त हो गये है, पर अभी जाल से मुक्त होना बाकी है। जाल को तोडने की शक्ति हम लोगो में नहीं है। यह शक्ति जमीन खोदने वालों मे ही होती है। अतएव हम आगे उडते चलें। हम तो सिर्फ उडना जानते हैं, हमें जाल काटना नहीं आता!

आज स्वतन्त्रता तो सभी चाहते हैं। किन्तु जो लोग आकाश मे सैर विहार करने की तरह केवल लम्बे-चौडे भाषण ही करना जानते हैं, उनसे परतन्त्रता का जाल कट नही सकता। परतन्त्रता का जाल तो जमीन को खोदने वाले किसान ही काट सकते हैं।

राजा ने कबूतरों से कहा—गण्डक नदी के किनारे हिरण्यक नामक मेरा एक मूषक (चूहा) मित्र रहता है। हालां कि मैं कबूतर हूं और वह चूहा है, फिर भी चक्र-वेगात कभी एक दूसरे को सहा-

पता पहुचा सकें, इस उद्देश्य से हमने आपस में मित्रता की है। अतएव हम सब उसके पास चलें, तो वह इस जाल के बन्धनों को काट डालेगा और हम लोगो को बन्धन-मुक्त कर देगा।

सब कबूतर उडते-उडते गडकी नदी के किनारे आ पहुचे। जाल के साथ कबूतरो को उडते आते देख हिरण्यक भौचक्का गया। सोचने लगा—यह कौन-सी आफत आई है! लेकिन उसने अपने बिल मे सौ द्वार बना रक्खे थे, इसलिए कि आपत्ति आने पर किसी न किसी द्वार से निकल कर बाहर हो सके। कबूतरों को देखकर वह चट से अपने बिल मे घुस गया।

हिरण्यक के बिल के पास आकर चित्रग्रीव ने कहा—'मित्र हिरण्यक! बाहर निकलो, मैं तुम्हारा मित्र हू।' मित्र की आवाज पहचान कर हिरण्यक बाहर निकला और चित्रग्रीव से कहने लगा—'तुम इतने बुद्धिमान् हो, फिर इस जाल मे कैसे फस गये!' राजा ने उत्तर दिया—यह तो समय की बलिहारी है। राजा ने यह नही कहा कि इन कबूतरो ने मेरा कहना नही माना इस कारण जाल मे फस गये। हिरण्यक यह सुन कर चित्रग्रीव मित्र का जाल काटने के लिए उसके पास आया। पर चित्रग्रीव ने कहा—मित्र! पहले मेरे इन साथियो के बन्धन काटो। चित्रग्रीव चाहता तो पहले अपने बन्धन कटवा सकता था। पर उसने ऐसा न करते हुए अपने बंधन काटने का आदेश नहीं दिया। हिरण्यक ने कहा— मित्र! मैं बहुत छोटा प्राणी हूँ। मैं इन सबके बन्धन कैसे काट सकूंगा? मेरे दात भी इतने मजबूत नहीं हैं कि सबके बंधन काट सकू। अतएव पहले तुम्हारे बंधन काट देता हूँ। इसके बाद यदि मेरे दातों में शक्ति होगी, तो दूसरो के भी काट दूगा।

हिरण्यक की बात चित्रग्रीव ने स्वीकार न की। नीति कहती है—

आपदर्थे धन रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।

आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥

भावार्थ—आपत्ति के समय के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए, और धन का त्याग करके भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, परन्तु आत्म-रक्षण के समय स्त्री की या धन की हानि का भी ख्याल नहीं करना चाहिए। जब नीति यह कहती है तो चित्र-ग्रीव ने अपने बंधनों को पहले क्यों नहीं कटवा लिया? उत्तर यह है कि नीति भले ही ऐसा विधान करती हो, पर धर्म तो कुछ और ही बतलाता है। हिरण्यक ने अपने मित्र को जब यह नीति बतलाई तो राजा ने कहा—

नीति भले ही ऐसा विधान करती हो, पर मैं तो नीति से आगे बढ़ गया हूं। नीति मस्तक की उपज है, जब कि धर्म हृदय से उद्भूत होता है। नीति अपने आश्रितों की परवाह न करके अपनी रक्षा करने का आदेश देती है, पर धर्म बतलाता है कि स्वयं कष्ट-सहन करके भी दूसरों को सुखी बनाओ! राजा ने कहा—मैं तो धर्म का पालन करूंगा। प्रिय मित्र! मैं तुम्हारे ऊपर अधिक बोझ लादना नहीं चाहता। तुममें जितनी शक्ति हो उसी के अनुसार मेरे इन आश्रितों के बन्धन काटो।

धर्म का यह विधान है कि दूसरों के लिए धन और यहां तक कि जीवन का भी उत्सर्ग कर देना चाहिए, जब कि नीति स्वयं अपना रक्षण करने के लिए कहती है।

धर्म और नीति में यही अन्तर है। धर्म कहता है—'लीजिए', नीति कहती है—'लाये जाओ।' नीति स्वार्थ पर नजर रखती है, धर्म परमार्थ की ओर संकेत करता है। जिस प्रकार माता का धर्म बालक को चूमना, पुचकारना ही नहीं है, किन्तु बालक का लालन-पोषण करना है, इसी प्रकार आगे बढ़ते जाइये और इस नीति द्वारा धर्म को हृदय में स्थान देते चले जाइए।

चित्रग्रीव ने कहा—मित्र! जब मैं राजा हूं तो राजा की

हैसियत से अपने आश्रितों की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है या नहीं ? मित्रता की खातिर तुम्हारा भी यह कर्तव्य है कि पहले मेरे आश्रितो के बन्धन काट कर फिर मेरे बन्धन काटो । मित्र ! पहले मेरे आश्रितो के बन्धन काटकर मेरे इस भौतिक शरीर के बदले मेरे यश रूपी शरीर की रक्षा करो । यह भौतिक शरीर नाशवान है, जब कि यश अविनश्वर है । अतएव हे मित्र ! मेरे भौतिक शरीर का भोग देकर भी यश शरीर को बचाओ ।

आज के वृद्ध भी स्वार्थ मे डूबे हैं । इसलिए वृद्धों का कर्त्तव्य भी युवको को बताना पडता है ।

मित्र की यह बात सुनकर हिरण्यक को अत्यन्त आनन्द हुआ । उस हर्ष के आवेश मे उसने सब कबूतरो के बन्धन काट फैंके । हिरण्यक चित्रग्रीव से कहने लगा—मित्र ! तुम्हारे उन्नत और उज्ज्वल गुण तुम्हे तीन लोक का स्वामी बनाने के लिए पर्याप्त हैं । वास्तव में त्रिलोकपति वह है जो स्वय कष्ट-सहन करके दूसरों को कष्ट से बचाता है । यही मानव-धर्म है । स्वय आपत्तियों को झेलकर दूसरो को सुख-शान्ति पहुचाना ही मानवधर्म है ।

हिरण्यक ने सबके बन्धन काटकर चित्रग्रीव के बन्धन काटे । राजा ने सब कबूतरो से कहा—जो हुआ सो हुआ । 'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेहु ।' अब उसे याद न करना, अन्यथा परस्पर मे लडाई होगी ।

हिरण्यक ने कहा—'मैं आपका क्या सत्कार करूं ? मेरे पास इतनी भोजन-सामग्री भी नहीं है कि आप सब को भोजन करा सकूं ?' राजा ने उत्तर दिया—'भोजन देना कोई बड़ा काम नहीं है । तुमने हमे बन्धनों से मुक्त कर दिया है तो अब खाने की क्या चिन्ता है ?'

इसी प्रकार आप भी दूसरो को कष्टों से मुक्त करने का प्रयत्न करो और ऐसा चिन्तन करते रहो कि मैं स्वय कष्ट

झेलकर भी दूसरों को सुखी बनाऊँ! प्राणी मात्र को आत्म-तुल्य समझूँ। इसके लिये परमात्मा से ऐसी प्रार्थना करो.—

दयामय! ऐसी मति हो जाय।
औरों के सुख को सुख समझूँ, सुख का करूँ उपाय।
अपना दुःख मैं सहूँ किन्तु पर-दुःख न देखा जाय॥
दयामय०!

दूसरों को कष्ट से मुक्त करने लिये तुम स्वयं कष्ट सहिष्णु बनो, दूसरों के सुख में अपना सुख समझो।

११ : मोह का छाला

किसी राजा के हाथ में एक छाला हो गया। उस छाले का नाम मोती छाला था और वह बड़ा विषैला था। चिकित्सकों ने राजा से कहा—अगर शस्त्र से इसकी चीरफाड़ की गई तो आपका बचना कठिन होगा। यह छाला अगर हंस की चोंच से फूटे तो अच्छा हो जायगा।

राजा ने चिन्तित होकर कहा—हंस मिले और वह छाले को फोड़े! ऐसा योग कब और कैसे मिलेगा।

चिकित्सकों ने कहा—उद्योग करने वालों के लिए कोई बात असम्भव नहीं है। राजहंस के मिलने का उपाय हम बतलाते हैं।

राजा के पूछने पर चिकित्सक ने कहा—समुद्र के किनारे, ऊँची छत पर, एक तम्बू तनवाकर आप उसके नीचे सो रहिये। फटे हुए तम्बू के नीचे हाथ इस प्रकार रखिये कि केवल छाला ही बाहर दीखे—आपका शरीर और शेष हाथ भी तम्बू से बाहर

न दिखाई पड़े। उस छाले के आस-पास मोती बिखेर दीजिए और वहाँ अन्य पक्षियो का भी भोजन रख दीजिये, जिससे अन्य पक्षी भी वहाँ एकत्र हो जावें। पक्षियों को देख कर पक्षी आते है। इस उपाय से, सम्भव है, राजहस भी आजावे और अपनी चोंच से, मोती समझ कर आपका छाला भी फोड दे।

मरता क्या न करता! इस कहावत के अनुसार राजा ने ऐसा ही किया। सयोग से अन्यान्य पक्षियो की तरह एक दिन राजहस भी वहाँ उतर आया। मोती समझकर उसने छाले में चोंच मारी। छाला फूट गया। राजा को अत्यन्त शान्ति का अनुभव हुआ।

राजा को अन्य पक्षियों से प्रयोजन नहीं था। उसे केवल राजहस की अपेक्षा थी। मगर यदि वह उदारता से काम न लेता—अन्य पक्षियो को दाना न देता, या उनके आने पर उन्हें मार भगाता, तो क्या राजहस उसके पास फटकता?

"नहीं।"

राजा को जैसा छाला था, वैसा ही छाला आपको मोहनीय कर्म का है। मोहनीय कर्म रूपी विषैले छाले को फोडने के लिए आपको महानिर्जरा रूपी चोंच की आवश्यकता है और वह भी साधु रूपी राजहस की चोंच होनी चाहिए। लेकिन जैसे राजा अगर अन्य पक्षियों को भगा देता होता तो राजहस उसके पास न आता, इसी प्रकार आप अपने घर आये अतिथि—भिखारी का अपमान करके केवल सुपात्र साधु की इच्छा करोगे तो साधु कैसे आएगे? पक्षी को उडाते देख दूसरा पक्षी भी उड़ जाता है। इसी प्रकार साधु जब आपको अन्य अतिथियो—भिखारियों का अपमान करते देखेगा तो वह आपके यहाँ क्यो आवेगा?

२० : फकीरी और अमीरी

अरब के रेतीले मैदान में एक फकीर घूम रहा था। प्रथम तो ग्रीष्म-ऋतु थी, जिस पर दोपहर का सूरज आकाश से आग बरसा रहा था। पृथ्वी तवे की तरह तपी हुई थी। फिर भी फकीर अपनी मस्ती मे ऐसे घूम रहा था, मानो किसी शीतल उद्यान मे भ्रमण कर रहा हो।

किसी आवश्यक कार्य से, एक आदमी उधर होकर निकला। अमीर ऊट पर सवार था। खाने-पीने का सामान उसके साथ था। अमीर के पीछे उसी ऊट पर उसका एक नौकर बैठा था। उसके बायें हाथ मे छाता था और दाहिने हाथ में पखा। अमीर महाशय को धूप और गर्मी से बचाने के लिए नौकर पूरा उद्योग कर रहा था। उत्तम वस्त्र और आभूषण अमीर की शोभा बढा रहे थे।

अमीर की नजर मस्त फकीर पर पड़ी। उसने कहा—यह भी कोई आदमी है! कैसा बदशक्ल और मनहूस है! इसे अपनी जिन्दगी की भी चिन्ता नहीं है। धूप मे बिना कपड़ा-लत्ता, बिना छाता, प्रेत की तरह घूम रहा है!

अमीर की उत्सुकता बहुत बढ़ गई। उसने फकीर को रोका और पूछा—तू कौन है? फकीर ने लापरवाही से उत्तर दिया—जो तू है सो मैं हूँ!

अमीर की त्योरियाँ चढ़ गईं। यह नाचीज मेरी बराबरी करता है? उसने रोष मे कहा—मनुष्यता का कोई चिन्ह तो तुझ मे नजर नहीं आता, अलबत्ता तू मनुष्य को बदनाम करता है। तुझ जैसे बेवकूफ फकीरों ने ही दुनिया को दुःखी बना रक्खा है। तेरी जिन्दगी से तो तेरी मौत बहतर है। मौत आ जाय तो

मनुष्यो का एक कलक कम हो जाय।

अमीर लोग मनुष्यता को शायद वस्त्रो और आभूषणों से नापते हैं। अगर मनुष्यता को नापने का यही गज हो तो वे मनुष्यता की प्रतिस्पर्द्धा मे बहुत पिछड जावे। इसी कारण उन्होंने यह गज मान लिया है। उनकी निगाह में वह मनुष्य निरा जगली पशु है, जिसके पास पहनने को कपडा नहीं और सजने को आभूषण नहीं। मगर बात उलटी है। जिनके पास मनुष्यता का बहुमूल्य आभूषण है उन्हें जड आभूषणो की क्या आवश्यकता है? जिन्हें मनुष्यत्व का वास्तविक और सहज आभूषण प्राप्त नही है वही लोग ऊपरी आभूषण लादकर अपने आपको आभूषित घोषित करते हैं।

अमीर की बात के उत्तर मे फकीर ने कहा—'हम क्यों मरें? मरेंगे तो अमीर मरेंगे।'

अमीर ने फकीर को फटकार बताई और सामने से हट जाने को कहा। फकीर पहले की तरह, मस्त भाव से चल दिया।

थोडी ही देर हुई थी कि बड़े जोर की आंधी आई। आंधी मे छाता उड गया और छाता उडने के कारण ऊंट भडक उठा। ऊट भडकने से अमीर और उसका नौकर धड़ाम से धरती पर आ गिरे। दोनो की मृत्यु हो गई।

आंधी जब थम गई तो वही फकीर घूमता-घामता उधर से आ निकला, जहां अमीर और उसका नौकर मरा पडा था। फकीर ने अमीर की लाश को पैर की ठोकर लगाते हुए कहा—साली अमीरी! तूने मेरे दोस्त को इतनी जल्दी मार डाला। वह था तो मुझ-सा ही मनुष्य, पर तूने बात की बात मे उसके प्राण ले लिये।

फकीरी इस तरह खुदा को प्यारी है। सब लोग फकीर नहीं हो सकते, मगर इतना तो सभी कर सकते हैं कि वे फकीर की निन्दा न करें।

२१ : धार्मिक की पहिचान

किसी भी प्राणी को दुःखी देखकर, हृदय उस दुःख को अपना ही अनुभव करने लगे—हृदय मे सहानुभूति की भावना उमड उठे, तो समझना कि मेरे हृदय मे दया विराजमान है। जो मनुष्य दुःखी जन को देख कर उपेक्षा-पूर्वक कहता है—'अपने किये का फल भोग रहा है। इसके और इसके किये के बीच मे पडने की मुझे क्या जरूरत है?' उसके दिल मे दया का वास नही है। ऐसा विचार आना एक प्रकार की निर्दयता है—क्रूरता है, अधार्मिकता है। खेद है कि आजकल कुछ भाई धर्म के नाम पर इस निर्दयता का पोषण करते है। वे इस दया को मोह—अनुकम्पा कहकर त्याज्य ठहराते है। वास्तव मे पुण्यवान् पुरुष ही दया-धर्म का पालन कर सकता है। एक उदाहरण से यह स्पष्ट होगा—

कहते हैं, काशी में एक मेला था। विश्वनाथ के मन्दिर मे सोने का एक थाल आया। किसी देवता ने वह थाल मन्दिर मे रख कर आवाज दी—जो सब से अधिक भक्त हो उसे यह थाल उपहार में दिया जाय। सबसे बडे भक्त की पहचान यह है कि भक्त का हाथ लगने से थाल देदीप्यमान हो उठेगा और जो सच्चा भक्त न होगा उसका हाथ लगने से लोहे या पीतल का दिखाई देगा।

थाल को देख कर विश्वनाथ के पंडे कांप उठे। उन्होंने सोचा यह थाल हमें हजम नहीं हो सकेगा। इसे किसी को दान में ही दे डालना चाहिए। यह सोचकर एक पण्डे ने, ऊँचे स्थान पर खड़े होकर थाल का हिसाब बताया।

एक तो सोने का थाल हाथ लगता है और दूसरे सबसे बडे

धर्मात्मा की पदवी मिलती है। भला किसका मन न चलता ? सबके मुँह में पानी भर आया। सभी थाल लेने दौड पडे।

मेले मे एक सेठ लाखों का दान करने वाला आया था। उसे अपने दान का बडा अभिमान था। वह समझता था—मुझ सा दानी-धर्मात्मा कोई है ही नहीं। वह पुजारी के पास आया और अपने दान-धर्म का बखान करके थाल पाने का अधिकारी बताने लगा। लेकिन पुजारी ने जैसे ही उसके हाथ मे थाल दिया कि थाल काला पड गया। थाल काला होते ही सेठजी का चेहरा भी काला हो गया। वह मन ही मन लज्जित हुआ, पछताया और नीची निगाह किये चलता बना।

उसके बाद दूसरा तीसरा, चौथा और पाँचवाँ व्यक्ति आया। किसी को अपने तप का अभिमान था, किसी को अपने चरित्र पर नाज था। कई अपने दान के अभिमान में डूबा था और कोई ठाकुरजी की भक्ति के अहंकार में चूर था। सभी ने थाल को हाथ में लिया, पर थाल ने सबकी पोल खोल दी। थाल काला पड गया। जब इन्होंने थाल को यथास्थान रखा तो पहले की तरह चमकने लगा।

एक गरीब किसान कन्धे पर हल लादे खेत की तरफ जा रहा था। रास्ते में उसने एक मूच्छित मनुष्य को पडा देखा। कृषक स्वभाव से दयालु था। उसे दया आगई। वह उसके पास गया। उसे उठाया और बडे यत्न के साथ अपने झोंपडे मे ले गया। वहाँ उसने अपनी गाय दुह कर उसे ताजा दूध पिलाया, शीतल उपचार किया। तब उसकी मूर्छा हटी। मूर्छा हटते ही उसने कृषक से पूछा—"भाई, तुम कौन हो ?"

कृषक ने कहा—मैं एक गरीब किसान हूं। इसी झोंपडे मे रहता हू। इसके सिवाय मेरा और कोई परिचय नही है।

किसान की सरलता से अजनबी मुग्ध हो गया। बोला—

'मेले में मेरे कई जान-पहचान वाले हैं, कई सम्बन्धी भी हैं। उनमें से किसी ने मुझे संभाला नहीं। तुमने बिना किसी जान-पहचान के ही उठा लिया और जीवन दिया। मैं उपकार का बदला कैसे चुका सकूंगा?'

कृषक ने कहा—'मैंने अपना कर्त्तव्य पाला है। कर्त्तव्य-पालन में बदला लेने की भावना नहीं होती। आप कृपा करके मुझे किसी प्रलोभन में न डालिये। आपकी सेवा से मुझे जो सन्तोष और सुख हुआ है, वही मेरे कर्त्तव्य का उपयुक्त पुरस्कार है। सेवा को आजीविका बनाना मुझे नहीं रुचता और आप कहते हैं कि तुम्हारा हमारा कोई नाता नहीं, सो वास्तव में ऐसी बात नहीं है। आपके साथ मेरा ठाकुरजी के द्वारा नाता है। आप मेरे भाई हैं। मैं अपने एक भाई को बेहोश पड़ा छोड़ जाता तो मेरी मनुष्यता मुझे छोड़ जाती।'

अजनबी जब स्वस्थ हो गया तब किसान खेत पर जाने को उद्यत हुआ। परन्तु वह भी किसान के पीछे-पीछे चला। 'किसान बड़ा धर्मात्मा है' 'इस किसान के मुकाबिले का कोई धर्मात्मा नहीं है', इस प्रकार चिल्लाता-चिल्लाता वह चलता चला। किसान ने कहा—'भाई मेरे, तुम क्यों वृथा चिल्लाते हो! मैंने कोई बड़ा काम नहीं किया है। मैं एक मामूली गरीब किसान हूं। 'इतने पर भी अजनबी न माना और चिल्लाता ही चला गया।'

लोगों ने चिल्लाहट सुनी तो दंग रह गये। किसी ने पूछा—'इसने धर्म का कौनसा काम किया है?' उसने उत्तर दिया—'मनुष्य के प्राण बचाये हैं।'

आखिर दोनों उधर से निकले, जहां पुजारी थाल देने के लिये खड़ा था। उस मनुष्य ने कहा—'पुजारीजी, थाल इन्हें दो। थाल के सच्चे अधिकारी यही हैं।'

पुजारी ऐंठ कर बोला—ऐसे ऐरे-गैरे के लिए यह थाल

नहीं है। यह एक मामूली किसान है। खेत जोत कर पेट भरता है। यह सब से बड़ा धर्मात्मा कैसे हो सकता है?

यह बोला—"तो जाँच कर लेने में हानि ही क्या है? तुम्हारे पास धर्मात्माओं की पहचान तो है ही। भले ही यह किसान तिलक-छापा नहीं लगाता, मन्दिर में आकर अपनी भक्ति की घोषणा नहीं करता, फिर भी है यह बड़ा धर्मात्मा। एक बार थाल हाथ में देकर देख तो लो!"

पुजारी ने किसान को थाल लेने के लिये बुलाया। किसान संकोच में पड़ गया। वह थाल लेने से इन्कार करने लगा। जो इन्कार करता है उसे सभी देना चाहते हैं। सभी लोग आग्रह करने लगे। पुजारी ने उसके हाथ पर थाल रख दिया। किसान के हाथ में आते ही थाल एकदम देदीप्यमान हो उठा। मानो दया का तेज थाल में से फूट पड़ा हो।

लोग दंग रह गये। एक स्वर से सभी उसकी सराहना करने लगे। लोगों को जिज्ञासा हुई—'इसने क्या धर्माचरण किया है?' किसान के साथी ने किसान की मानव-दया का वर्णन कर के सब का समाधान किया।

२२ : अन्याय का धन

एक वकील साहब की पत्नी बड़ी सुशीला और धर्मभीरु थी। एक दिन वकील भोजन करने बैठे और उसी समय एक सेठ आया। सेठ को वकील ने एक मुकदमे में जिताया था। उसने आते ही वकील साहब के सामने पचास हजार के नोट रख दिये। वकील समझ

गये मगर अपनी पत्नी के आगे रौब जमाने के लिये पूछने लगे—'यह नोट किस बात के हैं ?'

सेठ ने कहा—'वकील साहब, मुकदमे मे मेरा पक्ष सरासर झूठा था। जिसे मुझे देना था, उससे आपने मुझे उल्टा दिलवाया है। मुझे आपके बुद्धिकौशल के प्रताप से लाखो की सम्पत्ति मिली है। उसी के उपलक्ष्य मे यह तुच्छ भेंट आपकी सेवा मे उपस्थित की गई है।'

वकील के हर्ष का पार न रहा। अपनी बुद्धि के अभिमान मे फूला न समाया। सोचा—कैसी प्रखर बुद्धि है मेरी ! मैं सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा प्रमाणित कर सकता हू।

वकील ने अभिमान भरी आंखो से अपनी पत्नी की ओर देखा तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उसकी आंखो से अश्रु धारा का प्रवाह फूट रहा था। वकील साहब ने पूछा—'हसने के समय यह रोना कैसा ? तुम रो क्यो रही हो ?'

पत्नी ने कहा—इसमे खुशी की क्या बात है ? क्या आप इसी प्रकार के अन्याय की रोटी हमे खिलाते हैं ? क्या इसी कमाई से यह जेवर बनाये गये हैं ? क्या मेरी प्राणप्यारी सन्तान के उदर मे यही अन्याय का अन्न गया है ? मुझे इस सुख-विलास की आवश्यकता नहीं है। मुझे आभूषणो की परवाह नही है। मैं भूखी रहना पसन्द करूंगी, नंगी रहना कबूल करूगी, मगर अन्याय के धन से दूर रहूंगी। संसार मे कोई अजर-अमर होकर नहीं आया। एक दिन सब छोड कर जाना होगा। फिर पैसे के लिए ऐसे पाप क्यों ? आप अपनी प्रखर बुद्धि का झूठे को सच्चा बनाने में उपयोग करते हैं, यह कल्पना ही मेरे लिए असह्य है। फिर यह तो सच्चाई बन गई है। इसे मैं किस प्रकार सहन करूं ?

वकील साहब ने अपनी पत्नी की बातें सुनी तो उनकी अकल ठिकाने आ गई।

बहिनों को चाहिए कि वे इस वकील-पत्नी का अनुकरण करें। पति अन्याय से धन उपार्जन करता हो तो नम्रता से, मगर दृढता पूर्वक प्रार्थना करो—हमे अधिक आभूषणो की आवश्यकता नही है। हम विषय-विलास पसन्द नही करतीं। आप घर में अन्याय की दमडी भी न लाइये। बहिनो, अगर तुम इस नीति को अपनाओगी तो इस लोक और परलोक मे तुम्हारा और साथ ही तुम्हारे पति का भी कल्याण होगा। इससे तुम पति के प्रति भी अपना कर्त्तव्य पालन करोगी।

२३ : सरलता

लोग बालक को बुद्धिहीन और मूर्ख समझ कर उसकी उपेक्षा करते हैं। परन्तु बालक जैसे निरहंकार होते हैं, वैसे अगर आप बन जाएं तो आपका बेडा पार हो जाए। बुद्धिमत्ता का ढोंग छोडकर अगर आप अपने अन्त.करण में बालसुलभ सरलता उत्पन्न कर लें तो कल्याण आपके सामने उपस्थित हो जाय। बालक का हृदय कितना सरल होता है, यह बात एक दृष्टान्त से समझिए।

एक मुहल्ले में आमने-सामने दो घर थे। उन दोनों घरों में देवकी और यशोदा नाम की दो लडकियां थीं। देवकी और यशोदा नही जानती थी कि हम देवकी और यशोदा हैं, पर उनके माता-पिता ने उन्हें यही नाम दे दिये थे। फागुन का महीना था। दोनों बालिकाओं के मां-बापों ने उन्हें अच्छे-अच्छे कपडे पहनाये थे। बच्चो को स्वभावत घर प्यारा नही लगता। वे

बाहर घूमना-फिरना और खेलना बहुत पसन्द करते हैं। शायद अपने शरीर का निर्माण करने के लिए उन्हें प्रकृति से यह अव्यक्त प्रेरणा मिलती है। अगर बालकों की तरह आप भी घर से उतना प्रेम न रक्खें तो आपको पता चलेगा कि इसका परिणाम कितना अच्छा होता है।

देवकी और यशोदा कपड़े पहनकर अपने-अपने घर से बाहर निकलीं। वर्षा होकर बन्द हो चुकी थी किन्तु पानी गलियों में अब भी बह रहा था। देवकी और यशोदा उसी बहते पानी में खेलने लगीं। दोनों ने पानी में अपने-अपने पैर छपछपाये। पैरों के छपछपाने से कीचड़ भरा पानी उछला और कपड़ों पर धब्बे पड़ गये। दोनों के कपड़ों पर धब्बे पड़ गए हैं, यह देख कर दोनों एक दूसरी को आपस में उलाहना देने लगीं। उलाहना देती हुई वह अपने-अपने घर लौटीं। कीचड़ से भरे कपड़े देखकर और बालिकाओं का आपस में उलाहना देना सुनकर दोनों घर वाले झगड़ने लगे।

यद्यपि झगड़े का कोई ठोस आधार नहीं था, और अगर दोष समझा जाय तो दोनों बालिकाओं का दोष बराबर ही था; परन्तु दोनों के माँ-बापों के दिल में पहले की कोई ऐसी बात थी कि उन्हें लड़ने का बहाना मिल गया। दोनों ओर से वाग्युद्ध हो रहा था कि इतने में एक वृद्धा वहाँ आ पहुँची। उसने दोनों घर वालों से हाथ जोड़कर कहा—आज होली का त्यौहार है। आनन्द मनाने का दिन है। प्रसन्न होने का अवसर है। फिर आप लोग आपस में एक-दूसरे की होली क्यों कर रहे हैं? आप दोनों पड़ोसी हैं। एक के बिना दूसरे का काम नहीं चल सकता। दोनों लड़कियाँ खेल रही थीं। एक के कूदने से दूसरी के कपड़े गन्दे हो गये तो कौन बड़ी बात हो गई? इन नादान बच्चों के पीछे आप बड़े—बड़े क्यों झगड़ते हैं? इससे आपकी ही हँसी होती है।

वृद्धा के बहुत समझाने पर भी वे न माने। लड़ाई का जोश इतना तीव्र था कि बुढ़िया की बात सुनने की किसी ने परवाह न की। खूब तपे हुए तवे पर पानी के कुछ बूंद कोई असर नही करते। इसी प्रकार तीव्र क्रोध के उत्पन्न होने पर शान्ति की बात व्यर्थ हो जाती है।

इधर दोनो घर वाले झगड रहे थे, उधर मौका देखकर दोनो लड़कियाँ फिर घर से बाहर निकल पडी। वे वहाँ पहुँची जहाँ पानी बह रहा था। बहते-पानी को रोकने के लिए दोनो ने मिलकर रेत का बाँध बनाया। पानी रुक गया। रुके पानी मे दोनों लडकियो ने घास का तिनका या लकडी का टुकडा डाला। उसे पानी मे तिरते देखकर दोनो उछलने लगी। एक ने कहा—देख, देख, मेरी नाव तैर रही है! दूसरी ने कहा—और मेरी भी तैर रही है। देख ले न!

संयोगवश वह वृद्धा उधर से निकल पडी। उसने देखा—इन लडकियो को लेकर उधर झगडा मच रहा है, सिरफुटौवल की नौबत आ पहुँची है, और इधर ये मस्त होकर खेल रही हैं। उसने झगडने वालो के पास जाकर कहा—अरे झगडना बन्द करके एक तमाशा देख लो! पडौसी हो, चाहोगे तभी झगड़ लोगे, मगर यह तमाशा चाहे तब नहीं देख पाओगे। आओ मेरे साथ चलो।

तमाशे की बात प्यारी लगती ही है। फिर बुढिया के कहने का ढग भी कुछ आकर्षक था। अत झगडने वाले बुढ़िया के पीछे-पीछे हो लिये और वहाँ पहुँचे जहाँ दोनो बालिकाएँ अपनी-अपनी नाव तिरा रही थी। दोनों घर वालों को दिखाते हुए बुढ़िया ने कहा—यह तमाशा देखो, पानी मे लकडियो के टुकडे तैर रहे हैं। दर असल यह नाव है!

एक झगडने वाले ने कहा—यह कौनसा तमाशा हुआ! तैराई होगी किसी ने!

वृद्धा-और किसी ने नहीं, यशोदा और देवकी ने तैराई हैं। इतना कहकर उसने लडकियो से पूछा—इनमे कौन किस की नाव है बेटियो ! जरा बताओ तो सही।

दोनों ने साथ-साथ उत्तर दिया-यह मेरी है, यह मेरी है,।

तब मुस्कराती हुई वृद्धा ने कहा—देखो, दोनों लडकियाँ इकट्ठी हो गई हैं और जिनको लेकर तुम लड रहे हो वह लडकियाँ भी मिल गई हैं। अब तुम कब मिलोगे ? यह तो नादान बालक होकर भी मिल गई और तुम समझदार होकर भी झगडते रहोगे। वृद्धा की समयोचित शिक्षा से दोनों घर वाले शर्मिन्दा हो गये। उनकी लडाई समाप्त हो गई और मेल—मिलाप मे रहने लगे।

मित्रो ! बालक लड-झगड़ कर एक हो जाते हैं, इसी प्रकार अगर आप लोग भी आपस मे एकतापूर्वक रहे तो कैसा आनन्द हो ? एकता आपको इतनी शक्ति प्रदान करेगी कि आप अपने को अपूर्व शक्तिशाली समझने लगेंगे। मगर बडे लोगो की लडाई भी बडी होती है। वे लडकर आपस मे मिलते तक नही हैं। यहाँ तक कि धर्मस्थान में अगर पास—पास बैठना पड जाय तो भी एक दूसरे को देखकर गाल फुलाने लगते हैं। यह कहाँ तक उचित है ? ऐसे करने वाले बडे अच्छे या ऐसा न करने वाले नादान बालक अच्छे ? बालक वास्तव मे सरलहृदय होते हैं।

२९ : ईमानदार मुनीम

सच्चा श्रावक कभी नहीं सोचेगा कि मैं गुलामी का कार्य

करता हूँ। वह तो यही समझेगा कि मैं जो कुछ करता हूं, अपने धर्म की साक्षी से करता हूं। कही ऐसा न हो कि मेरे किसी कार्य से मेरे व्रत मे दोष लग जाय और मेरे धर्म की प्रतिष्ठा मे कमी हो जाय। मैं नौकर हू, लेकिन सत्य का। शास्त्र की कथाओं मे उल्लेख है कि ऐसा समझने वालो को अनेक प्रलोभन दिये गये, यहाँ तक कि प्राण जाने का भी अवसर आ पहुचा- फिर भी वे अपने सत्य धर्म से विचलित नहीं हुए।

मतलब यह है कि चाहे कोई मुनीमी करे या मजदूरी करे, अगर वह सच्चा श्रावक है तो यही विचारेगा कि मैं पैसे के लिए ही नौकरी नही करता हूँ। मुझे अपने धर्म का भी पालन करना है। जो ऐसा विचार करके प्रामाणिकता के साथ व्यवहार करेगा वही सच्चा श्रावक होगा। जो पैसे का ही गुलाम है वह धर्म का पालन नही कर सकता। सच्चा श्रावक अपने मालिक के बताये हुए भी अन्यायपूर्ण काम को करना स्वीकार नही करेगा।

पूज्य श्रीलालजी महाराज एक बात कहा करते थे। वह इस प्रकार है—

किसी सेठ के यहाँ एक प्रामाणिक मुनीम था। अपने सेठ का काम वह धर्मनिष्ठा के साथ किया करता था। एक बार सेठ ने मुनीम की सलाह नहीं मानी और इस कारण उसका काम कच्चा रह गया। सेठ ने कुछ दिनों तक तो अपना आडम्बर कायम रक्खा मगर पूंजी के बिना कोरा आडम्बर कब तक चल सकता था! जब न चल सका तो एक दिन सेठ ने बड़े दुःख के साथ मुनीम से दूसरी जगह आजीविका खोज लेने को कह दिया। उसने लाचारी दिखलाते हुए अपनी स्थिति का भी हाल बतला दिया, यद्यपि मुनीम से कोई बात छिपी हुई नहीं थी।

मुनीम ने कहा—अपना ससार व्यवहार चलाने के लिए मुझे कोई धन्धा तो करना ही पड़ेगा, लेकिन आप यह न समझें कि

मैं पराया हूँ। जब कभी मेरे योग्य काम आ पड़े, आप निस्संकोच होकर मुझे आज्ञा दें। अधिक तो क्या, मैं प्राण देने के लिए भी तैयार हूँ।

इस प्रकार बड़े दुःख के साथ सेठ ने मुनीम को विदा किया और मुनीम भी बड़े दुख के साथ विदा हुआ।

मुनीमजी घर बैठे रहे। नगर मे बात फैल गई कि अमुक मुनीमजी आजकल खाली हैं। उसी नगर में एक वृद्ध सेठ रहता था। वह खूब धनवान् था। उसके बच्चे छोटे थे। वह चाहता था कि मैं व्यापार और बालको का भार किसी विश्वस्त आदमी को सौंप कर कुछ धर्म-कर्म करने मे लगूँ। मगर उसे अपने नौकरों मे ऐसा कोई नही दिखता था जो उसका काम--काज संभाल कर ईमानदारी से काम कर सके।

आज के लोग तो अपनी आयु ससार कार्य मे ही पूरी कर देते हैं, परन्तु पहले के लोग चौथी अवस्था मे या तो साधु हो जाते थे या साधु न होने की अवस्था मे धर्मध्यान मे लग जाते थे। इससे आगे वालो के सामने एक अच्छा आदर्श खडा हो जाता था और वह अपना कल्याण कर लेता था।

सेठजी को उस मुनीमजी के खाली होने की खबर लगी। वह मुनीम को जानते थे। अपना काम-काज सभालने के लिए उन्हें सेठजी ने उपयुक्त समझा और एक दिन बुलाकर कहा—मैं आपकी चतुराई से परिचित हू। आप हमारी दुकान का काम-काज सभाल लें। मुनीम आजीविका की तलाश मे था ही। उसने सेठजी की दुकान पर रहना स्वीकार कर लिया। सेठजी ने उसे सब नौकरो का अध्यक्ष बना कर सब काम उसके सुपुर्द कर दिया।

थोड़े दिन बाद सेठ ने मुनीम से कहा—अमुक बही के अमुक पाने का खाता निकालिए। मुनीम ने खाता निकाला। खाता उसी सेठ का था, जिसके यहाँ मुनीम पहले नौकर था और जिसकी

आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी। खाते में कुछ रुपया बकाया था। सेठ ने कहा—यह रकम वसूल कीजिए।

मुनीम बही लेकर उस सेठ के यहाँ पहुँचे। सेठ ने प्रेम के साथ आदर-सत्कार करके बिठलाया। मुनीम संकोच के कारण मुँह से तकाजा न कर सका। उसने खाता खोल कर सेठ के सामने रख दिया। सेठ समझ गया। उसने आँसू भर कर कहा—मुनीमजी, रुपया तो देना है, लेकिन इस घर की दशा आप से छिपी नहीं है। मैं क्या कहूँ ?

मुनीम ने कहा—आप दुःखी न हों। मैं स्थिति से परिचित हूँ। अगर मैंने अपने नये सेठजी को वहीं उत्तर दे दिया होता तो ठीक नहीं रहता। इसी विचार से मैं यहाँ तक आया हूँ।

बहीखाता लेकर मुनीमजी लौट आये। सेठ के पूछने पर उन्होंने कहा—खाते में रकम ज्यादा बकाया है। अभी चुकता कर देने की उनकी शक्ति नहीं है। कभी उनके दिन पलटेंगे तो चुका देंगे। वे हजम करने वाले आसामी नहीं हैं।

सेठ बोला—पहले के सेठ होने के कारण आप उनकी खुशामद करते हैं। हमारे नौकर होकर उनका रुख रखना उचित नहीं है। इतना बड़ा घर था। बिगड़ जाने पर भी गहने-बर्तन आदि तो होंगे ही। अगर सीधी तरह नहीं देना चाहते तो दावा करके वसूल करो।

मुनीम—मैं जानता हूँ कि उनकी आमदनी ऐसी नहीं है। किसी प्रकार अपना निर्वाह कर रहे हैं और इज्जत लेकर बैठे हैं। उनकी आबरू बिगाड़ना मेरा काम नहीं है। मैं तो आपकी और उनकी इज्जत बराबर समझता हूँ।

कुछ कठोर पड़ कर सेठ ने कहा—जिसे रोटी की गरज होगी उसे किसी की आबरू भी बिगाड़नी पड़ेगी।

मुनीम ने यह बात सुनी तो चाबियों का गुच्छा सेठजी के

सामने रख दिया और कहा—सेठ साहब, मुझे विदाई दीजिए।

सेठ—अच्छी तरह सोच-विचार लीजिए। मैंने आपको रोजगार से लगाया है। सब कर्मचारियों का प्रधान बनाया है और आप मेरे साथ ऐसा सलूक करते हैं?

मुनीम—जो अपनी इज्जत के महत्व को नहीं समझता वही दूसरे की इज्जत बिगाड़ता है। एक दिन वे भी मेरे मालिक थे। आज उनकी स्थिति ऐसी नहीं है, तो क्या मैं उनकी इज्जत बिगाड़ने लगूं? मैंने उनका नमक खाया है और वह मेरे सारे शरीर में व्यापा हुआ है। मैं उनकी प्रतिष्ठा नष्ट नहीं करूंगा। फिर भी अगर आप रकम वसूल करना ही चाहेंगे तो मैं अपनी जायदाद से चुकाऊंगा। मैं सिर्फ पैसे का गुलाम नहीं हूं। मैं धर्म से काम करने वाला हूं।

मुनीम की बात सुनकर सेठ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने धन्यवाद देते हुए कहा—मुनीमजी, मैं आपकी कसौटी करना चाहता था। मेरी आज तक की चिन्ता दूर हो गई। यह चावियाँ सँभालिये। अब आप जानें और दुकान जाने। अब यह घर और बाल-बच्चे मेरे नहीं, आपके हैं। मेरे सिर का भार आपके ऊपर है।

मित्रो! यदि मुनीम पैसे के प्रलोभन में पड़कर, आजीविका रखने की चिन्ता से धर्म को भूल जाता तो क्या परिणाम निकलता?

२५ : फूलां बाई

आत्मकल्याण का पहला उपाय शास्त्र की बात यथार्थ रूप

मे समझना है शास्त्र का आशय कुछ और हो आप समझ लें कुछ और ही, तो बडा अनर्थ होता है । कुछ का कुछ अर्थ समझ लेने का क्या परिणाम होता है, उस बात को सरलता और स्पष्टता के साथ समझाने के उद्देश्य से एक दृष्टांत कहता हूँ—

एक नामी सेठ था । खूब धनाढ्य था । उसके पाँच लड़के थे, लडकी एक भी नहीं थी । एक दिन सेठ ने विचार किया—'हम दूसरे के यहाँ से लड़की लाते तो हैं पर दूसरों को देते नही हैं । यह मेरे ऊपर ऋण है ।' इस प्रकार विचार करने के बाद सेठ के दिल मे कन्या का पिता बनने की भावना उत्पन्न हुई ।

पुण्ययोग से सेठ की भावना पूर्ण हुई । उसके यहाँ एक लडकी जन्मी । सेठ का घर वैष्णव सम्प्रदाय का था घर के सभी लोग विष्णु की भक्ति में तल्लीन रहते थे । वे अपने धन वैभव आदि को ठाकुरजी का प्रताप समझते थे । इसके अनुसार उन्होंने उस लडकी को भी ठाकुरजी का ही प्रताप समझा ।

पाँच लडको के बाद गहरी भावना होने पर लडकी का जन्म हुआ था । इसलिए बडे ही लाड प्यार के साथ लडकी का पालन–पोषण किया गया गया । लडकी का नाम फूला बाई रक्खा गया । इस बात का बहुत ध्यान रक्खा जाता था कि लड़की को किसी भी प्रकार का कष्ट न होने पाये । लड़की जब कुछ सयानी हो गई तब भी सेठजी उसे उसी प्रकार रखते थे । लडकी कभी कुछ अपराध या भूल करती तो भी सेठजी एक शब्द न कहते और न दूसरो को कहने देते । इसी प्रकार व्यवहार चालू रहा और लडकी बडी हो चली ।

जैसा होने वाला होता है वैसे ही निमित्त भी मिल जाते हैं । तदनुसार सेठ के यहाँ एक दिन कोई पंडित आये और इन्होंने गीता का निम्नलिखित श्लोक पढा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोचयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

फूला बाई इसका अर्थ समझी—सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आजाओ। तुमने कितने ही पाप क्यों न किये हों, मैं उन सब से मुक्त कर दूंगा। अब उसने निश्चय कर लिया—नारायण पापों से मुक्त कर ही देते हैं, फिर किसी भी पाप से डरने की आवश्यकता ही क्या है? पाप से डरने का अर्थ नारायण की शक्ति पर अविश्वास करना होगा। बस, केवल ईश्वर से डरना चाहिए, पापों से नहीं।

ठाकुरजी से डरने का अर्थ उसने यह समझा कि उन्हें विधि-पूर्वक नैवेद्य आदि चढाकर पूजना चाहिए—किसी प्रकार की अविधि नहीं होना चाहिए। इससे ठाकुरजी प्रसन्न होंगे।

फूलां बाई के हृदय मे यह संस्कार ऐसी दृढता के साथ जम गया कि समय-समय पर वह कार्यों में भी व्यक्त होने लगा। हृदय का प्रबल सस्कार कार्य मे उतर ही आता है। फूला बाई का व्यवहार अपने नौकरों-चाकरों और पडोसियो के प्रति ऐसा ही बन गया। वह सबसे लडती-झगडती और निरकुश व्यवहार करती। इस प्रकार फूलां बाई शूलां बाई बन गई।

पहले कहा जा चुका है कि उस घर के सभी लोग सभी बातों के लिए ठाकुरजी का ही प्रताप समझते थे। घर मे जो भावना फैली होती है उसी को बालक ग्रहण करते हैं और वैसी ही भावना बन जाती है। फूलांबाई की भावना भी ऐसी ही हो चली। वह भी हर चीज को ठाकुरजी का प्रताप समझने लगी। सेठजी के यहां यह भजन गाया जाता था—

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन बेटा।
एक नारायण नहिं रूठे तो, सबके काटलू चोटी पटा॥

फूलांबाई ने इस भजन का यह आशय समझ लिया कि सब लोग रूठते हैं तो परवाह नहीं। उन्हें रूठ जाने दो! अगर

ठाकुरजी अकेले न रूठे तो सब के सिर के बाल उतरवा सकती हूँ ।

फूला बाई ने सोचा—दुनियाँ मे बहुत लोग है । किन-किन की अलग-अलग खुशामद करती फिरूँगी । अतएव अच्छा यही है कि अकेले नारायण को राजी कर लिया जाय । फिर चाहे जिससे चाहे जैसा व्यवहार किया जा सकता है ।

फूला बाई के ऐसे व्यवहार को घर के लोग हँसी मे टालते रहे, मगर फूला बाई समझने लगी कि यह सब नारायण भगवान् का ही प्रताप है । नारायण मददगार हो तो कोई क्या कर सकता है ? इस प्रकार फूला बाई सब के साथ शूल का सा व्यवहार करने लगी ।

फूला बाई की सगाई एक करोडपति सेठ के घर की गई । यह देख कर तो फूलाबाई के अभिमान का पार ही न रहा । वह सोचने लगी—मुझ पर ठाकुरजी की बडी कृपा है । यही कारण है कि इस घर में मैंने सभी पर अकुश रखा है, फिर भी मैं करोडपति के घर व्याही जा रही हूँ ! जैसी धाक मैंने यहाँ जमा रक्खी है, वैसी ही सुसराल में जमा सकूँ तो ठाकुरजी की पूरी कृपा समझूँ ।

विवाह हो गया । फूलाबाई सुसराल पहुँची । सुसराल पहुचकर ससुर-सासू के पैर छूना आदि विनीत व्यवहार तो दूर रहा, उसने अपनी दासी को सासू के पास भेजकर कहला दिया—'अभी से यह बात साफ कर देना ठीक जचता है कि मैं इस इस घर में गुलाम या दासी बनकर नहीं आई हूं । मैं मालकिन बनकर आई हूँ और मालकिन बनकर ही रहूंगी । अपने साथ में धन लेकर आई हूँ, कोरी नही आई हूँ । सब काम-काज मेरे कहने के अनुसार होता रहा तो ठीक, अन्यथा इस घर में तीन दिन भी मेरा निर्वाह न होगा ।'

फूलांबाई सोचती थी – ठाकुरजी प्रसन्न हैं तो फिर डर किसका ? आरम्भ में प्रभाव जम गया तो जम गया, नहीं तो जमना कठिन है। इसलिए पहले ही आतङ्क जमा लेना चाहिए। डर-भय की तो परवाह ही नहीं है!

नवागता पुत्रवधू का यह अनोखा संदेश सुनकर सासू को अचरज भी हुआ और दुःख भी हुआ। वह सोचने लगी—यह कैसी विचित्र बहू आई है! इसे इतना अहङ्कार क्यों है? है तो यह बड़े घर की बेटी, पर इतने घमण्ड का क्या कारण हो सकता है? घमण्ड किसी को हो सकता है लेकिन इस प्रकार ब्याह कर आने ही तो कोई बहू ऐसा नहीं कहला सकती। देखने में सुन्दर है बड़े घर की है, फिर भी इसकी बोली और प्रकृति ऐसी क्यों है? जान पड़ता है इसके शरीर में कुछ न कुछ अवश्य है। फिर भी इसे अभी तो प्रसन्न ही रखना चाहिए। कुछ दिनों में ठिकाने आ जाएगी। ऐसा सोचकर सासू ने कहला भेजा—'अच्छा जैसा वह कहेगी वैसा ही होगा।'

फूलांबाई के अहङ्कार को और ईंधन मिल गया। वह सोचने लगी—धन्य है ठाकुरजी, उन्होंने यहाँ भी मेरा बेड़ा पार लगा दिया। बड़ी प्रसन्नता और उत्साह के साथ उसने ठाकुरजी की मूर्ति पधराई और कहने लगी—'ठाकुरजी का प्रभाव मैंने प्रत्यक्ष देखा!'

थोड़े ही दिनों में फूलांबाई के व्यवहार से घर के सब लोग कांप उठे। उसने सब जगह अपना एकछत्र राज्य जमाना शुरू किया। वह न किसी से प्रेम करती, न किसी का लिहाज रखती। सासू वगैरह समझ गईं कि बहू का स्वभाव दुष्ट है। मगर घर की बात बाहर जाने से इज्जत चली जाएगी। इस विचार से घर के लोग कड़वे घूंट के समान फूलांबाई के व्यवहार को सहन करते रहे और उसे क्षमा करते रहे। उनकी क्षमा को फूलांबाई ने ठाकुरजी

या अपने ऊपर विशेष अनुग्रह समझा। उसका व्यवहार दिन प्रतिदिन बुरा होता चला गया।

फूला की सुसराल के किसी सम्बन्धी का विवाह था। उस विवाह मे सपरिवार सम्मिलित होना आवश्यक था। बहू को भी साथ ले जाना जरूरी था। मगर चिन्ता यह थी कि अगर पराये घर जाकर भी इसने ऐसा व्यवहार रखा तो इतनी बडी इज्जत कौडी की हो जायगी। अन्त मे बहू को घर पर ही छोड जाने का निश्चय किया। मगर फूलाबाई को छोड जाना भी सरल नही था। इसलिए उसकी सास ने एक उपाय सोच लिया।

मूर्ख लोग अपनी मिथ्या प्रशसा से प्रसन्न होते हैं। उन्हें प्रसन्न करके फिर जो चाहे वही काम करा सकते हो। वे खुशी-खुशी कर देंगे। सासू ने फूलाबाई की खूब प्रशसा की। अपनी प्रशसा सुनकर वह फूल गई। उसके बाद सासू ने कहा—इस विवाह मे जाना तो सभी को चाहिए। तुम बहुत होशियार हो। अगर घर रहकर इसे सभ ले रहो तो सब ठीक हो जाएगा।

फूलाबाई फूलकर कुप्पा हो चुकी थी। उसने कहा—तुम्हारे बिना कौन सा काम अटका है? तुम सब पधारो। घर सभालने के लिए मैं अकेली ही काफी हू।

घर के लोग यही चाहते थे। फूलाबाई को घर छोडकर सब विवाह में सम्मिलित होने के लिए रवाना हो गये।

उधर सब लोग विवाह के लिए गये और सयोगवश इधर सेठ की समानता रखने वाले एक सगे मेहमान सेठजी के यहाँ आ गये। मेहमान भी ईश्वर में निष्ठा रखने वाला भक्त था। फूलाबाई को मेहमान के आने का समाचार मिला। उसने भोजन की तैयारी करके उसे जीमने के लिए बुलाया। मेहमान जीमने बैठा और भोजन का थाल उसके सामने आया। उसने जैसे ही भोजन करना प्रारम्भ किया कि उसी समय फूला ने कडक कर कहा—

कभी पहले भी ऐसे टुकड़े मिले हैं या नहीं ? एकदम भुखमरों की तरह भोजन पर टूट पड़े ! कुछ विचार भी नहीं किया और पेट मे भरने लगे । कै दिन के भूखे आये हो ?

ऐसे समय मे क्रोध आना स्वाभाविक था । भोजन करने के अवसर पर यह शब्द कहकर फूलाबाई ने भोजन को जहर बना दिया था । पर मेहमान ने सोचा—मैं भक्त हूँ । इसने भोजन को जहर बना दिया है, उसको मैं अमृत न बना सका तो फिर मैं भक्त ही कैसा ? इसमे और मुझमे फिर अन्तर ही क्या रहेगा ? मैं तो आज आया हूँ और आज ही चला भी जाऊगा, मगर इसके घर के लोग कितने दयाशील और सहिष्णु होगे जो रोज-रोज इसके ऐसे बर्ताव को सहन करते होंगे । मेरा इसके साथ परिचय नहीं है, फिर भी इसने पत्थर-सा मारा है । यह घर वालो के साथ कैसा सलूक करती होगी ? सचमुच वे लोग धन्य हैं जो इसके इस दुष्टतापूर्ण व्यवहार को शान्ति के साथ सहन करते हैं ! अगर मैं इसके स्वभाव को और भड़का दू तो इसमे मेरी विशेषता क्या है ? मैं इसका मेहमान बना हू । किसी उपाय से अगर इसका सुधार कर सकूँ तो मेरा आना सार्थक हो सकता है ।

मन ही मन इस प्रकार विचार कर उसने फूलांबाई से कहा—आपने क्या ही अच्छी बात कही है ! यह भोजन की तैयारी और उस पर आपका यह बोलना मैंने आज ही देखा है । आप ऐसी हैं तभी तो यह तैयारी कर सकी हैं ।

फूलांबाई मन ही मन कहती है—ठाकुरजी का प्रताप धन्य है कि उन्होंने इसे भी मेरे सामने गाय बना दिया है !

प्रकट मे वह बोली—अच्छी बात है, अब आप जीम लीजिए । दो-चार दिन ठहरोगे न ? ऐसा भोजन दूसरी जगह मिलना कठिन है ।

मेहमान—आप ठीक कहती हैं । ऐसा भोजन दूसरी जगह

कदापि नहीं मिल सकता। मैं अवश्य दो-चार दिन रहूंगा। आपकी कृपा है तो क्यों नहीं रहूंगा ?

उसने सोचा—इस भोजन को अमृत बना लेना ही काफी नहीं है। इस बाई को भी मैं अमृत बना लूं तो मेरा कर्त्तव्य पूरा होगा।

वास्तव में सुधार का काम टेढ़ा होता है। तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है। सुधारक को बड़ी विकट परिस्थितियों का सामना करना पडता है। इन कठिनाइयों मे भी जो दृढ रहता है और अपने उद्देश्य की प्रशस्तता का ख्याल रख कर विकट से विकट सकटों को खुशी के साथ सहन कर लेता है, वह अपने उद्देश्य में सफल होता है।

मेहमान जीम-जाम कर चला गया। पूछताछ करके उसने पता चलाया कि फूलांबाई का स्वभाव ऐसा ही है। यह केवल ठाकुरजी की भक्ति करती है और सबकी कम्बख्ती करती है। मेहमान ने सोचा—चलो, यह ठीक है कि वह ठाकुरजी की भक्ति करती है। नास्तिक को समझाना कठिन है, जिसे थोड़ी-बहुत भी श्रद्धा है, उसे समझाना इतना कठिन नहीं।

मेहमान ने एक-दो दिन रहकर फूलांबाई के वाग्बाणों को खूब सहन किया और उसकी प्रकृति का भलीभांति अध्ययन कर लिया। उसने समझ लिया कि यह ठाकुरजी के सामने सबको तुच्छ समझती है और इसने धर्म का स्वरूप उलटा समझ लिया है। उधर फूलांबाई सोचने लगी—कैसा बेशर्म है यह आदमी, जो हँसता हुआ मेरी सभी बातो को सहन करता जाता है। जो लोग मेरे आश्रित हैं, वे भी मेरे व्यवहार को देखकर अगर मुंह से कुछ नहीं कहते तो भी आँखें लाल सी कर ही लेते हैं। मगर इसके नेत्रों में जरा भी विकार नहीं दिखाई देता। चेहरा ज्यों का त्यों प्रसन्न बना रहता है। इसे मेरी परवाह नहीं है, फिर भी इतना शांत रहता है। यह

मनुष्य कुछ निराला है।

दो-तीन दिन बाद, आधी रात के समय, मेहमान फूलांबाई के कमरे के पास गया और उसे आवाज दी। फूलांबाई ने पूछा-कौन है ? उसने अपना नाम बता दिया। आधी रात के समय आने के लिए फूलांबाई उसे धिक्कारने लगी। तब उसने कहा—मैं किवाड खोलने के लिये नहीं कहता। आपके हिताहित से सम्बन्ध रखने वाली बात सुनाने आया हूं। न सुनना चाहो तो मैं जाता हूँ। सुनना हो तो किंवाड की आड में से सुन लो।

हिताहित की बात सुनने के लिए फूलांबाई किवाड के पास खड़ी हो गई। उसने कहा—क्या कहना है, कह डालो।

मेहमान—कहूं या न कहूँ, इसी दुविधा मे पड़ा हूँ। कुछ निर्णय नहीं कर पाया हूँ।

फूलाबाई—जो कहना चाहते हो कह डालो। विचारने की बात ही क्या है ? डरो मत।

मेहमान—आपका भी आग्रह है तो कह देता हूं। अभी मैं सो रहा था। स्वप्न में ठाकुरजी ने दर्शन दिये थे।

फूला—ठाकुरजी ! तुम्हारे भाग्य बड़े हैं जो ठाकुरजी ने दर्शन दिये ! उन्होंने तुमसे क्या कहा है ?

मेहमान—उन्होने कहा कि भगत ! चल। अब मैं इस घर में नहीं रहूगा, तेरे साथ चलूंगा। मैंने ठाकुरजी से कहा— मैंने इस घर का नमक खाया है। आप मेरे साथ चलेंगे तो मेरी बद-नामी होगी।

फूला—ठाकुरजी मेरे घर से रूठे क्यों हैं ? किस कारण जाना चाहते हैं ?

मेहमान—मैंने यह भी पूछा था कि आप इस घर से क्यों रूठ गये हैं ? उन्होंने उत्तर दिया कि मैं इस घर से ऊब गया हूं। अब इस घर की सत्ता मुझसे नहीं सही जाती। मैं धीरज रख

रहा था कि अब सुधरे, अब सुधरे, मगर अभी तक कुछ सुधार नही हुआ। उन्होने यह भी कह दिया कि मैं तेरे हृदय मे बसूंगा। तू भक्त है। मैंने ठाकुरजी से पूछा—क्या कपडो की या नैवेद्य की कमी रही ?

फूलाबाई ने चट किवाड़ खोल दिये और कहने लगी—मैं ठाकुरजी के लिए किसी चीज की कमी नही होने देती। फिर वे नाराज क्यो हो गये ?

मेहमान—मैंने भी तो उनसे यही प्रश्न किया था। उन्होने उत्तर दिया—तू भी मूर्ख मालूम होता है। मैं क्या उसके कपड़े-लत्तों के लिए नङ्गा-भूखा बैठा हू ! मैं अपनी सत्ता से ससार का ईश्वर हुआ हूं। वह क्या चीज है जो मुझे कपडे-लत्ते और नैवेद्य देगी ? मुझे उसकी परवाह ही कब है ?

फूला—मैं जानती थी कि ठाकुरजी इन्ही चीजो से प्रसन्न होते हैं। फिर मुझसे क्या अपराध हुआ है, जो ठाकुरजी जाने को सोच रहे हैं ?

मेहमान—ठाकुरजी ने मुझे एक बात कही है और उसका उत्तर तुम से मांगने की भी आज्ञा दी है। उन्होंने पुछवाया है इस बाई के एक सुकुमार लडका हो। कोई मनुष्य उस लडके को मारे या अपमान करे। फिर उन्हीं हाथो से एक थाल में पकवान भर कर वह आदमी फूला बाई को देने आवे तो बाई लेगी या नहीं ?

फूला—जो मेरे बेटे को दुःख देगा, उसके पकवान लेना तो दूर रहा, मैं उसका मुंह भी नहीं देखना चाहूंगी।

मेहमान—तुम्हारी तरफ से यही उत्तर मैंने ठाकुरजी को दिया था। परन्तु ठाकुरजी कहने लगे—उस बाई के तो एक ही बेटा होगा, किन्तु मेरे तो ससार के सब जीव बेटे हैं। अपने मुंह के विष से जो मेरे बेटों को दुःख देती है उनसे त्राहि-त्राहि कहलाती है, उस पापिनी के घर में मैं नही रह सकता। इस प्रकार

ठाकुरजी अब तुम्हारे घर नहीं रहेंगे। वह सारे संसार के पिता हैं और तुम सब से वैर रखती हो। ठाकुरजी बेचारे रहें भी तो कैसे?

फूलां का चेहरा उतर गया। वह कहने लगी-मेरी तकदीर खोटी है जो ठाकुरजी जाते हैं। अब मैं किसके सहारे रहूँगी? मेरी नाव डूबती है, आप किसी तरह इसे किनारे लगाइए। आपकी बड़ी कृपा होगी।

मेहमान—घबराओ मत। मुझे तो पहले से तुम्हारी चिन्ता थी। इसलिए मैंने अपनी शक्ति भर तुम्हारे लिए सब कुछ किया है। मैंने ठाकुरजी से विनय की आप दीनदयाल हैं। बाई के अपराध को क्षमा करके यहीं रहिए। अन्यथा मेरी बहुत बदनामी होगी। तब ठाकुरजी बोले—मैं अब तक के अपराधों को क्षमा कर सकता हूँ, पर इससे लाभ क्या होगा? जो अपराध आगे भी करते रहना है, उसके लिए क्षमा मांगने से क्या लाभ है? जिस अपराध के लिए क्षमा मांगनी है, वही अपराध आगे न किया जाय, तभी क्षमा मांगना सार्थक होता है। अगर बाई भविष्य में सब के प्रति आत्मभाव रक्खें, दूसरे की मार खाकर भी बदले में न मारे, गाली सुनकर भी गाली न दे और शांत बनी रहे, सब के प्रति नम्र हो, सब की प्रिय बने, तो मैं रह सकता हूँ, अन्यथा नहीं। अब आप बतलाइए कि आपकी इच्छा क्या है? आप ठाकुरजी की शर्त पूरी करके उन्हें रखना चाहती हैं या नहीं?

फूलां—बलिहारी है आपको! मैं अब आपकी शरण में हूं आपको तो ठाकुरजी स्वप्न में ही मिले और स्वप्न में ही आपने उनसे बातचीत की, परन्तु मुझे तो आप साक्षात् ठाकुरजी मिले हैं। आपने मेरी आखें खोल दीं। वास्तव में मेरी क्रूरता के कारण सब त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। मैं भक्त नहीं नागिन हूं। मैंने सदा ही अपने मुंह से विष उगला है। आप पर भी मैंने जहर बरसाया पर आपकी आंखों से अमृत ही निकला। आपने मुझे सच्ची शिक्षा

दी है । सब से पहले आप ही मेरा अपराध क्षमा कीजिए । अप-
राध रहने से ठाकुरजी न रहेंगे तो मैं अपराध रहने ही नहीं दूंगी ।
फिर ठाकुरजी कैसे जा सकेंगे ?

मेहमान—आपने मुझसे जो कुछ कहा है, उससे मुझे दुःख
नही हुआ । परन्तु जो अशक्त हैं और धर्म को नही जानते हैं उनसे
क्षमा मांगो । इसी मे आपका कल्याण है । मैं तो आपके क्षमा मांगने
से पहले ही क्षमा कर चुका हूं ।

प्रातःकाल होते ही फूलाबाई ने सब से क्षमा मांगी । पड़ो-
सियों, नौकरों-चाकरों से बड़े प्रेम के साथ वह मिली और अपने
अपराधो के लिए पश्चाताप करने लगी । उसने कहा—आप सब
लोग अब तक मुझसे दुखी हुए हैं । आपने मेरे कठोर व्यवहार को
शान्ति के साथ सहन किया है । एक बार और क्षमा कर दीजिए ।

अगर फूलाबाई का मेहमान उसकी बातें सुनकर क्रोधित
हो जाता तो फूलाबाई का सुधार हो सकता था ? नहीं । वास्तव
मे क्षमा बडा गुण है । क्षमा के द्वारा सब का सुधार किया जा
सकता है ।

विवाहकार्य से निवृत्त होकर फूला के घर के लोग जब
लौटे तो फूला आंखों से जल बरसाती हुई सब के पैरों में पड़ी
और अपने अनेक अपराधों के लिए क्षमा मांगने लगी । वह कहने
लगी—आप मुझे क्षमा कर देंगे तभी ठाकुरजी रहेंगे, नहीं तो
चले जाएंगे ।

सब लोग फूलाबाई के इस आकस्मिक परिवर्तन को देख
कर चकित रह गए । किसी ने कहा—अब तुमने अपना नाम
सार्थक किया ! पर यह तो कहो कि इस परिवर्तन का कारण
क्या है ?

फूला—अपने घर एक भक्त आये हैं । यह परिवर्त्तन उन्हीं
के प्रताप से हुआ है ।

सारा वृत्तान्त जानकर सब परिवार के लोगों ने उन मेहमान की प्रशंसा की। उनका बडा उपकार माना और देवता की तरह सत्कार किया। सेठ ने कहा—सच्चे भक्त से ही ऐसा काम हो सकता है! आपने हमारा घर पावन कर दिया। जिस घर में सदा आग लगी रहती थी उसमें आपने अमृत का स्रोत प्रवाहित कर दिया।

फूला ने भक्त मेहमान से कहा—भगतजी! अच्छा, इस पद का अर्थ बतलाइए:—

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन बेटा।
एक नारायण नहिं रूठे तो सब के काटलू चोटी पटा॥

भगत ने कहा—पहले जो अर्थ समझा है, वह बतलाओ। फिर मैं कहूंगा।

फूलां—मैंने यह अर्थ समझा था कि एक ईश्वर को खुश रखना और सब के चोटी-पट्टे काट लेना।

भगत—यही तो भूल है। इसी भूल ने तुम्हे चक्कर मे डाल दिया था। इस पद का सही अर्थ यह है कि—दूसरा रूठता है तो रूठने दे। हे मन! तू मत रूठ। अर्थात् दूसरा अगर मारता और गाली देता है तो तू क्रोध मत कर।

'एक नारायण नहीं रूठे तो काट लूं सब के चोटी पटा' इसका अर्थ स्पष्ट है। अगर मैं तुम्हारी बातों पर क्रोध करता तो क्या तुम मेरे पैरों में पड़ती? मैंने अपने मन को नही रूठने दिया तो तुम मेरे पैरों में गिरीं! यही तो चोटी पट्टा काटना कहलाता है।

फूलां—बहुत ठीक, अब मैं समझ गई। पर एक श्लोक का अर्थ और समझा दीजिए।

भगत—कौनसा श्लोक?

फूला—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१८॥

भगत—इसका अर्थ यह है कि तुझ में काम, क्रोध आदि जितने पाप हैं, मेरी शरण में आने पर वे सब छूट जाएगे । तात्पर्य यह है कि जहाँ पाप है वहाँ ईश्वर की शरण नही है और जहाँ ईश्वर की शरण है वहाँ पाप नही है ।

फूलाँ-मैं आपकी कृतज्ञ हूं । आपने मेरा भ्रम दूर कर दिया । आज मेरे नेत्र खुल गये । मैं कुछ का कुछ समझ बैठी थी ।

इस कथा से स्पष्ट है कि शास्त्र के अभिप्राय को विपरीत समझ लेने से बडी गड़बडी हो जाती है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि सच्चे धार्मिक या परमात्मा के आराधक को अन्य प्राणियो के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए ? अगर आपको भगवान् के वचन पर श्रद्धा है तो जगत् के सब जीवो को अपना ही मानो । ऐसा करोगे तो भगवान् आपके हैं, अन्यथा भगवान् रूठ जाएंगे ।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' और 'सव्वभूअप्पभूअस्स' अर्थात् समस्त प्राणियों को अपना समझो । अपनी आत्मीयता की सीमा क्षुद्र मत रहने दो । तत्त्वदृष्टि से देखोगे तो पता चलेगा कि अन्य जीवों में और आपके अपने माने हुए लोगों मे कोई अन्तर नहीं है ।

२६ : माता-पिता का उपकार

वास्तव मे माता-पिता के उपकार का बदला नहीं चुक सकता । कल्पना कीजिए, किसी आदमी पर करोड़ रुपयों का ऋण है । ऋण मांगने वाला ऋणी के घर गया । ऋणी ने उसका आदर-सत्कार किया और हाथ जोड़ कर कहा—'मैं आपका ऋणी हूँ और ऋण को

अवश्य चुकाऊंगा।' अब आप कहिए कि आदर-सत्कार करने और हाथ जोड़ने से ही क्या ऋणी ऋण-रहित हो सकता है?

'नहीं!'

एक राजा ने बाग तैयार कराया और किसी माली को सौंप दिया। माली ने बाग मे से दस-बीस फल लाकर राजा को दे दिये, तो क्या वह राजा के ऋण से मुक्त हो गया?

'नहीं!'

मित्रो! इस शरीर रूपी बगीचे को माता-पिता ने बनाया है। उनके बनाये शरीर से ही उनकी सेवा की तो क्या विशेषता हो गई? यह शरीर तो उन्ही का था। फिर शरीर से सेवा करके पुत्र उनके उपकार से मुक्त किस प्रकार हो सकता है?

एक माता ने अपने कलियुगी बेटे से कहा—मैंने तुझे जन्म दिया है। पाल-पोसकर बड़ा किया है। जरा इस बात पर विचार तो कर बेटा!

बेटा नयी रोशनी का था। उसने कहा—फिजूल बकबक मत करो। तुम जन्म देने वाली हो कौन? मैं नहीं था तब तुम रोती थी और बांझ कहलाती थी। मैंने जन्म लिया तब तुम्हारे यहां बाजे बजे और मेरी बदौलत ससार में पूछ होने लगी। नही तो बांझ समझ कर कोई तुम्हारा मुंह भी देखना पसन्द नहीं करता था। फिर मेरे इस कोमल शरीर को तुमने अपना खिलौना बनाया। इससे अपना मनोरंजन किया—लाड़प्यार करके आनन्द उठाया। इस पर भी उपकार जतलाती हो!

माता ने कहा—मैंने तुझे पेट में रखा सो?

बेटा—तुमने जान-बूझ कर मुझे पेट में थोड़े ही रक्खा था! तुम अपने सुख के लिए प्रयत्न करती थी, बीच में हम आ गये! इसमें तुम्हारा उपकार ही क्या है? फिर भी अगर उपकार जतलाती हो तो पेट में रहने का किराया ले लो!

यह आज की सभ्यता है ! भारतीय संस्कृति आज पश्चिमी सभ्यता का शिकार बनी जा रही है और भारतीय जनता अपनी पूंजी को नष्ट कर रही है।

माता ने कहा—कोठरी की तरह तू मेरे पेट का भाड़ा देने को तैयार है, पर मैंने तुझे अपना दूध भी तो पिलाया है !

बेटा—हम दूध न पीते तो तू मर जाती ! तेरे स्तन फटने लगते। अनेक बीमारियाँ हो जाती। मैंने दूध पीकर तुझे जिन्दा रक्खा है !

माता ने सोचा—यह बिगडैल बेटा यों नहीं मानेगा। तब उसने कहा—अच्छा चल, हम लोग गुरुजी से इसका फैसला करा लें। अगर गुरुजी कहेंगे कि पुत्र पर माता-पिता का उपकार नही है तो मैं अब से कुछ भी नही कहूँगी। मैं माता हू। मेरा उपकार मान या न मान, मैं तेरी सेवा से मुंह नही मोड सकूंगी।

माता की बात सुनकर लड़के ने सोचा—शास्त्रवेत्ता तो कहते ही हैं कि मनुष्य कर्म से जन्म लेता है और पुण्य से पलता है। इसके अतिरिक्त गुरुजी माता-पिता की सेवा करने को एकान्त पाप भी कहते हैं। फिर चलने मे हर्ज ही क्या है ?

यह सोचकर लड़के ने गुरुजी से फैसला करवाना स्वीकार किया। वह गुरुजी के पास चला गया। परन्तु माता के गुरु दूसरे ही थे। वे उन गुरु कहलाने वालों मे नही थे जो माता-पिता की सेवा करना एकान्त पाप बतलाते हैं। दोनों माता-पुत्र गुरुजी के पास पहुचे। वहाँ माता ने पूछा—'महाराज, शास्त्र में कहीं माता-पिता के उपकार का भी हिसाब बतलाया है या नही ?' गुरु ने कहा—जिसमें माता-पिता के उपकार का वर्णन न हो वह शास्त्र ही नही। वेद में माता-पिता के सम्बन्ध मे कहा है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव।

ठाणांगसूत्र मे भी ऐसी ही बात कही गई है।

गुरु की बात सुनकर मा ने पूछा—माता-पिता का उपकार पुत्र पर है या पुत्र का उपकार माता-पिता पर है ?

गुरु ने ठाणागसूत्र निकाल कर बताया और कहा—बेटा अपने माता-पिता के ऋण से कभी उऋण नही हो सकता, चाहे वह कितनी ही सेवा करे !

गुरु की बात सुनकर पुत्र अपनी माता से कहने लगा—देख तो, शास्त्र मे यही लिखा है न कि सेवा करके पुत्र, माता-पिता के उपकार मे मुक्त नहीं होता ! फिर सेवा करने से क्या लाभ है ?

पुत्र ने जो निष्कर्ष निकाला, उसे सुनकर गुरु बोले—मूर्ख, माता का उपकार अनन्त है और पुत्र की सेवा परिमित है । इस कारण वह उपकार से मुक्त नही हो सकता । पावनेदार जब कर्जदार के घर तकाजा करने जावे तब उसका सत्कार करना तो शिष्टाचार मात्र है । उस सत्कार से ऋण नही पट सकता । इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करना शिष्टाचार है । इतना करने मात्र से पुत्र उनके उपकारों से मुक्त नही हो सकता । पर इस से यह मतलब नहीं निकलता कि माता-पिता की सेवा नहीं करनी चाहिए । अपने धर्म का विचार करके पुत्र को माता-पिता की सेवा करना ही चाहिए । माता-पिता ने अपने धर्म का विचार कर तेरा पालन-पोषण किया है । नहीं तो क्या ऐसे माता-पिता नहीं मिल सकते जो अपनी सन्तान के प्राण ले लेते हैं ?

गुरु की बात सुनकर माता को कुछ जोर बँधा । उसने कहा—'अब सुन ले कि मेरा तुझ पर उपकार है या नही ?' इसके बाद उसने गुरुजी से कहा—महाराज, यह मुझ से कहता है कि तू ने पेट मे रखा है तो उसका भाड़ा ले ले । इस विषय मे शास्त्र क्या कहता है ?

प्रश्न सुन कर गुरुजी ने शास्त्र निकाल कर बतलाया । उसमें लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर में तीन अंग माता के, तीन अंग पिता के और शेष अग

दोनों के हैं। मांस, रक्त और मस्तक माता के हैं, हाड, मज्जा और रोम पिता के हैं, शेष भाग माता और पिता दोनो के सम्मिलित है।

माता ने कहा—बेटा! तेरे शरीर का रक्त और मास मेरा है। हमारी चीजें हमे दे दे और इतने दिन इनसे काम लेने का भाडा भी साथ ही चुकता कर दे।

यह सब सुन कर बेटे की आँखें खुली। उसे माता और पिता के उपकारो का खयाल आया तो उनके प्रति प्रबल भक्ति हुई। वह पश्चाताप करके कहने लगा—मैं कुचाल चल रहा था। कुसगति के प्रभाव से मेरी बुद्धि मलीन हो गई थी। इसके बाद वह गुरुजी के चरणों मे गिर पडा। कहने लगा—माता-पिता का उपकार तो मैं समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है! आपके अनुग्रह से मैं माता पिता का उपकार समझ सका हूँ।

२७ : विद्वान् और मूर्ख

विद्वान् और मूर्ख के बुरे और अच्छे कामों में भी अन्तर होता है, इस विषय में ग्रन्थकारों ने एक दृष्टान्त इस प्रकार दिया है.—

एक विद्वान् को जुआ खेलने का व्यसन लग गया था। जुआ के फदे में फँसकर उसने गाँठ की सारी पूँजी गँवा दी और अपनी पत्नी के आभूषण भी बेच डाले। उसकी दशा बडी हीन हो गई। लोग भी उसे दुत्कारते थे।

धन सबधी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए उस विद्वान् को चोरी करने के सिवाय और कोई मार्ग दिखाई न दिया। अन्त

में लाचार होकर उसने यही करने का निश्चय कर लिया। वह सोचने लगा—चोरी किसके घर करनी चाहिए ? अगर किसी सेठ के घर चोरी करूँगा तो वह चोरी मे गये धन को भी हिसाब में लिखेगा। सेठ लोग पाई-पाई का हिसाब रखते हैं। जब-जब वह हिसाब देखेगा तब तक गालियाँ देगा। अगर किसी साधारण आदमी के घर चोरी करूगा तो वह रोएगा। उस बेचारे के पास पूँजी ही कितनी होती है ?

इस प्रकार विद्वान् ने सब का विचार कर देखा। अन्त में उसने निश्चय किया कि औरों के घर चोरी करना तो उचित नहीं है, राजा के यहाँ चोरी करनी चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके वह राजा के यहाँ चोरी करने गया।

राजा ने एक बन्दर पाल रक्खा था। बन्दर राजा को बड़ा प्रिय था। वह उसे अपने साथ ही खिलाता और साथ ही रखता था। रात के समय जब राजा सोता तो बन्दर नगी तलवार लेकर पहरा दिया करता था। राजा बन्दर को अपना बड़ा प्रिय मित्र समझता था।

राजा सो रहा था। बन्दर नगी तलवार लिए पहरा दे रहा था। इसी समय विद्वान् चोरी करने के लिए पहुचा।

बन्दर राजा का मित्र है, लेकिन वह विद्वान् चोरी करने आया है इस कारण शत्रु है। फिर भी देखना चाहिए कि विद्वान् शत्रु मे और मूर्ख मित्र में कितना अन्तर है ? और दोनों मे कौन अधिक हितकर या अहितकर है ?

राजा गाढ निद्रा में लीन था। उसी समय मकान की छत पर एक साँप आया। साँप की छाया राजा पर पड़ी। बन्दर ने साँप की छाया को साँप ही समझ लिया और विचार किया कि यह साँप राजा को काट खाएगा ! वह चपल और मूर्ख तो था ही, आगे पीछे की क्यों सोचने लगा ? उसे विचार ही नहीं आया कि

छाया पर तलवार चलाने से सांप तो मरेगा नहीं, राजा ही मर जायगा। वह सम्भलकर छाया रूपी सांप को मारने के लिये तैयार हुआ।

मूर्ख मित्र की बदौलत राजा के प्राणपखेरू उड़ने मे देरी नहीं थी। विद्वान् खड़ा-खड़ा यह सब देख रहा था। उसने सोचा—'इस मूर्ख मित्र के कारण वृथा ही राजा की जान जा रही है। चाहे मै पकड़ा जाऊ और मारा जाऊ, मगर राजा को बचाना ही चाहिए। अपनी आंखो के आगे राजा का वध मैं नहीं होने दूंगा!' यह सोचकर विद्वान् एकदम झपट पड़ा और उसने बन्दर की तलवार पकड़ ली। बन्दर और विद्वान् में झगड़ा होने लगा। इतने में राजा की नींद खुल गई। वह हड़बड़ा कर उठा और बन्दर तथा विद्वान् की खींचतान देखकर और भी विस्मित हुआ। राजा के पूछने पर विद्वान् ने कहा—'यह बन्दर आपके प्राण ले रहा था पर मुझसे यह नहीं देखा गया। इसी कारण झपट कर मैंने तलवार पकड़ ली है।'

राजा—तू कौन है?

विद्वान्—मैं? मैं चोर हूं!

राजा—बन्दर मुझे कैसे मार रहा था?

विद्वान्—आप सो रहे थे और मैं चोरी करने की ताक मे आया था। छत पर सांप आया। उसकी छाया आपके शरीर पर पड़ी। छाया को सांप समझ कर यह बन्दर तलवार चलाने को उद्यत हुआ। मुझसे यह नही देखा गया। मैंने झपट कर तल-वार पकड़ ली।

विद्वान् की बात सुनकर राजा सोचने लगा—प्रजा को अशिक्षित रखकर बन्दर के समान मूर्ख बनाये रखने से क्या हानि होती है, यह बात आज मेरी समझ में आई। मगर राजा ने पण्डित से पूछा—तुम पण्डित होकर चोरी करने आये हो?

पण्डित—मैं जुआ खेलने के व्यसन मे पड गया। एक दुर्व्यसन भी मनुष्य के जीवन को किस प्रकार पतित कर देता है, किस प्रकार विवेक को विनष्ट कर देता है, इसके लिए मैं उदाहरण हूं। जुआ के दुर्व्यसन ने मेरी पण्डिताई पर पानी फेर दिया है। मेरी विद्वत्ता जुए से कलंकित हो रही है। मैं आपके सामने उपस्थित हूं। जो चाहें, करें।

मतलब यह है कि नादान दोस्त की अपेक्षा ज्ञानवान् शत्रु भी अधिक हितकारी होता है। ज्ञानवान् अपने कल्याण-अकल्याण को शीघ्र समझ जाता है। ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को शीघ्र ही सन्मार्ग पर ले आता है। पथभ्रष्ट मनुष्य भी, अगर उसके हृदय में ज्ञान विद्यमान है तो, एक दिन सत्पथ पर आये विना नहीं रहेगा। अतएव प्रत्येक दशा मे ज्ञान जीवन को उन्नत बनाने मे सहायक होता है।

अगर आप लोग ज्ञान का सच्चा महत्त्व समझते हैं। तो अर्हन्त भगवान् के ज्ञान का प्रचार कीजिए। आप स्वय ऐसे काम कीजिए जिससे ज्ञान का प्रचार हो। अर्हन्त के ज्ञान का प्रचार अक्षरज्ञान के विना नहीं हो सकता। यह विचार कर ही भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी को लिपिज्ञान दिया था। भगवान् के आशय को आप समझिए और अपनी सन्तति को मूर्ख मत रहने दीजिए। ज्ञान का प्रचार करने का उद्योग कीजिए। ज्ञान की वृद्धि उन्नति का मूल मन्त्र है। आपके पास जो भी शक्ति हो, ज्ञान के प्रचार मे लगाइए। इतना भी न कर सकें तो कम से कम ज्ञान और ज्ञान-प्रचार का विरोध तो मत कीजिए। ज्ञान की, शिक्षा की निन्दा करना, उसमे रोड़े अटकाना और जो लोग ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं उनका विरोध करना बुरी बात है। ज्ञान प्रचार शासन की प्रभावना का प्रधान अङ्ग है। सच्चे ज्ञान का प्रचार होने पर ही चरित्र के विकास की संभावना की जा सकती है। आप लोग ज्ञान और चरित्र की आराधना करके आत्म-कल्याण मे लगें, यही मेरी आंतरिक कामना है।

२८ : राजा और चोर

शेखपुर मे एक चालाक चोर रहता था। वह इस चालाकी से लोगो के घर चोरी करता था कि यह पता लगाना सख्त कठिन हो जाता था कि चोरी कब और किस प्रकार हुई है ? चोरी के कारण प्रजा परेशान हो गई। प्रजा ने प्रयत्न किया मगर चोर का पता नही लगा। किसी के घर का ताला टूटा नहीं, दीवार मे सेंध लगी नही, फिर भी घर मे चोरी होगई। इस चतुर चोर की चालाकी से प्रजा थक गई। आखिरकार प्रजा इकट्ठी होकर राजा के पास पहुंची। शेखपुर की प्रजा छोटी-छोटी बातो के लिए राजा के पास नहीं पहुंचती थी। अतएव राजा समझ गया कि आज प्रजा पर कोई मुसीबत आई है। इसी कारण लोग मेरे पास आये हैं।

राजा ने प्रजाजनो से पूछा—तुम्हे, क्या कष्ट है, स्पष्ट कहो।

प्रजा ने चोर द्वारा चारों ओर फैलाये हुए हाहाकार का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया। राजा चोर की चालाकी की बात सुनकर आश्चर्यचकित हो कहने लगा—वह चोर वास्तव में कोई महान् चोर है। खोज करके जल्दी ही उसे पकड़ना चाहिए। चोर को पकड़कर मैं प्रजा का दुख दूर करने का यथा-सम्भव प्रयत्न करूगा। सच्चा राजा हूं तो अपने प्राणो को होम करके भी सात ही दिन में चोर को पकड लूगा। इस प्रकार कह-कर राजा ने प्रजा को आश्वासन दिया।

आज ऐसे प्रजाप्रेमी नरेश बहुत कम नजर आते हैं जो प्रजा के दुख को अपना दुःख समझकर उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। प्रजाप्रिय राजा, प्रजा की रक्षा के लिए अपने प्राण भी निछा-वर कर देता है।

राजा ने चोर को पकड़ने की प्रतिज्ञा की है, यह बात चारों ओर नगर भर मे फैल गई। मंडूक ने भी राजा की प्रतिज्ञा की बात सुनी। वह विचार करने लगा—राजा ने प्राण का भोग देकर भी मुझे पकड़ने की प्रतिज्ञा की है। अब मेरा बचना कठिन है। फिर भी मुझे तो राजा के पंजे से बचने का ही प्रयत्न करना चाहिए। वीर पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह पराजित भले ही हो जाय मगर पुरुषार्थ न छोड़े। पुरुषार्थ छोड़कर बैठ रहना कायरता है।

चोर का पता लगाने के लिए राजा भेष बदलकर शहर में निकला। इधर चोर भी अपना भेष बदलकर यह देखने के लिए निकला कि देखें, राजा क्या करता है? चोर पैर मे पट्टी बांधकर, हाथ मे लाठी लेकर, बीमार दरिद्र की तरह शहर मे घूमने निकला। राजा ने मडूक चोर को इस भेष मे देखा। मडूक चोर की आंख देखते ही राजा मन में समझ गया कि चोर यही है। परन्तु जब तक प्रमाण द्वारा अपराध साबित न हो जाय तब तक उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता। दोनों एक-दूसरे के सामने आये और आपस में पूछने लगे—'तुम कौन हो?' किसी ने अपना परिचय नहीं दिया। अन्त में चोर ने कहा—मैं कौन हूं, यह जानने की तुम्हें क्या आवश्यकता है? तुम अपना काम करो, मैं अपना काम करता हूं। चोर के इस कथन का आशय राजा ने यह समझा कि चोर ठीक ही कह रहा है कि 'मैं चोर हूं। चोरी करने जाता हू। तुम राजा हो तो मुझे पकड़ लो।'

इस प्रकार विचार कर राजा वहां से चलता बना। जाते-जाते राजा ने यह भी निश्चय कर लिया कि चोर सामने के पहाड़ मे रहता है और इस रास्ते से शहर में आता है।

दूसरे दिन राजा ने भिखारी का भेष बनाया। वह उसी रास्ते पर चुपचाप बैठ गया, जिस रास्ते से चोर आया-जाया करता था।

चोर भी भेष बदल कर शहर मे आया। रात अन्धेरी थी। भिखारी के भेष मे पडे हुए राजा पर उसकी निगाह न पडी। अतः चोर के पैर मे राजा की ठोकर लग गई। ठोकर लगते ही वह चिल्ला उठा। चोर ने पूछा—तू कौन है ?

राजा ने कहा—मैं गरीब भिखारी हू। रहने को कहीं जगह नही। इसलिए यहा पडा हू।

चोर बडा ही चालाक था। समझ गया, यही राजा है। उसने सोचा—किसी भी उपाय से राजा को नष्ट किया जा सके तो फिर कोई आफत ही न रहे।

चोर बोला—क्या इस तरह रास्ते मे पडे रहने से तेरा दुःख दूर हो जायगा ?

राजा—इस तरह पडे रहने से दुःख दूर नहीं होगा। दुःख तो तुम्हारे जैसे की सगति से दूर हो सकता है।

चोर- तू मेरे साथ चल। मैं तेरा दुःख दूर करूंगा।

राजा ने चोर के साथ जाना कबूल किया। राजा साथ हो लिया। दोनो एक दूसरे को मार डालने की घात मे थे, इस कारण दोनों ही सावधान थे।

चोर ने चोरी की। धन आदि की दो पेटियां भरीं। राजा से कहा—एक पेटी तू उठा ले। पर देखना, भाग मत जाना।

राजा—नही मैं भागूंगा क्यों ?

चोर—तो ठीक। चल, आगे चल। मैं तेरे पीछे-पीछे चलता हू।

राजा—'तुम्हे कहाँ जाना है, सो मुझे मालूम नहीं। अतएव आगे तुम चलो। मैं पीछे पीछे चलूंगा।

चोर—ठीक है, तू पीछे ही चलना। मगर तू कहीं भाग न जाय, इसलिए तुझे रस्सी से बांध लेता हू।

चोर ने राजा को रस्सी से बांध लिया। चोर आगे-आगे

चलने लगा। राजा चोर नहीं था। फिर भी मङ्क चोर ने राजा को चोर की तरह बांध लिया।

राजा को साथ लेकर चोर घर आया। मङ्क चोर ने अपनी लड़की को पास बुला कर कहा— मैं एक आदमी को साथ लाया हूँ। वह मेरे व्यवसाय मे विघ्न डालता है। किसी उपाय से उसे मार डालना है।

पुत्री ने कहा— आपकी आज्ञा के अनुसार सब काम हो जायगा।

लड़की तब राजा के पास पहुची। बोली— भोजन तैयार है। जीमने चलो।

राजा ने मन ही मन कहा—भोजन करने तो जाना चाहिए, मगर भोजन करते समय सावधान रहना होगा। इस समय मैं चोर के घर में हू।

राजा ने लड़की से कहा—पहले तुम जीमलो। तुम्हारे जीमने के बाद मैं भोजन करूगा। मैं भिखारी हूँ, फिर भी इतनी सभ्यता जानता हूं। जब तक घर वाले न जीम लें, मैं कैसे जीम सकता हूँ?

राजा की बात सुनकर लड़की समझ गई— यह भिखारी नहीं है। दरअसल भिखारी होता तो ऐसा न कहता, वरन् खाने बैठ जाता।

चोर की कन्या ने राजा से कहा—अगर तुम सभ्य हो तो भोजन से पहले स्नान करना चाहिए।

राजा—अगर यह नियम है तो इसका पालन करना मेरा कर्त्तव्य है।

चोर-कन्या राजा को स्नान कराने के लिए कुए पर ले गई। चोरकन्या का यह नियम था कि वह जिसे स्नान कराने कुए पर ले जाती, उसके पैर पकड़ कर कुए में फैंक देती थी। राजा को कुए मे डालने के लिए उसने राजा के पैर पकड़े। पर राजा के

सुलक्षण युक्त पैर देखकर वह सोचने लगी– यह तो कोई महापुरुष है। पैर के चिह्नों से मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर का हाल मालूम हो जाता है। इस कथन के अनुसार चोरकन्या ने राजा के लक्षणयुक्त पैर देखकर विचार किया— यह कोई महान् पुरुष है। ऐसे महान् पुरुष को पिताजी मार डालना चाहते हैं, यह उचित नहीं है।

चोरकन्या कहने लगी—मेरे पिता अत्यन्त क्रूर हैं। वे तुम्हें मार डालना चाहते हैं। मैं तुम्हारे लक्षणयुक्त पैर देखकर समझ गई हूं कि तुम राजा हो। मैं तुमसे यही कहना चाहती हूं कि अगर अपने प्राण बचाना चाहते हो तो इस रास्ते से जल्दी भाग जाओ। वर्ना तुम्हारे प्राणो की खैर नही।

राजा ने चोरकन्या की बात मानली। वह उसके बताये मार्ग से भाग निकला। राजा जब दूर जा पहुंचा तो चोरकन्या ने मडूक को आवाज दी। कहा—वह भिखारी तो भाग गया।

भिखारी के भागने का समाचार पाते ही मडूक की आंखें लाल हो गई। कक नामक पत्थर से बनाई गई तीखी तलवार लेकर वह राजा के पीछे दौडा। तलवार इतनी तीखी थी कि जिस चीज पर उसका प्रहार हुआ, तत्काल उसके टुकडे-टुकडे हो जाते थे।

चोर ने दूर से ही राजा पर तलवार का प्रहार किया। मगर वह प्रहार पत्थर के खम्भे पर जा लगा। खम्भा टुकडे-टुकडे होकर गिर पडा। राजा बडी कठिनाई से बच सका। चोर समझ गया– राजा बच गया है और खम्भा टुकडे-टुकडे हो गया है।

चोर निराश होकर घर लौट आया। उसने अपनी कन्या से कहा—राजा धोखा देकर भाग गया। वह अपने घर की छिपी बातें जान गया है। अब हमें बहुत होशियारी के साथ रहना चाहिए।

चोरकन्या ने कहा—पिताजी ! जान पडता है, अब आपके

पापों का घड़ा भर गया है।

मंड़क ने क्रुद्ध होकर कहा—क्यो अपशकुन की बात मुंह से निकालती है ?

चोरकन्या—पाप का अन्त होने मे बुराई क्या है, पिताजी !

लड़की की वात मड़क को बहुत बुरी लगी। फिर भी वह मौन रहा।

दूसरे दिन चोर व्यापारी बनकर शखपुर के बाजार में क्रय-विक्रय करने आया। इधर राजा भी वेप वदल कर चोर की फिराक में शहर मे घूमने लगा। घूमता-घूमता राजा उसी दुकान पर आ पहुँचा, जहाँ चोर व्यापारी के रूप मे क्रय-विक्रय कर रहा था। राजा, चोर व्यापारी को देखते ही पहचान गया। राजा ने पूछा—'तुम क्या-वेचने आये हो ? तुम्हारे पास क्या है ?

चोर—हमारे पास सभी कुछ है। तुम्हें क्या चाहिए ?

राजा—भाई, मुझे और कुछ नही चाहिए। सिर्फ तुम्हारी आवश्यकता है।

चोर—मेरा क्या काम है ?

राजा—तुम चोर हो, इसीलिए तुम्हारी जरूरत है ?

चोर—मैं साहूकार हू। कौन मुझे चोर कहता है ?

राजा—तुम्हारे चोर या साहूकार होने का निर्णय अभी हो हो जायगा। तुम्हारे चोर होने की खातिरी मैंने तो पहले से ही कर रखी है।

आखिर राजा ने चोर को पकड़ लिया। चोर विचार करने लगा—मुझे पकड़ने वाला कोई मामूली आदमी नही है। राजा ने मुझे पकड़ा है। मुझे सख्त सजा मिलेगी।

राजा बोला—अब तुम पकड़े जा चुके हो। कहो अब तुम्हें क्या करना है ?

चोर बोला—जो आप कहें, वही करने को तैयार हूं।

राजा—सब से पहले तुम अपनी कन्या का मेरे साथ विवाह कर दो।

चोर—ठीक है। यह कह कर उसने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्या राजा को ब्याह दी।

राजा ने चोरकन्या से कहा—तुमने मेरे शरीर की रक्षा की थी। अब यह शरीर मैं तुम्हारे सिपुर्द करता हूँ।

चोरकन्या बोली—नाथ, आप उदार हैं, इसी से ऐसा कहते हैं। मैं तो वास्तव में चोर की कन्या हूँ। मैं आपके सन्मान के योग्य नही। आपने मेरा सन्मान करके मुझ पर उपकार किया है।

राजा—अब तुम्हे किसी प्रकार की चिंता नही करनी चाहिए। तुम्हारे पिता अब मेरे सुसर हैं। मैं उनका भी सन्मान करूगा और गौरव बढ़ाऊंगा।

राजा ने मडूक चोर को प्रधान मत्री बना दिया। जब यह बात नगर मे फैली तो सभी लोग राजा को धिक्कारने लगे। राजा इसके लिए तैयार था। वह जानता था कि पहले पहल लोग मेरे कार्य से अप्रसन्न होंगे। मगर जब इसका नतीजा सुनेंगे तो प्रसन्न हुए बिना नही रहेगे।

राजा चोर-प्रधान को धमकाकर या समझा-बुझाकर चोरी के रत्न निकलवाता रहता था। उसके पास अभी कितने रत्न हैं, यह बात राजा चोरकन्या अर्थात् अपनी पत्नी से मालूम कर लेता और फिर उन्हे किसी उपाय से निकलवा लेता। इस प्रकार कभी धमकी देकर और कभी फुसलाकर राजा ने चोर प्रधान के पास से सभी रत्न निकलवा लिए। जब उसके पास कुछ भी शेष न रहा तब राजा ने नगरजनो को बुलाया और कहा—यह प्रधान नही, चोर है। चोर से सब रत्न निकलवाने के उद्देश्य से ही मैंने इसे प्रधान बनाया था। अब इसके पास कुछ बाकी नही रहा। अतएव चोरी करने के अपराध मे इसे फासी की सजा दी जाती है।

चोरी गये सब रत्न राजा ने वापिस कर दिए। प्रजाजन राजा की बुद्धिमत्ता और चतुराई की प्रशंसा करने लगे। राजा-प्रजा में प्रेम की वृद्धि हुई। राज्य का अच्छी तरह संचालन होने लगा।

यह एक दृष्टान्त है। साधुजीवन पर यह दृष्टान्त दिया गया है। इस दृष्टान्त में क्या सार ग्रहण करना चाहिए, यह विचारणीय है।

साधु के लिए कहा गया है कि यह शरीर मङ्क चोर के समान है। वुद्धि शरीररूपी चोर की कन्या है। शरीर यद्यपि चोर के समान है, फिर भी अनेक रत्न इसके कब्जे में हैं। इस शरीर के विना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। हे मुनियो ! तुम्हारे शरीर में रहा हुआ आत्मा राजा है। शरीर चोर है और बुद्धि चोरकन्या है। मनुष्य में जैसी बुद्धि है वैसी प्राणियो में नहीं है। आत्मारूपी राजा शरीररूपी चोर के घर में आया है। आत्मारूपी राजा खान-पान के प्रलोभन में न पड़कर बुद्धिरूपी चोरकन्या को पहले खिला-कर ही आप खाता है। अर्थात् शास्त्र में खान-पान सम्बन्धी जो विधी बतलाई गई है, बुद्धि द्वारा उसका निर्णय करने के बाद ही खाता है। इस प्रकार बुद्धि द्वारा निर्णय करके जो खाता है, वही आत्मारूपी राजा है। बुद्धिरूपी चोरकन्या आत्मा-राजा को पैर पकड़कर कुए में डाल देना चाहती है, पर आत्मा-राजा के लक्षण-युक्त चरण देखते ही वह उसे महान् समझकर बचा देती है। चरण का अर्थ पैर भी है और आचरण भी है। जब बुद्धि के हाथ चरण आता है और वह उसके अच्छे लक्षण देखती है, तब कहती है—ऐसे पुण्यात्मा को कूप में पटकना ठीक नहीं। इस प्रकार बुद्धिरूपी चोरकन्या आत्माराजा को मुक्त होने का मार्ग बतलाती है और आत्माराजा उस मार्ग पर चलकर मुक्त हो जाता है। जब आत्मा-राजा संसार के पदार्थों का ममत्व तजकर माग

जाता है तो काम, क्रोध, मान, लोभ रूपी चोर वासनावृत्ती की तलवार हाथ में ले आत्मा के पीछे दौडता है। वासनावृत्ती रूपी तलवार बहुत तीखी है। यह तलवार जिस पर पडती है उसका जीवन नष्ट हो जाता है।

आत्मा-राजा सावधान होने के कारण वासनावृत्ति रूपी तलवार के प्रहार से कुशलतापूर्वक बच गया और राजमहल में आकर चोर को पकडने का उपाय सोचने लगा। गहरा विचार करने के बाद राजा, चोर को भर बाजार मे से पकड लाता है। चोर के पास से रत्न निकलवाने के लिए वह युक्ति से काम लेता है। वह सब से पहले बुद्धिरूपी चोरकन्या के साथ लग्न-सम्बन्ध जोडता है और चोर को प्रधान बनाता है। तत्पश्चात् विविध उपायों द्वारा चोर के कब्जे मे जो रत्न निकलवाने के लिए ही उसे प्रधान बनाता है। चोर को प्रधान बनाने से, प्रजा राजा की निन्दा करने लगी थी, उसी प्रकार कुछ लोग यह कह कर साधुओं की निन्दा करते हैं कि साधु हो जाने पर भी इन्हें खाने और कपडा पहनने की क्या आवश्यकता है? परन्तु साधुआत्मा लोगो की निन्दा की परवाह न करके शरीर-चोर के कब्जे मे से ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्न लेने के लिए शरीर-चोर को आदर देते हैं। जब आत्मा को बुद्धि द्वारा मालूम होता है कि अब शरीर चोर के पास एक भी रत्न शेष नहीं रहा तब साधु-आत्मा शरीर रूपी चोर को संथारारूपी शूली पर चढा देता है और आप स्वावलम्बी बन जाता है। स्वावलम्बी आत्मा रूपी राजा ही प्रजा को स्वावलम्बी बना सकता है। जब तक नायक स्वय स्वावलम्बी नही बन जाता तब तक वह जनसमाज को कैसे स्वावलम्बी बना सकता है?

इस कथा का सार यह है कि महावीर भगवान् ने भत्त (भोजन) के त्याग के विषय में जो कुछ कहा है, वह निर्दयता से नहीं वरन् आत्मा के कल्याण के लिए कहा है। पर सथारा करके

और कराने मे विवेक की खास आवश्यकता है। अगर सथारा करने-कराने में विवेक से काम न लिया जाय तो जैनधर्म का उद्योत नही होता। जब ससार के पदार्थों पर ममता नहीं रहती और सांसारिक पदार्थों की जरा भी सहायता नही ली जाती, तभी भोजन का त्याग करके सथारा लिया जा सकता है। आत्मा की पूर्व तैयारी के बिना सथारा लिया जाय तो मृत्यु पर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। यही नहीं, वरन् आत्मा का घात होता है। सथारा तो मृत्यु को जीतने का एक श्रेष्ठ साधन है। मृत्यु को आह्वान करना साधारण आत्मा का काम नहीं। जो आत्मा ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र का बल पाकर बलिष्ठ और निर्भय बनचुका है, वही बलवान आत्मा भोजन का त्याग करके मृत्यु का आह्वान कर सकता है। वही मृत्यु को जीत सकता है। शरीर का प्रत्याख्यान करने के साथ ही भोजन का प्रत्याख्यान किया जा सकता है।

२१ : वक्रता

जिसके भाव मे सरलता होगी उसकी भाषा मे भी सरलता होगी और काया में भी सरलता होगी। इसके विपरित जिसके भावों में और जिसकी भाषा मे वक्रता होगी, उसके भावों में सरलता नहीं हो सकती। जो वृक्ष ऊपर से हराभरा दिखाई देता है, उसकी जड़ भी मजबूत और हरीभरी है, ऐसा कहा जाता है, परन्तु जो वृक्ष ऊपर से सूखा हुआ नजर आता है, उसकी जड हरी है, यह कैसे कहा जा सकता है? इसी प्रकार सदा काया और भाषा

में वक्रता होती है, तब कैसे कहा जा सकता है कि भाव मे सरलता है ? जब काय में वक्रता होती है तो भाव मे भी वक्रता होती है, यह बात एक ऐतिहासिक उदाहरण देकर समझाता हूँ—

बादशाह अकबर का प्रधान हिन्दू था। यह हिन्दू प्रधान मुसलमानो को शल्य की भाति चुभता था। उनकी मान्यता थी कि मुसलमान राज्य मे हिन्दू प्रधान कदापि नही होना चाहिये। अतएव वे हिन्दू प्रधान के बदले किसी मुसलमान को प्रधान बनाने का प्रयत्न करते थे। जब उनका कोई प्रयत्न सफल नही हुआ तो उन्होंने बेगम को भँरमा कर अपनी मनोकामना पूरी करनी चाही। कुछ मुसलमान बेगम के पास पहुचे और बोले—'आपका भाई शेखहुसेन हर तरह से काबिल है, फिर भी उसे दीवान न बनाकर एक हिन्दू काफिर को सल्तनत का दीवान बनाया गया है ! क्या यह ठीक कहा जा सकता है ?

बेगम मुसलमानो के भ्रम-जाल मे फस गई। जब बादशाह महल मे गए तो बेगम ने तिरिया-चरित द्वारा उन्हे वचन में बांध लिया। बादशाह ने बेगम से कहा—'तुम चाहती क्या हो ? जो चाहती हो, बताओ ! मैं वही देने को तैयार हूँ।' बेगम बोली—तुम मेरे भाई की कई बार तारीफ किया करते हो। अगर दरअसल वह होशियार है तो उसे दीवान न बनाकर एक हिन्दू काफिर को क्यों दीवान बनाया है ? बादशाह बेगम का अर्थ समझ गया। उसने मन-ही-मन विचार किया—बेगम को इस बात का यकीन करा देना चाहिये कि दरअसल उसका भाई कितना काबिल है ! इस प्रकार विचार कर बादशाह ने कहा—तुम्हारा कहना सही है। मुझ से भूल हुई कि अपने ही घर मे शेखहुसेन जैसे काबिल शख्स के होते हुए भी मैंने एक हिन्दू को सल्तनत का वजीर बना दिया। मैं कल शेखहुसेन को बड़ा वजीर बना देने का इन्तजाम करूंगा।

जब बादशाह राजमहल मे से चले गये तो वे धूर्त मुसलमान

फिर बेगम के पास आये। पूछने लगे—'क्या हुआ ?' बेगम ने उत्तर दिया—'सब काम हो गया है। कल मेरा भाई शेखहुसेन प्रधान बना दिया जायगा।' यह सुनकर वे मुसलमान प्रसन्न हुए और कहने लगे—चलो, हिन्दू प्रधान का एक कांटा तो दूर हुआ !

दूसरे दिन बादशाह ने प्रधान से कहा—'तुमने बहुत दिनों तक प्रधान-पद भोगा। अब थोड़े दिनों के लिए शेखहुसेन को यह पद दे दो।

हिन्दू वजीर ने कहा—'जैसी जहांपनाह की मर्जी।'

बादशाह ने प्रधान-पद शेखहुसेन को सौंपा और हिन्दू प्रधान को पृथक् कर दिया। बादशाह के इस कार्य से मुसलमान बहुत प्रसन्न हुए। मगर उन्हे पता नहीं था कि शेखहुसेन इस कार्य के लिए योग्य है या नही ? बादशाह को भली-भांति मालूम था कि शेखहुसेन इस पद को सुशोभित नही कर सकता। उन्होने सोचा—शेखहुसेन को मैंने प्रधान पद सौंप तो दिया है परन्तु वह किसी दिन राज्य को भयकर हानि पहुचाएगा। अतएव ऐसा कोई उपाय करना ठीक होगा कि वह स्वय ही प्रधान-पद छोडकर भाग जाय। इस प्रकार विचार कर बादशाह ने शेख से कहा—रोम के बादशाह से कुछ काम है। तुम वहां जाओ और काम को इस प्रकार कर आओ जिससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़े। शेखहुसेन ने बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य की और रोम जाने की तैयारी शुरु कर दी।

शेखहुसेन रोम गया। उसने वहां ऐसा व्यवहार किया कि उसका अपमान हुआ। अपमानित होकर वह वापिस लौटा। वह अपने मन मे कहने लगा—मैं इस झझट मे कहां से पड गया। पहले मैं मौज मे था। प्रधान बन कर मुसीबत गले लगा ली। इस प्रकार सोचता-विचारता वह बादशाह के सामने आया। बादशाह ने पूछा—रोम सकुशल जा आये ? शेखहुसेन ने उत्तर मे कहा—आपने खूब झंझट में डाल दिया। वहां मेरा अपमान हुआ और

जिस काम के लिये आपने भेजा था वह भी न हुआ। मुझ से यह वजीरत न होगी। मेहरबानी करके यह पद वापिस ले लीजिये। बादशाह ने जवाब दिया—यह सब बात तुम अपनी बहिन से कहो।

बादशाह चाहते थे कि बेगम इन सब बातो से परिचित हो जाय और फिर कभी ऐसा प्रपच न करे। इसी कारण बादशाह ने सब बाते बेगम से कहने के लिये कहा। शेखहुसेन अपनी बहिन के पास गया और कहने लगा—'बहिन! प्रधान-पद की यह मुसीबत तुमने क्यों मेरे सिर मढी! पहले मैं मजे से रहता था, अब चिन्ता ही चिन्ता मे दिन बीतता है।'

बेगम—तुम प्रधान बनाये गये तो बुरा क्या हुआ? प्रधान का हुक्म तो बादशाह से भी ऊचा समझा जाता है।

शेख—बहिन! तुम्हारा कहना सही है। प्रधान का पद बडा है यह ठीक है मगर उसे टिकाये रखने के लिये मुझमे काबलियत भी तो होनी चाहिये। मुझमे यह काबलियत नहीं है। इस लिए किसी तरह कोशिश करके मुझे इस मुसीबत से बचाओ।

बेगम—फला मुल्लाजी और फला मुसलमानो ने तुम्हे वजीर बनाने के लिये मुझ से कहा था, बल्कि जोर दिया था। उन्होंने ही मुझे ऐसा करने के लिए भडकाया था। लिहाजा उन्हे बुलवाकर पूछ लेती हू।

जिन मुल्लाओ और मुसलमानो ने बेगम को भरमाया था, उन सबको बेगम ने अपने सामने बुलवा कर पूछा—तुम लोग मेरे भाई को वजीर बनाने के लिए कहते थे। उसे वजीर बना भी दिया गया है। लेकिन वह वजीर बने रहने के लिए तैयार नही है। अब क्या करना चाहिए?

उन्होंने कहा—हमारी ख्वाहिश तो यही थी कि मुसलमान सल्तनत का वजीर भी मुसलमान ही होना चाहिए। इसी वजह से हमने आपके भाई का नाम पेश किया था। अब अगर वह

वजीर होना या रहना नहीं चाहते तो जाने दीजिये ।

आखिर बादशाह ने फिर हिन्दू प्रधान को प्रधान के पद नियुक्त किया । बादशाह ने हिन्दू प्रधान से कहा—शेखहुसेन जो काम बिगाड आया है उसे तुम सुधार आओ । बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य करके हिन्दू प्रधान दलबल के साथ रोम गया । रोम के बादशाह को मालूम हुआ कि भारत का प्रधान आया है । रोम के बादशाह ने कहा—भारत के प्रधान का व्यक्तित्व ही क्या है ? एक प्रधान तो पहले आया था । अब यह दूसरा आया है । मिलना तो चाहिए ही ।

रोम के बादशाह ने भारत के प्रधान की परीक्षा करने के लिए एक युक्ति रची । उसने अपने ग्यारह गुलामों को भी अपनी ही जैसी पोशाक पहना दी । बारहो आदमी एक समान बैठ गये, जिससे पता न लग सके कि वास्तव मे बादशाह कौन है ? भारतीय प्रधान रोबदार पोशाक पहन कर रोम की राजसभा मे गया । राजसभा मे पहुंचकर प्रधान ने एक ही नजर मे असली बादशाह को पहचान लिया और उसको सलामी दी । बादशाह ने पूछा कि तुम मुझे बादशाह समझते हो तो ये दूसरे लोग कौन है ? भारत के प्रधान ने उत्तर मे कहा—हमारे यहाँ भारत में होली के अवसर पर ऐसे अनेक बादशाह बनाये जाते हैं । यह लोग भी ऐसे ही बादशाह हैं । बादशाह ने फिर पूछा – यह बात तुमने कैसे जानी कि ये लोग असली बादशाह नही हैं और मैं असली बादशाह हूँ । भारत प्रधान ने कहा—जिस समय मैं राजसभा मे दाखिल हुआ । उस समय यह मेरी पोशाक की ओर वक्र दृष्टि से देखने लगे । अकेले आप ही गम्भीर होकर बैठे रहे । आपकी गम्भीरता देखकर मैं जान सका कि वास्तव मे आप ही बादशाह हैं । यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ । प्रधान के साथ उसने हाथ मिलाया और उसकी पीठ ठोक कर योग्यता का प्रमाण-पत्र दिया । रोम

के बादशाह ने भारतीय प्रधान शेखहुसेन के आने का जिक्र करते हुए कहा—तुमसे पहले जो प्रधान आया था, वह तो बिल्कुल अयोग्य था। भारतीय प्रधान ने रोम के बादशाह के मुख से शेखहुसेन की निन्दा सुनकर कहा—जहाँपनाह! शेखहुसेन को तो आपकी परीक्षा के करने भेजा था। वास्तव मे वह अयोग्य नही था। इस प्रकार भारतीय प्रधान ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के साथ शेखहुसेन की अप्रतिष्ठा भी दूर की।

प्रधान रोम से लौटकर बादशाह अकबर के समक्ष आया। उसने रोम का सारा वृत्तात कह सुनाया। बादशाह सारी बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने मुसलमानो को बुलाकर कहा—'वजीर तो ऐसा होना चाहिये!' बादशाह का कथन सुनकर मुसलमानो ने कहा—'अब हमारी समझ मे आया कि आप जो कुछ करते हैं, योग्य ही करते हैं।'

इस कथा से यह सार निकलता है कि जब भाव मे सरलता आती है तब काया मे भी सरलता आती है और जब भाव मे सरलता नही होती तो काया मे भी सरलता नही होती। भाव मे वक्रता आने से काया मे भी वक्रता आ जाती है। उपर्युक्त उदाहरण मे हम देख चुके हैं कि नकली बादशाहो ने भी पोशाक तो असली बादशाह सरीखा ही पहना था, परन्तु उनके भाव वक्र होने के कारण उनकी काया में भी वक्रता आ गई थी। इसके विपरीत बादशाह के भाव मे वक्रता न थी अतएव उसकी काया मे भी वक्रता न आई। भाव की वक्रता या सरलता का पता तो काया की वक्रता और सरलता से सहज ही लग जाता है। अतएव भाव मे सरलता रखने के साथ काया मे और भाषा मे भी सरलता रखना आवश्यक है। अगर कोई मनुष्य काया मे वक्रता रखकर अपने भाव सरल बतलाता है तो उसका कथन मिथ्या है।

३० : कषाय-विजय

कषाय की तीव्रता के कारण ही नरक आदि नीच गतियों मे जाना पडता है। नरक कहीं वाहर से नही आता। वह तो अपने ही परिणामो मे है। कितने ही लोग दुख माथे पर आ जाने के समय हाय-तोवा मचाने लगते हैं। वे यह नहीं सोचते कि दुःख कहाँ से और कैसे आया है? दुख न वाहर से आते हैं और न आये ही हैं। वे तो अपने ही मलिन परिणामो की उपज हैं। मलिन परिणामों का त्याग करना ससार पर विजय प्राप्त करने का मार्ग है। साथ ही मलीन परिणामों के अधीन होना ससार के अधीन होने के समान है। अतएव जल्दी-से-जल्दी कषाय का त्याग करना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को अपने हृदय मे यह वात अकित कर रखना चाहिए कि—'कषाय की बदौलत ही हमारा स्वाधीन आत्मा पराधीनता मे पडा है। आत्मा को स्वाधीन बनाने के कषायशत्रु पर विजय प्राप्त करना चाहिये।

जो स्थान और कारण कषाय उत्पन्न करने वाला है वही स्थान और कारण कषाय को जीतने वाला भी है। यह वात स्पष्ट करने के लिये श्री उत्तराध्ययनसूत्र मे आया हुआ एक उदाहरण तुम्हें सुनाता हू।

एक वार एक क्षत्रिय ने दूसरे क्षत्रिय को जान से मार डाला। मृत क्षत्रिय की पत्नी उस समय गर्भवती थी। वह क्षत्रिय-पत्नी विचार करने लगी—मेरे पति मे थोडी बहुत कायरता थी, तभी तो उनकी अकालमृत्यु हुई। वे वीर होते तो अकाल मे मृत्यु न होती। क्षत्रियपत्नी की इस वीर-भावना का प्रभाव उसके गर्भस्थ पुत्र पर पड़ा। आगे चलकर वह पुत्र वीर क्षत्रिय बना।

माता अपने बालक को जैसा चाहे वैसा बना सकती है। माता चाहे तो अपने पुत्र को वीर भी बना सकती है और चाहे तो कायर भी बना सकती है। साधारणतया सिंह का बालक सिंह ही बन सकता है और सूअर का बालक सूअर ही बनता है। उनमे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता परन्तु मनुष्य को इच्छानुसार वीर या कायर बनाया जा सकता है।

क्षत्रियपत्नी ने अपने बालक को वीरोचित शिक्षा देकर वीर क्षत्रिय बनाया। क्षत्रियपुत्र वीर होने के कारण राजा का कृपापात्र बन गया।

एक दिन राजा ने क्षत्रियपुत्र की वीरता की परीक्षा लेने का विचार किया। राजा ने सोचा—शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए क्षत्रियपुत्र को भेजने से एक पथ दो काज होंगे। एक तो शत्रु वश मे आ जायगा, दूसरे क्षत्रियपुत्र की वीरता की परीक्षा भी हो जायगी।

इस प्रकार विचार कर राजा ने क्षत्रियपुत्र को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए सेना के साथ भेज दिया। क्षत्रियपुत्र वीर था। वह तैयार होकर शत्रु को जीतने के लिए रवाना हुआ। उसने शत्रु की सेना को अपनी वीरता का परिचय दिया, परास्त किया और शत्रु राजा को जीवित ही कैद करके राजा के सामने उपस्थित किया। राजा क्षत्रियपुत्र का पराक्रम देख बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उचित पुरस्कार देकर उसका सत्कार किया। सारे गाँव मे क्षत्रियपुत्र की वीरता की प्रशसा होने लगी। जनता ने भी उसका सन्मान किया। क्षत्रियपुत्र प्रसन्न होता हुआ अपने घर जाने के लिए निकला। रास्ते मे वह विचार करने लगा—आज मेरी माता मेरी पराक्रमगाथा सुनकर अवश्य प्रसन्न होगी। घर पहुचते ही वह सीधा माता को प्रणाम करने और उसका आशीर्वाद लेने गया। पर जब वह माता के पास पहुचा तो उसने देखा

माता रुष्ट है और पीठ देकर बैठी है। माता को रुष्ट और क्रुद्ध देखकर पुत्र विचार करने लगा—मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध बन गया है कि माता रुष्ट और क्रुद्ध हुई है ?

आजकल का पुत्र होता तो माता को मनचाहा सुना देता। परन्तु उस क्षत्रियपुत्र को तो पहले से ही वीरोचित शिक्षा दी गई थी की—

मातृदेवो। पितृदेवो। आचार्यदेवो भव।

अर्थात्—माता देवतुल्य है, पिता देवतुल्य है और आचार्य देवतुल्य है। अतएव माता, पिता और आचार्य की आज्ञा की अवज्ञा नही करनी चाहिए।

यह सुशिक्षा मिलने के कारण क्षत्रियपुत्र ने नम्रतापूर्वक माता से कहा—माँ, मुझ से ऐसा क्या अपराध बन गया है कि आप मुझ पर इतनी क्रुद्ध हैं ? मेरा अपराध मुझे बताइए, जिससे मैं उसके लिए आपसे क्षमायाचना कर सकूं ?

माता बोली—जिसका पितृहन्ता शत्रु मौजूद है उसने यदि दूसरे शत्रु को जीता भी तो क्या हुआ ?

क्षत्रियपुत्र ने चकित होकर पूछा—क्या मेरे पिता का घात करने वाला शत्रु अभी तक जीवित है ?

माता—हाँ, वह अभी तक जीवित है ?

क्षत्रियपुत्र—ऐसा है तो अभी तक मुझे बताया क्यों नही ?

माता—मैं तुम्हारे पराक्रम की जाँच कर रही थी। अब मुझे विश्वास हो गया कि तू वीरपुत्र है। जब तू दूसरे शत्रु को परास्त कर चुका है तब अपने पिता का घात करने वाले शत्रु को भी अवश्य परास्त कर सकेगा। तेरा सामर्थ्य देखे बिना शत्रु के साथ भिड जाने की बात मैं कैसे कहती ?

क्षत्रियपुत्र माता का कथन सुन और उत्तेजित हो कहने लगा—माताजी ! मैं अभी शत्रु को पराजित करने जाता हूं।

अपने पिता के वैर का बदला लिये बिना मैं हर्गिज नहीं लौटूंगा। इतना कहकर वह चल दिया।

दूसरी ओर क्षत्रियपुत्र के पिता की हत्या करने वाले क्षत्रिय ने सुना—जिसे मैंने मार डाला था, उसका वीर क्षत्रियपुत्र क्रुद्ध होकर अपने पिता का वैर भंजाने के लिए, मेरे साथ लड़ाई करने आ रहा है। यह सुनकर उस क्षत्रिय ने विचार किया—वह वीर बड़ा वीर है और उसके शरण में चला जाना ही हितकर है। इसी मे मेरा कल्याण है। इस तरह विचार करके वह क्षत्रिय-पुत्र के सामने गया और उसके अधीन हो गया। क्षत्रियपुत्र उस पितृ-घातक शत्रु को लेकर अपनी माता के पास आया। उसने माता से कहा—इसी क्षत्रिय ने मेरे पिता की हत्या की है। इसे पकड कर तुम्हारे पास ले आया हूँ। अब जो तुम कहो वही दंड इसको दिया जाय।

माता ने अपने पुत्र से कहा—इसी से पूछ देख कि इसके अपराध का इसे क्या दंड मिलना चाहिए?

पुत्र ने शत्रु से पूछा—बोलो अपने पिता के वैर का तुमसे किस प्रकार बदला लिया जाय?

शत्रु ने उत्तर दिया—तुम अपने पिता के वैर का बदला, उसी प्रकार लो, जिस प्रकार शरण मे आये हुए मनुष्य से लिया जाता है।

क्षत्रियपुत्र की माता सच्ची क्षत्रियाणी थी। उसका हृदय तुच्छ नही, विशाल था। माता ने पुत्र से कहा—बेटा, अब इसे शत्रु नहीं, भाई समझ।

जब वह शरण में आ गया है तो शरणागत से बदला लेना सर्वथा अनुचित है। शरण में आया हुआ कितना ही बड़ा अपराधी क्यों न हो, फिर भी भाई के समान ही है। अतएव यह तेरा शत्रु नहीं, भाई के समान ही है। मैं अभी भोजन बनाती हूँ।

तुम दोनो भाई साथ बैठकर आनन्दपूर्वक जीमो। तुम सगे भाइयों की तरह साथ-साथ जीमो और प्रेमपूर्वक रहो। मैं यही देखना चाहती हूं।

माता का कथन सुनकर पुत्र ने कहा—माताजी! तुम पितृघातक शत्रु को भी भाई बनाने को कहती हो, सो ठीक है, परन्तु मेरे हृदय में जो क्रोधाग्नि जल रही है, उसे मैं किस प्रकार शान्त करू ?

माता ने उत्तर दिया—पुत्र! किसी मनुष्य पर क्रोध उतार कर क्रोध शान्त करने मे कोई वीरता नहीं है। क्रोध पर ही क्रोध उतार कर क्रोध शान्त करना अथवा क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची वीरता है। भगवान महावीर ने तो कहा है—'उवसमेण हणे कोहं' अर्थात् उपशम-शान्ति से क्रोध को जीतना चाहिये। इसी प्रकार बौद्धशास्त्र मे कहा है—

न हि वेरेण वेराणि समन्तीध कुदाचन।
अवेरेण वेराणि एस धम्मो सनन्तनो॥

अर्थात्—इस ससार मे वैर से वैर कदापि शान्त नही होता। अवैर-प्रेम से ही वैर शान्त होता है। प्रेम से वैर शान्त करना ही सनातन धर्म है।

असली खूबी तो शान्ति-क्षमा से क्रोध को शान्त करने मे ही है। क्रोध भयकर शत्रु है। इस शत्रु को क्षमा से जीतना ही सच्ची वीरता है। नमीराज ने भी इन्द्र से कहा था।

जो सहस्स सहस्साण सगामे दुज्जए जिणे।
एग जिणेज्ज अप्पाण एस सो परमो जयो॥

—उत्तराध्ययन, ९

तात्पर्य यह है कि जो पुरुष क्रोध को अक्रोध से जीतता है वही सच्चा वीर है। इसी प्रकार जो कषाय पर विजय प्राप्त करता है वही सच्चा वीर है। कषायों पर विजय प्राप्त करने में

ही वीरता है।

माता का आदेश पाकर पुत्र ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पितृहन्ता शत्रु को गले लगाया। दोनो ने सगे भाइयो की तरह साथ-साथ भोजन किया।

कहने का आशय यह है कि जो स्थान कषाय उत्पन्न करने का है, वही स्थान कषाय जीतने का भी है। वे वास्तव मे वीर पुरुष हैं जो अपने शत्रुओ को भी मित्र बना लेते हैं। सच्ची वीरता तो इसी मे है कि क्रोध को अक्रोध-शान्ति-क्षमा से जीता जाय और पशुओ को भी मित्र बना लिया जाय। शत्रुता जब ममता के रूप मे परिणत हो जाती होगी तब कैसा अनिर्वचनीय आनन्द आता होगा।

यह तो शास्त्र की बात हुई। इतिहास मे भी ऐसे उल्लेख देखने-जानने को मिलते हैं। उदयपुर के पृथ्वीराज जी और उनके काका सूरजमल्ल जी दिन भर एक दूसरे के साथ युद्ध करते थे और शाम के समय दोनो एक साथ बैठकर भोजन करते थे और फिर युद्ध मे लगे हुए एक दूसरे के घावों पर पट्टी बाँधते थे। परन्तु आजकल तो लोगो के मन इतने अधिक सकुचित तथा मलीन हो गये हैं कि साधारण-सी बात मे भी क्लेश करने लगते हैं।

कषाय को जीतने का सरल मार्ग यह है कि वैरी को भी अपना हितैषी समझ लिया जाय। शत्रु भी मित्र की भाँति हमारा उपकार करता है, ऐसा समझकर उसके प्रति सद्भाव प्रकट करने चाहिए। पैर मे चुभे हुए काटे को निकालने के लिये सुई चुभोनी पडती है या डाक्टर आपरेशन करता है तो क्या उन पर नाराजगी प्रकट करना चाहिये ? नही। लोग यही मानते है कि डाक्टर हमारा हित करता है। जिस प्रकार डाक्टर पीडा पहुचाने पर भी हितैषी माना जाता है उसी प्रकार तुम्हारा वैरी भी तुम्हारा हित करता है। ऐसा मानो और उसके प्रति वैरभाव न रखो तो तुम

अवश्य ही कषाय को जीत सकोगे । कषाय को जीतने से आत्म-कल्याण होगा ।

२१ : ईमानदार श्रावक

एक गरीब श्रावक था । उसने सोचा—मेरी नियत साफ है, फिर भी मुझे कोई उधार नहीं देता । ऐसी दशा में काम चलाने के लिये कोई उपाय करना चाहिये । पड़ोस में रहने वाला सेठ धार्मिक है । जब वह सामायिक मे बैठे तो गले में पहना हुआ उनका कण्ठा क्यो न उतार लिया जाय ? ऐसा विचार कर वह श्रावक, सामायिक मे बैठे हुए सेठजी के पास गया । बोला— सेठ जी ! आपने सामायिक की ही है । संसार की समस्त वस्तुओ से सामायिक श्रेष्ठ है । अतएव आप अपनी सामायिक में स्थिर रहें— विचलित न हों । इतना कहकर श्रावक ने सेठ के गले मे से कंठा निकाल लिया । सेठ सामायिक मे स्थिर बैठे रहे । वह न कुछ भी बोले और न उन्होंने अपना चित्त ही चचल होने दिया ।

सामायिक पालकर सेठ घर पहुचा । मुनीम आदि ने पूछा—आज आपके गले मे कंठा क्यों नजर नहीं आता ? सेठ ने सोचा—सच कह दूंगा तो लोग गरीब श्रावक को हैरान करेंगे और उसने कह दिया—पड गया होगा कहीं । तुम कंठा की इतनी ज्यादा चिन्ता क्यो करते हो ? इस विषय में किसी को कुछ भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं । जब यह शरीर ही मेरा नही तो कंठा मेरा कैसे हो सकता है !

कंठा ले जाने वाले श्रावक की नीयत साफ थी। जब उसका काम निकल गया तो वह श्रावक कंठा वापिस ले आया। सेठ ने कहा—कंठा मेरा नही है। जब यह शरीर ही मेरा नहीं तो कण्ठा मेरा कैसे हो सकता है? उस श्रावक ने कहा—कंठा तुम्हारा नही तो मेरा भी नही है। मैं इसे अपने पास कैसे रख सकता हूँ? इतना कहकर श्रावक ने सेठ के सामने कण्ठा रख दिया और वह चलता बना।

३२ : दोष-स्वीकृति

वैर भूलकर किस प्रकार अपने अपराध की आलोचना करनी चाहिये, यह जानने के लिये एक उदाहरण लीजिये।

भारत के प्राचीन राजाओ में राजा भोज बहुत प्रसिद्ध है। बहुत कम भारतवासी ऐसे मिलेंगे जो भोज के नाम से अपरिचित हों। राजा भोज के समय मे अनेक अच्छी बातें होती थीं। भोज स्वयं अच्छे कामो मे भाग लेता था और किसी को दुःख नहीं देता था। भोजराज की मृत्यु होने पर एक विद्वान ने कहा है—

अद्य धारा निराधारा, निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिता. खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवंगते॥

अर्थात्—आज भोजराज का स्वर्गवास होने पर धारा-नगरी निराधारा हो गई, सरस्वती का सहारा न रहा और सब पण्डित खण्डित हो गये।

इस कथन से स्पष्ट है कि राजा भोज अपनी प्रजा का प्रेमी

से पालन करता था और विद्या का बड़ा ही अनुरागी था। वह विद्वानों का खूब आदर-सत्कार करता था। भोज स्वयं विद्वान था अतः विद्या और विद्वानों की कद्र करना उसके लिये स्वाभाविक बात थी। राजा भोज दयालु और गुणवान् था।

भोज के राज्य मे एक गरीब ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण निर्धन होने पर भी स्वमान का धनी था। जो कुछ मिलता उसी से वह अपना निर्वाह कर लेता था। सचय के उद्देश्य से वह कभी किसी से कुछ न मागता और न अपना अपमान कराता। वह भिक्षा पर अपना निर्वाह कर लेता था। 'ब्राह्मण को धन केवल भिच्छा।' उसके घर मे तीन प्राणी थे—वह, उसकी माता और पत्नी। पर्याप्त भिक्षा न मिलने पर कभी उन्हे भूखा रहना पडता था।

एक दिन की बात है कि ब्राह्मण बहुत घूमा परन्तु उसे भिक्षा न मिली। घूमते-घूमते वह थक गया और भूख उसे सता रही थी। अन्त में उसने विचार किया—सभव है स्त्री ने कुछ बचा रखा हो तो इस समय तो वह खिलाएगी ही। फिर देखा जायगा। इस प्रकार विचार कर घर लौट आया। उसकी माता और पत्नी उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं और सोच रही थीं वह कुछ लावें, तो बनायें, खायें और खिलायें। मगर ब्राह्मण को खाली हाथ आया देखा तो बडी निराशा हुई। वह ब्राह्मण से कुछ भी नही बोली। उसने अपनी पत्नी से कहा—लाओ, कुछ हो तो खाने को दो।

पत्नी—कुछ लाए हो तो बना दू। घर में तो कुछ भी नही है।

ब्राह्मण—रोज लाता हूँ। आज नहीं मिला तो स्त्री होकर एक दिन का भोजन भी नही दे सकती ?

ब्राह्मण बहुत भूखा था। उसे क्रोध आ गया। उधर ब्राह्मणी भी लाल हो गई। ब्राह्मणी ने कहा—कभी एक दिन से ज्यादा का भोजन लाए हो तो मुझ से कहो कि सभाल कर क्यो रखा ?

लाकर देना नहीं और फिर ऊपर से मांगना तथा तकरार करना यह भी भला कोई बात है। अगर खिलाने की हिम्मत नहीं थी तो विवाह किये बिना ही कौन सा काम अटकता था।

ब्राह्मण तपा हुआ आया था। उसने क्रोध से तमतमाते हुये कहा—शंखिनी ! मेरे घर तेरी जैसी स्त्री आई तो अब खाने को कैसे मिल सकता है ? कोई सुलक्षणा स्त्री आती तो मैं कमा लाता। मगर तू ऐसी अभागिनी मिली है कि मैं भटकते-भटकते हैरान हो गया पर चार दाने अन्न भी न मिल सका। तू अर्द्धाङ्गिनी है। तुझे भी कुछ तो करना चाहिये था। मिहनत मजूरी करके भी कुछ रखना चाहिये था। स्त्री को यह तो सोचना चाहिये था कि कदाचित् कोई अतिथि आ जाय तो कैसी बीतेगी।

ब्राह्मणी और गरम हो गई। वह कहने लगी—बस बहुत हो गया। अब जीभ बद कर लो। धिक्कार है उन सासू जी को, जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया है। मैं अभागिनी ही सही, तुम्हारी माता तो भाग्यशालिनी हैं। उनके भाग्य से ही कुछ मिला होता। दरअसल अभागिन मैं नही तुम्हारी माता हैं, जिन्होंने तुम सरीखा सपूत पैदा किया जिसके पीछे मैं भी कष्ट पा रही हू।

ब्राह्मण ने कहा—तेरे मां-बाप ने तुझे तो खूब पैदा किया है, जो अपनी सासू के लिये ऐसे शब्द बोलती है ! निर्लज्जा को लज्जा छू भी नहीं गई !

यह कहकर ब्राह्मण अपनी पत्नी को पीटने लगा। ब्राह्मणी चिल्लाई–हाय, बचाओ, दौडो कोई ! उसके सिर से खून बहने लगा। स्त्री की पुकार सुनकर वहाँ पुलिस आ गई। पुलिस ने पूछताछ की। ब्राह्मणी कहने लगी—देखो मुझे इतना मारा है कि सिर से खून बहने लगा है। लड़ाई का कारण यही है कि घर में कुछ नहीं और खाने को मांगते हैं ! इस राज्य में ऐसे भी आदमी रहते हैं ! घर मे दाना नहीं और विवाह करके स्त्री को पकड़ लाते हैं

और उसकी मिट्टी पलीद करते हैं । उन्हीं से पूछ लो, लड़ाई का और कोई कारण हो तो ।

ब्राह्मण सोचने लगा—बुरा हुआ । मैंने वृथा ही क्रोध में आकर इसे मारा । इज्जत जाने का मौका आ गया ।

पुलिस ने कहा—इसमें स्त्री का कोई दोष नहीं । यह पुरुष का ही दोष है । ब्राह्मण ! तुमने स्त्री पर अत्याचार किया है । तुम गिरफ्तार किये जाते हो ।

ब्राह्मण गिरफ्तार होकर कोतवाल के पास पहुंचाया गया । ब्राह्मण सोचने लगा—क्रोध में आकर ब्राह्मणी को मार तो दिया, मगर अब कहूगा क्या ? पुलिस के सामने अपनी कष्टकथा कहने से लाभ ही क्या ? सिर्फ लज्जित होने के और क्या होगा ? चाहे जो हो, राजा के सिवाय और किसी को कुछ भी उत्तर न दूंगा ।

कोतवाल ने कहा—तुम अपना बयान लिखाओ । तुमने क्या किया है और किस अपराध में गिरफ्तार किये गये हो ।

ब्राह्मण बोला—मैं महाराज भोज को छोड़कर और किसी के सामने बयान न दूंगा । कोतवाल ने बहुत डांट-फटकार बतलाई, मगर ब्राह्मण टस से मस नहीं हुआ । उसने बयान नही दिया । कोतवाल ने सोचा ब्राह्मण बड़े जिद्दी होते हैं । इससे जिद्द न करके महाराज के सामने पेश कर देना ही ठीक होगा । उसने ब्राह्मण के कथनानुसार राजा के सामने ही ब्राह्मण को पेश करने का निश्चय किया ।

पहले जमाने मे आजकल की तरह मुकदमे की तारीखों पर तारीखें नहीं पड़ती थीं । मामला मौखिक सुनकर झटपट फैसला दे दिया जाता था । आजकल का न्याय बड़ा महगा और विचित्र है । उस समय का न्याय सस्ता और सीधा था ।

दूसरे दिन राजा भोज अपनी राज-सभा मे आये । सिंहासन

पर आसीन हुए। क्रम से सब अपराधी उनके सामने पेश किये गये। संयोगवश उस दिन पहला नंबर उस ब्राह्मण का ही था। राजा भोज ने ब्राह्मण के विषय में पूछा—यह कौन है ? इसने क्या अपराध किया है ? सरकारी आदमी ने कहा—यह ब्राह्मण है। इसने अपनी स्त्री को इतनी निर्दयता से पीटा है कि उसके सिर से खून आ गया। अगर स्त्री को दरबार में पेश किया जाता तो न जाने क्या-क्या कहती। परन्तु स्त्री को दरबार में लाने की आज्ञा नहीं है। इसलिये उसे पेश नहीं किया गया। वह कहती थी—यह ब्राह्मण कुछ लाकर तो देता नहीं है और खाने को मांगता है ! खाना न मिलने पर इसने स्त्री को बुरी तरह पीटा है।

राजा—ब्राह्मण ! क्या यह ठीक है ?

ब्राह्मण—महाराज ! और सब बात ठीक है, एक बात गलत है। यह मुझे ब्राह्मण बता रहे हैं। पर मैं ब्राह्मण नहीं, चाण्डाल हूँ।

कोतवाल—हुजुर ! यह आपके सामने ही झूठ बोलता है। यह ब्राह्मण है और अपने को चाण्डाल प्रकट करता है।

ब्राह्मण—महाराज ! यह लोग ऊपर की बातें देखकर मुझे ब्राह्मण कहते हैं। भीतर की बात का इन्हें पता नहीं। मैं असली भीतरी बात कह रहा हूँ।

> सत्य नास्ति तपो नास्ति नास्तीन्द्रियविनिग्रहः ।
> सर्वभूतदया नास्ति एतच्चाण्डाल-लक्षणम् ॥
> सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म, ब्रह्म इन्द्रियनिग्रहः ।
> सर्वभूतदया ब्रह्म, ह्येतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥

महाराज ! सत्य का अभाव, तप का अभाव, इन्द्रिय-निग्रह का अभाव और भूतदया का अभाव चाण्डाल का लक्षण है। जिसमें सत्य हो, तप हो, इन्द्रियनिग्रह हो, प्राणियों की दया हो वह ब्राह्मण कहलाता है।

जो ब्राह्मण होगा वह आपके सामने अभियुक्त बनकर नहीं आयगा। मुझ मे चाण्डाल के लक्षण मौजूद हैं, अतएव मैंने अपने आपको चाण्डाल प्रगट किया है।

मित्रो! आप दूसरो पर ही यह लक्षण घटाने का प्रयत्न मत करो। शास्त्र में श्रावक को भी ब्राह्मण कहा है। आप श्रावक होने का दावा करते हैं तो यह यह लक्षण अपने ही ऊपर घटाने का प्रयत्न करना।

ब्राह्मण ने कहा—जिसमे ब्राह्मण के ये लक्षण मौजूद हैं, वह ऊपर से चांडाल होने पर भी वास्तव में ब्राह्मण है। जिसमें चाडाल के ये लक्षण पाये जाते हैं, वह ऊपर से ब्राह्मण होने पर भीतर से चाडाल ही है।

ब्राह्मण की वात सुनकर राजा दग रह गया। उसने सोचा—यह ब्राह्मण कितना स्पष्टवक्ता और आत्मवली है! मगर राजा को इस मामले की जड़ देखनी थी। अत. राजा ने कहा—'तुम चाहे ब्राह्मण होओ, चाहे चाडाल होओ। जो अपराध करेगा, उसे दण्ड मिलेगा ही। अव यह वतलाओ कि तुमने अपनी स्त्री को क्यों मारा ?'

ब्राह्मण पढ़ा-लिखा था। उसने राजा से कहा—'राजन्! मेरी वात सुन लीजिए और फिर जिसका अपराव हो, उसे दण्ड दीजिए।'

राजा—हाँ, सुनाओ, क्या कहना चाहते हो ?

ब्राह्मण—

अम्वा तुष्यति न मया न तया, साऽपि नाम्वया न मया।
अहमपि न तया न तया, वद राजन्! कस्य दोषोऽयम्॥

महाराज! आप निर्णय कीजिए कि वास्तव मे अपराध किसका है? और जिसका अपराध सिद्ध हो, उसे दण्ड दीजिए। हम घर मे तीन प्राणी हैं—मैं, मेरी माता और मेरी पत्नी। पुत्र कैसा

भी हो, मगर माता का धर्म उससे प्रेम करना और उसकी रक्षा करना है। कहावत है—'पूत कपूत हो जाता है, मगर माता कुमाता नही होती।' मगर मेरी माता, मेरी रक्षा तो दूर रही, मीठे शब्द भी नही बोलती। कभी मुझे बेटा कह कर सम्बोधन भी नही करती, वरन् स्नेह के बदले गालियाँ देती है। किसी-किसी घर में माँ-बेटा मे स्नेह नहीं होता, तो सास-बहू में ही प्रेम होता है, मगर मेरे घर यह भी नही है। माँ, मेरी पत्नी को गालियाँ तो देती है, पर कभी मधुर वचन नही कहती। यह सुनकर आप सोचेंगे कि यह माता का अपराध है, मगर बात यही खत्म नही होती। अनेक स्त्रियाँ ऐसी होती हैं कि सास की जली-कटी बातें सह लेती हैं-शान्ति के साथ सुन लेती हैं लेकिन मेरी स्त्री, माता की आधी बात भी नही सुन सकती। वह एक के बदले चार सुनाती है। अपनी बातो से उसे शान्त तो करती नही, उल्टी जला देती है। कई जगह सास-बहू में प्रेम नहीं होता। मगर पति-पत्नी मे प्रेम होता है। लेकिन मेरे घर यह भी नहीं है। मुझमे और मेरी पत्नी में कितना प्रेम है, यह बात तो इसी मामले से जानी जा सकती है। अनेक माताए कैकेयी के समान होती हैं, मगर उनके पुत्र रामचन्द्र सरीखे होते हैं। मगर मैं ऐसा अभागा हूँ कि अपनी माता को जननी तक नही कहता। सदा अवज्ञा ही करता रहता हूँ। अपशब्दो की कभी-कभी बौछार कर देता हूँ। राजन्! आप ही निर्णय कीजिए यह सब किसका अपराध है? जिसका अपराध हो, उसे दण्ड दीजिए।

राजा भोज बडा बुद्धिमान् था। उसने कहा—'मैं सब समझ गया।' और राजा ने भडारी को आज्ञा दी—'इस ब्राह्मण को एक हजार मुहरें दे दो।' राजा की आज्ञा सुनकर भडारी के आ-श्चर्य का ठिकाना न रहा। सोचने लगा—बात क्या हुई? ब्राह्मण ने अपराध किया है—अपनी स्त्री का खून बहाया है और महाराज

उसे-यह इनाम दे रहे हैं। अपराध की सजा एक हजार मुहर इनाम !

भंडारी की मुखमुद्रा पर विस्मय का जो भाव उदित हुआ, उसे पहचान कर राजा ने कहा—तुम्हें क्या शंका है ? क्यों आश्चर्य हो रहा है ? स्पष्ट कहो न !

भंडारी बोला—स्त्री को पीटने के बदले इस ब्राह्मण को एक हजार मुहर मिलने की बात नगर में फैल जायगी, तो बेचारी स्त्रियों पर घोर संकट आ पड़ेगा और राज्य का खजाना खाली होने का अवसर उपस्थित हो जायगा। सभी लोग अपनी-अपनी स्त्री को पीट कर इनाम लेने के लिए आ खड़े होंगे।

राजा ने कहा—भंडारी, बात तुम्हारी समझ में नहीं आई। जो आदमी खाता-पीता सुखी है, वह अपनी स्त्री को मारेगा, तो उसे दण्ड देने में जरा भी रियायत नहीं की जायगी, चाहे वह मेरा पुत्र ही क्यों न हो ! ऐसे अत्याचारी का पक्ष मैं कदापि नहीं लूंगा। मैं स्त्री को मारने के बदले इसे मुहर नहीं दिला रहा हूं, किन्तु इसे दूसरा दुःख है। उस दुःख को दूर करने के लिए ही मुहर दिलाता हूं। दण्ड और कानून, अन्याय और अत्याचार रोकने के लिए हैं, बढ़ाने के लिए नहीं। अगर इस ब्राह्मण को कैद कर लिया जाय तो इसकी इज्जत जायगी, यह निर्लज्ज बन जायगा और अपराध का जो मूल कारण है वह दूर नहीं होगा। अभी मां, बेटा और स्त्री लड़ते-झगड़ते भी एक साथ रहते हैं। इन्हें कारागार में डाल देने से सब तितर-बितर हो जाएंगे। अभी तक किसी ने किसी को त्यागा नहीं है, मगर कैद की हालत में एक दूसरे को छोड़ कर भाग जायेंगे। इसके अतिरिक्त, इसे सजा देने का अर्थ इसकी वृद्धा माता और गरीब पत्नी को सजा देना होगा। ऐसा करने से अनेक प्रकार की बुराइयां फैल जायेंगी।

भंडारी ! तुम इस ब्राह्मण की बुद्धि पर विचार करो। इसने कहीं बयान नहीं दिया और यहां आया है। यह जानता था

कि कानून के शब्दो को ही सभी कुछ समझ कर उन्हीं से चिपटे रहने वाले लोग मेरा दुःख नही मिटा सकते । वे न्याय की आत्मा को नही देख सकते । फिर उनके सामने दुखडा रोकर क्यो अपनी इज्जत गँवाऊँ ? असल में इसके अपराध का कारण दरिद्रता है । मैंने मुहरें देकर उस दरिद्रता को दडित किया है । मेरी समझ मे राजा का यही धर्म है । राजा को अपराध के मूल कारणो पर विचार करना चाहिए । रोग की ऊपरी औषध करना ही पर्याप्त नहीं है, मगर रोग के कारणों को दूर करना ही महत्वपूर्ण बात है ।

आजकल दरिद्रता का दुःख वेहद वढ गया है । बी० ए० और एम० ए० पास करने वालों को इस दुःख के मारे फाँसी खाकर मरना पडता है । उन्हें नोकरी नहीं मिलती और दूषित शिक्षापद्धति के कारण वह मिहनत-मजूरी करना मरने से भी अधिक कष्टकर समझते हैं ! भारत का राज्य अगरेजों के आधीन है । वह सात समुद्र पार बैठ कर शासन करते हैं । प्रजा के प्रति उन्हें अनुराग नहीं, आत्मीयता नहीं, सहानुभूति नहीं । प्रजा को कंगाल बनाने वाली नयी-नयी योजनायें और कानून गढे जाते हैं और बुरी तरह देश को चूसा जा रहा है ! किसी समय जो देश सब भाँति से समृद्ध था, धन-धान्य से परिपूर्ण था, आज उसकी इतनी गयी-गुजरी हालत हो गई है कि थोडे से पैसों के लिए माता अपने पुत्र को बेच देने के लिए उद्यत है ! दरिद्रता के इस घोर अभिशाप ने भारतवासियों का जीवन कितना हीन, दीन, जघन्य और कलुषित बना दिया है ! यह देख कर किसे मनस्ताप न होगा ! कहाँ हैं आज राजा भोज सरीखे प्रजावत्सल नृपति, जिन्हें प्रजा के कष्टों का सदा ध्यान रहता था और जो प्रजा की भलाई में ही अपने राज-पद की सार्थकता मानते थे ! प्राचीन काल के भारतीय राजा, प्रजा के सरक्षक थे । सम्पूर्ण राज्य एक बडा परिवार था और राजा उसका मुखिया था । इसी कारण भारतीय प्रजा राजा को अपने पिता के तुल्य मानती

थी। राजा और प्रजा में कितना मधुर सम्बन्ध था उस समय! आज यह सब भूतकाल का सपना बन गया है। प्रथम तो आजकल संसार से राजयत्र ही उठता जा रहा है और प्रजा अपने हाथों में शासनसूत्र ग्रहण करती जा रही है, जहाँ कहीं राजतन्त्र शेष है, वहाँ राजा और प्रजा मे भयंकर संघर्ष ही दिखाई देता है। इसका प्रधान कारण यही है कि राजा अपने उत्तरदायित्व से गिर गये। उन्होंने अपने को प्रजा का सेवक न समझ कर ईश्वर द्वारा नियुक्त स्वच्छन्द भोग का पुतला समझा। प्रजा को चूसना और विलास करना ही अपना ध्येय बना लिया। फल यह हुआ कि राजा और प्रजा विरोधी बन गये। जहाँ स्वार्थ-साधन करने की प्रवृत्ति होती है वहाँ संघर्ष अवश्यम्भावी है। यही राजा प्रजा के संघर्ष का कारण है। अर्वाचीन इतिहास स्पष्ट बतलाता है कि विजय प्रजा-पक्ष के भाग्य मे है। आखिर प्रजा की ही विजय होगी। इस सत्य को समझ कर राजा लोग समय रहते सावचेत हो जाएँ तो इसमे उन्हीं की भलाई है।

राजा भोज प्रजा-रंजन करने के कारण सच्चा राजा था। प्रजा के दुःख-दर्द को समझना और उसे दूर करना ही उसका मुख्य कर्त्तव्य था। यही उसका राजधर्म था। प्रजा उसे पुत्र के समान प्रिय थी, इसलिए वह पिता के समान प्रजा का आदरणीय था। उसने ब्राह्मण के कष्टों पर सहृदयता से विचार किया और उन्हें मिटा दिया।

भंडारी का भ्रम भंग हो गया। वह मन ही मन भोज की प्रशंसा करने लगा। उसने एक हजार मुहरें लाकर ब्राह्मण के सामने रख दीं।

राजा ने ब्राह्मण से कहा—जिसका अपराध था, उसे दण्ड दिया गया है। लेकिन इस कांड की पुनरावृत्ति हुई तो भारी दण्ड दिया जायगा।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज ! आपके उचित निर्णय की प्रशंसा करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। अब अपराध हो तो मेरे तन के टुकड़े-टुकड़े करवा दीजिएगा।

मुहरों की थैली लेकर ब्राह्मण अपने घर चला। घर में सास-बहू के बीच कलह मचा हुआ था। सास कहती थी—'तूने उससे ऐसा क्यों कहा ? उसकी बात सुन क्यों नहीं ली ?' बहू कहती थी—'उन्होंने मुझसे ऐसा कहा क्यों ?' बस, इन्हीं मूल सूत्रों पर भाष्य और टीकायें रची जा रही थीं।

उसी समय थैली लिए ब्राह्मण आता दिखाई दिया। उसे देख दोनों शान्त हो गईं। थैली देखकर उन्हें कुछ तसल्ली हुई। आज तक इतना नाज भी कभी घर में नहीं आया था। अतएव भीतर की मुहरें न दिखाई देने पर भी उनकी प्रसन्नता का पार नहीं था। ब्राह्मण जब निकट आ गया और थैली में गोल-गोल चीजें मालूम हुईं तो कहना ही क्या था ! उन्होंने सोचा—अगर इतने पैसे हों तब भी बहुत हैं।

दोनों की लड़ाई बन्द हो गई। उनकी विचारधारा बदल गई। सास बोली—'बेटे को वजन लग रहा होगा, मैं थैली ले लूँ।' बहू ने कहा—'तुम बूढ़ी हो, तुमसे क्या बनेगा ! लाओ मैं ही लिये लेती हूँ।' सास ने उत्तर दिया—'तुझे चोट लगी है न ! तुझ से कैसे बनेगा !' बहू मुस्किरा कर बोली—'इस मार में क्या रखा है ! पति की मार और घी की नाल बराबर होती है।'

आखिर दोनों थैली लेने दौड़ीं। सास कहती थी—बहू को चोट लगी है, इसे बोझ मत देना। बहू कहती थी—सास बूढ़ी है, इन्हें तकलीफ मत देना। ब्राह्मण ने कहा—तुम दोनों ही कष्ट मत करो। यह बोझ मेरे ही सिर रहने दो। अपने अपराध का भार मुझे ही उठाने दो।

थैली लिये ब्राह्मण घर पहुँचा। थैली खोली तो उसमें पीली-

पीली मुहरें देखकर सास-बहू दोनों चकित रह गईं। प्रसन्नता का पारावार न रहा। भूखे घर में अनाज के इतने दाने आते तो क्या कम थे। फिर यह तो मुहरें ठहरीं।

माँ कहने लगी—बेटा! मेरी जैसी कठोरहृदया माता नहीं और तुझ-सा सपूत बेटा नहीं। मैं सदा सापिनी ही रही। कभी तुझे शान्ति न पहुँचाई। माता का कर्त्तव्य बेटे पर करुणा रखना है, मगर मैंने कभी सीधी बात भी न की। तू धन्य है बेटा, जो मुझे छोड़ कर कहीं चला न गया, नहीं तो ऐसी कर्कशा माता का पालन करने के लिए कौन रहता है! अब तू मुझे क्षमा कर देना।

बहू ने कहा—यह सब मेरा ही कसूर था! मैं घर में आई तभी से सबको कष्ट में पड़ना पड़ा। मैंने पति और सास की सदैव अवज्ञा ही की थी! मेरी जैसी स्त्री जिस घर मे हो, वहाँ पाप न बढ़े तो क्या हो! सीता इतने-इतने कष्ट सहन करके भी पति के साथ रही। पर मुझ दुष्टा ने आप दोनों को कभी प्रिय वचन भी न कहा! इतने पर भी आप दोनो ने मुझे त्यागा नहीं, यह बड़ी कृपा की। अब आप मेरे सब अपराध भूल जाय।

ब्राह्मण बोला—माँ और प्रिये! तुम मुझे क्षमा करना। मेरा कर्त्तव्य तुम्हारा पालन करना था। सपूत बेटा माता की वृद्धावस्था में सेवा करता है और सच्चा पति अपनी पत्नी की सदैव रक्षा करता है। मैंने दोनों में से एक भी कर्त्तव्य नहीं पाला। मैं तुम्हें भरपेट भोजन भी तो न दे सका! जो पुरुष अपनी जननी और पत्नी का पेट भी नहीं भर सकता, वह धिक्कार का पात्र है। मैंने भोजन नहीं दिया, इतना ही नहीं, वरन् भोजन माँगा और उसके लिए झगड़ा भी किया। माता की सेवा करना दरकिनार, उससे कभी मीठे शब्द तक न कहे। मेरे इस व्यवहार के लिए तुम दोनों मुझे क्षमा करना।

इस प्रकार तीनों ने अपनी-अपनी आलोचना की। ब्राह्मण ने कहा—अब भूतकाल की बात भूल जाओ। हम लोग दरिद्रता से

पीड़ित थे, इसीलिये घड़ी भर पहले क्या थे और अब दरिद्रता दूर होते ही क्या हो गये ! गुण गाओ राजा भोज का, जिसने अपना यह दुःख जान लिया और मिटा दिया।

इस प्रकार ब्राह्मण का यह छोटा-सा कुटुम्ब शीघ्र ही सुधर गया। तीनों बड़े प्रेम से रहने लगे। दरिद्रता के साथ ही साथ कलह भी दूर हो गया।

ब्राह्मण अपना दुःख राजा के पास ले गया था। इसी प्रकार परमेश्वर के दरबार मे हम भी यह फरियाद लेकर उपस्थित होते हैं। लेकिन जिस प्रकार ब्राह्मण ने निखालिस हृदय से अपना अपराध स्वीकार किया था, उसी प्रकार हम लोगो को भी अपना अपराध स्वीकार करना चाहिए। अपने अपराध को दबाने की चेष्टा करने से ईश्वर भी कुछ नहीं कर सकेगा। अतएव कृत पापो के लिए पश्चात्ताप करो। परमात्मा के प्रति विनम्र भाव से क्षमाप्रार्थी बनो। आगे अपराध न करने का दृढ़ संकल्प करो। ऐसा करने से कल्याण होगा।

३३ : पोथी के बैंगन

लोग धर्म-धर्म चिल्लाते हैं, मगर धर्म के मर्म को अनुभव नहीं करते। पण्डित कहलाने वाले और अपने को ज्ञानी प्रसिद्ध करने वाले और श्रोताओं को आकृष्ट करने वाले शब्दो मे कथा बांचने वाले लोग भी उस कथा को—उसके आशय भूत धर्म को—अपने सुख के साथ नहीं जोड़ते हैं।

एक कथावाचक भट्टजी कथा बांचते थे। एक दिन उनकी

लडकी भी कथा सुनने चली गई। उस दिन कथा मे बैंगन का प्रसग चल पडा। कथावाचक ने कहा—बैंगन खाना बुरा है। उसमें बीज बहुत होते हैं और वह वायु करता है। कथावाचक ने बहुत विस्तार से यह बात कही। लडकी बैठी हुई यह सब सुन रही थी। उसने सोचा—पिताजी को यह बात शायद आज मालूम हुई है। अब तक तो इनका यह हाल रहा कि बैंगन के शाक के बिना रोटी नही खाते थे। वह कहा करते थे.—

नीली टोपी श्याम घटा, सब शाको में शाक भटा।

मगर आज उसकी इतनी निन्दा कर रहे हैं। इससे जानती हूं कि आज ही इन्हें बैंगन की बुराई मालूम हुई है। कहीं ऐसा न हो कि आज घर पर बैंगन का ही शाक बन जाय और पिताजी भर पेट भोजन भी न कर पाएं।

यह सोच कर लडकी कथा सुनना छोड कर घर आई और माता से बोली—'मां, आज काहे का शाक बनाया है?' मां ने कहा—'बिटिया, बैंगन तो है ही। साथ मे एक और बना लूंगी' माता की बात से लडकी को कुछ तसल्ली हुई। उसने पूछा—'अभी बैंगन बनाये तो नही है?' माता के नाही करने पर लडकी ने कहा—तो अब बैंगन मत बनाना। मैं अभी कथा सुनकर आई हू। पिताजी ने आज बैंगन की खूब निन्दा की है, उन्होंने सब कथा सुनने वालो को बैंगन नही खाने का उपदेश दिया है। सब ने उन की बात की सराहना की है। अब पिताजी भी बैंगन न खायेंगे। कोई दूसरी तरकारी बना लेना।'

लडकी की बात सुन कर मां ने बैंगन का शाक नहीं बनाया। कथाभट्ट कथा समाप्त कर घर आये। भोजन करने बैठे। थाली में और तरकारियां परोसी गई मगर, बैंगन नजर नहीं आये। बैंगन न देखकर भट्टजी ने पूछा—'क्यों! आज बैंगन की तरकारी नहीं बनी?'

ब्राह्मणी ने कहा—घर मे बैंगन तो थे, मगर जान बूझकर ही आज नहीं बनाये हैं।

भट्ट—ऐसा क्यो ?

ब्राह्मणी ने लडकी को बुलाकर कहा—अब इन्हें बता, तूने बैंगन का शाक क्यो नहीं बनाने दिया ?

लडकी बोली—पिताजी, आज आपने कथा मे बैंगन की बहुत निंदा की थी। आपने कहा था कि—बैंगन शारीरिक दृष्टि से भी हानिकारक है, आध्यात्मिक दृष्टि से भी बुरा है और ठाकुरजी को बैंगन का भोग भी नही चढ़ता। इसी से मैंने सोचा कि आप इतनी निंदा कर रहे हैं तो आप स्वय कैसे खायेंगे ?

भट्ट—मूर्ख लडकी ! तुझे इतना ज्ञान कहां कि—कथा के बैंगन अलग होते हैं और रसोई-घर के अलग होते हैं। कथा में जो बात आई थी सो कहनी पडी। ऐसा न कहें तो आजीविका कैसे चले ? अगर कथा के अनुसार ही चलने लगें तो जीना कठिन हो जायगा।

बाप की बात सुनकर लडकी के दिल का ठीक तरह समाधान तो नहीं हुआ, मगर वह कुछ बोल भी न सकी। उसने मन ही मन सोचा—इससे तो हम जैसी मूर्खा ही भली कि आजीविका के लिए ढोंग तो नही करतीं। हाथी के दांत दिखाने के अलग और खाने के अलग होते हैं।

इस प्रकार कथा में जो भट्टजी पण्डित रहे और अर्थ में वह लडकी पण्डित रही। जो केवल कथा में ही पण्डित हैं—अर्थ में पण्डित नहीं हैं, वे क्या तो अपना कल्याण करेंगे और क्या दूसरों की भलाई करेंगे। स्वय आचरण करने वाला ही अपने वचनों की छाप दूसरों पर डाल सकता है। जो खुद आचरण नहीं करता, उसका दूसरे पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड सकता।

भक्त कहते हैं—इस प्रकार की कथा बांचने वाले मानो रिश्वत

लेकर गवाह देने वाले है। वे चाहे मान प्रतिष्ठा के लोभ से या आजीविका के लोभ से गवाही दें, पर है वह रिश्वत लेकर गवाही देने के समान ही। ऐसे लोग सत्य-अर्थ को, परमार्थ को नहीं जानते।

३४ : झूठी साक्षी

दो मित्र व्यापार के निमित्त विदेश गये। दोनों ने धनोपार्जन के लिए यथाशक्य उद्योग किया। पर उनमे से एक को अच्छा लाभ हुआ और दूसरे को लाभ नहीं हुआ। जिसे लाभ नही हुआ था, उसने सोचा—उद्योग करते-करते थक गया, फिर भी कुछ लाभ नहीं हुआ। अब देश को लौट जाना ही श्रेयस्कर है। उसने अपना यह विचार अपने मित्र के सामने प्रकट किया। मित्र ने सोचा—मुझे यहां काफी आमद हुई है और व्यापार मे इतना उलझा हूं कि देश नही जा सकता। लेकिन कुछ रकम अपने मित्र के साथ क्यों न भेज दूं जिससे स्त्री को सन्तोष हो जाय। लेकिन यह रुपया कहां बांधे फिरेगा? यह सोचकर उसने एक लाल खरीदा और अपने मित्र को देकर कहा—भाई, जाते हो तो जाओ और यह लाल अपनी भाभी को दे देना। कह देना कि यह लाल कीमती है। इसे सम्भाल कर रक्खे। कुछ दिनों बाद व्यापार समेट कर मैं भी आ जाऊंगा। लाल पहुचने से तुम्हारी भाभी को सन्तोष होगा।

मित्र का दिया लाल लेकर दूसरा मित्र स्वदेश की ओर रवाना हुआ। रास्ते मे उसके मन मे बेईमानी आ गई। मनुष्य दुर्बलताओं का पुतला है। कब कौन-सी दुर्बलता उसे विवश कर देती है, कहा नहीं जा सकता। उसे विचार आया—लाल कीमती है और मित्र

ने अकेले मे ही मुझे दिया है। देते-लेते किसी ने देखा नही है—कोई गवाह-साख नही है। धन बेईमानी किये बिना आता नही, यह मैंने प्रयत्न करके देख लिया है। ईमानदारी स्वयं इतनी बेईमान है कि ईमानदार को भूखो मरना पडता है ऐसी मुँहजली ईमानदारी को क्या लेकर चाटूँ ? बेहतर यही है कि हाथ मे आये इस लाल को हजम कर लिया जाय। थोडासा झूठ बोलना पडेगा। कह दूँगा—मैंने लाल देदिया है।

लोग सोचते हैं—पाप केवल जीव हिंसा करने में ही है। झूठ-कपट मे कौन-सा महा-आरम्भ-समारम्भ करना पडता है! लाल के लिए ललचाने वाले उस व्यक्ति ने भी यही सोचा होगा। धनोपार्जन करने मे अधिक आरम्भ-समारम्भ करना पडेगा और थोडी-सी जीभ हिलाने में आरम्भ-समारम्भ के बिना ही धन मिल रहा है। फिर ऐसे सस्ते धर्म का पालन क्यो न किया जाय ? कौन पाप में पड कर—आरम्भ करके धन कमाने का झझट करे!

ऐसा ही कुछ सोच कर वह अपने घर पहुचा। उसने लाल अपने ही पास रख लिया, मित्र की स्त्री को नहीं दिया।

मित्र की पत्नी को लौट आने का समाचार मिला। उसने सोचा—वह तो अपने मित्र का कुशल-समाचार कहने आये नही, मगर मुझे जाकर पूछ आने में मे क्या हानि है ? वह पति के मित्र के घर पहुंची। पूछा—आप अकेले ही क्यो आ गये ? अपने मित्र को साथ नही लाए ?

उसने कहा—वह बडा लोभी है। उससे कमाई का लोभ छूटता ही नहीं है। खूब धन कमाया है, फिर भी नहीं आया।

स्त्री ने पूछा—खूब कमाया तो भेजा नहीं ?

वह—अजी, वह लोभी क्या भेजेगा। कुछ भी नही भेजा उसने।

मनुष्य जब पाप करता है तो उसे छिपाने के लिए कई पाप

करने पड़ते हैं। कहावत है—'जिसका पैर खिसक जाता है, वह लुढ़कता ही जाता है।'

स्त्री सन्तोष करके बैठ गई। उसने सोचा—कुछ नहीं दिया तो न सही, कुशल-पूर्वक तो हैं और कमाई कर रहे हैं तो आखिर ले कहा जायेंगे? अन्त मे तो घर यही है।

कुछ समय व्यतीत होने पर वह भी अपना धन्धा समेट घर लौटा। स्त्री ने कहा—सकुशल तो रहे? आप मुझे तो एकदम ही भूल गये! अपने मित्र के साथ कुछ भी न भेजा?

पति ने कहा—भूल कैसे गया? भूल जाता तो तुम्हारे लिए लाल क्यों भेजता?

पत्नी—कौन-सा लाल?

पति—क्यों, मित्र के साथ भेजा न था? तुम्हे मिला नहीं वह?

पत्नी—नहीं, लाल तो मुझे नहीं दिया। वह तो आपके समाचार कहने के लिए भी नही आये। मैं खुद उनके घर गई। कुशल-समाचार पूछे। उन्होंने यही कहा कि आपने उनके साथ कुछ भी नहीं भेजा।

पत्नी की बात सुनकर वह समझ गया कि मित्र के मन में बेईमानी आ गई। लाल उसी ने हजम कर लिया है। प्रातःकाल होते ही वह उसके घर गया। उसे आया देख पहले मित्र के चेहरे का रग उड़ गया लेकिन अपने को सम्भाल कर उसने पूछा—अच्छा आप आगये?

'जी हाँ' कह कर बैठ गया। कुशल वृत्तान्त के पश्चात् उसने पूछा—मैंने तुम्हें जो लाल दिया था, वह कहाँ है?

उसने कहा—वह तो आते ही मैंने तुम्हारी पत्नी को दे दिया।

दूसरे ने कहा—वह तो कहती है, मुझे दिया ही नहीं।

प्रथम मित्र—झूठी है। स्त्रियों का क्या भरोसा! न जाने

किसी को दे दिया होगा और मुझे चोर बनाती है !

इस प्रकार कह कर वह गरजने लगा—अपनी स्त्री को तो देखते नहीं और मुझे चोर, बेईमान बनाते हो ! ऐसा जानता तो मैं लाता ही क्यों ? खबरदार, जो मुझसे अब लाल के विषय में कभी कुछ पूछा ।

झूठा आदमी चिल्लाता बहुत है । उसका रंग-ढंग देखकर लाल वाले मित्र ने सोचा—यह लाल भी हजम कर गया और ऊपर से मेरी पत्नी को दुराचारिणी प्रकट करना चाहता है और मुझे धमकी दे रहा है ।

आखिर वह हाकिम के पास गया और सारा किस्सा सुनाया । हाकिम ने पूछा—तुमने किसके सामने लाल दिया था ? उसने कहा—मैंने केवल विश्वास पर ही दिया था । किसी को गवाह नही बनाया । उसकी इस स्पष्टोक्ति से हाकिम को उसके कथन पर विश्वास हो गया । हाकिम ने सान्त्वना देते हुए कहा मैं समझ गया हूं । तुम सच्चे हो । मैं तुम्हारा लाल दिलाने का प्रयत्न करूंगा । कदाचित् लाल न मिला तो तुम्हारी इज्जत अवश्य वापिस आयगी । तुम अपने घर जाओ ।

हाकिम ने उस लाल रख लेने वाले को बुलाकर कहा—तुम्हारे विषय मे अमुक व्यक्ति ने इस प्रकार की फरियाद की है । अपना भला चाहो तो लाल दे दो ।

उसने उत्तर दिया—आप मुझे व्यर्थ ही धमका रहे हैं । मैंने आते ही उसकी स्त्री को लाल सौंप दिया है । लाल दे देने के गवाह भी मेरे पास मौजूद हैं ।

हाकिम ने उसके गवाह बुलवाये । चार बनावटी गवाह थे । थोड़े से पैसो के लालच मे आकर झूठी साक्षी देने को तैयार हो गये थे । हाकिम के पूछने पर चारो ने गवाही दी कि हमारे सामने लाल दिया गया है । हम ईमान, धर्म और परमेश्वर की कसम

खाकर कहते हैं कि इसने हमारे सामने लाल दिया है। हाकिम ने चारों गवाहों को अलग-अलग करके कहा—लाल कितना बडा था, उसके आकार का एक-एक पत्थर उठा लाओ। अब झूठे गवाह चक्कर में पडे। उन्होने कभी लाल देखा नही था। उसकी बराबरी का पत्थर लाएँ तो कैसे? फिर सोचा—लाल कीमती चीज है तो कुछ तो बडा होगा ही। चारो यही सोचकर अलग-अलग आकार के बडे-बड़े पत्थर उठा लाए, जो एक दूसरे से काफी बडे-छोटे थे। हाकिम ने चारों पत्थर अपने पास रख लिए। फिर पूछा—इन चारों मे से लाल किस पत्थर के बराबर था? यह प्रश्न सुन कर उनकी अकल गुम होने लगी। चारों बुरी तरह चकराये।

आखिरकार हाकिम ने चारो गवाहो के कोडे लगाने की आज्ञा दी। थोडे से पैसो के लिए झूठ बोलना आसान था, मगर कोडे खाना मुश्किल हो गया। चारो ने गिडगिडा कर कहा—हुजूर, कोड़े क्यो लगवाते हैं? हम लोगों ने तो क्या, हमारे बाप ने भी कभी लाल नही देखा। हम तो इसके मुलाहिजे और कुछ लोभ-लालच मे फस कर गवाही देने आये हैं।

असत्य कितना बलहीन होता है! सत्य के सामने असत्य के पैर उखडते देर नहीं लगती। असत्य मे धैर्य नही, साहस नही, शक्ति नहीं।

झूठे गवाहो की कलई खुल गई। हाकिम ने पूछा—कहो सेठ, इतना बडा लाल तुमने उसकी स्त्री को दिया था? सेठ लज्जित था। लोकनिन्दा और राजदण्ड के भय से तथा शर्म से वह धरती मे गडा जा रहा था। वह बोलता क्या? उसके मुख से एक भी शब्द न निकला। हाकिम ने कहा—तुमने लाल भी चुराया और झूठे गवाह भी तैयार किये। तुम्हारे ऊपर दुहरे अपराध हैं। अब सच बताओ, लाल कहाँ है? नही तो गवाहो के बदले कोड़ो से तुम्हारी पूजा की जायगी।

मार के आगे भूत भागता है, यह लोकोक्ति है। सेठ ने फौरन लाल दे दिया।

लाल के गवाह झूठे थे और वह प्रकट हो गये। मगर धर्म के विषय मे झूठी गवाही देने वालों पर कौन प्रतिबन्ध लगाए?

जैसे लाल का आकार भिन्न-भिन्न बताया गया था, उसी प्रकार ईश्वर की शक्ल भी भिन्न-भिन्न प्रकार की बतलाई जाती है। एक कहता है—ईश्वर ऐसा है तो दूसरा कहता है—ऐसा नहीं वैसा है। इस प्रकार कहने वालो से पूछो—तुम दोनो ईश्वर की जो दो शक्लें बतला रहे हो, उनमें से ईश्वर वास्तव में किस शक्ल का है? तो वे क्या उत्तर देंगे? जैसे उन गवाहो ने लाल नहीं देखा था, उसी प्रकार ईश्वर की शक्लें बतलाने वालो ने कभी ईश्वर का अनुभव नहीं किया है। झूठे गवाहो ने जो बात बिना समझे-बूझे सीख ली थी और सीखी बात तोते की तरह कहदी थी, इसी प्रकार यह लोग भी बिना अनुभव किये ही सीखी-सिखाई बातें तोते की तरह उच्चारण कर देते हैं। उन्हें वास्तविक अनुभव नहीं है।

प्रश्न होता है—ऐसी अवस्था मे करना क्या चाहिए? इसका उत्तर यह है कि घबराने की आवश्यकता नहीं। अन्त में तो सत्य और शील ही विजयी होता है।

ईश्वर के विषय मे अगर सुदृढ़ विश्वास हो गया तो वह सभी जगह मिलेगा। विश्वास न हुआ तो कहीं न मिलेगा। ईश्वर के शरीर नहीं है, उसका कोई वर्ण नही है, वह केवल उज्ज्वल हृदय से किये गये अनुभव से ही जाना जा सकता है।

३५ : अक्षय तृष्णा

माया के पीछे भागने से तृष्णा कभी नहीं मिटती। इसके लिए एक उदाहरण लीजिए—

एक मनुष्य किसी सिद्ध महात्मा के पास पहुँचा। महात्मा ने कहा—'मनुष्य शरीर सुलभ नहीं है। धर्म का आचरण न किया तो शरीर किस काम का? आगत मनुष्य ने कहा—'महाराज! घर मे तो बाल-बच्चे हैं। उनका पालन-पोषण करना पडता है। ससार की स्थिति विषम से विषमतर होती जा रही है। सारे दिन दौड-धूप करने के बाद भर पेट खाना मिल पाता है। कहीं कुछ आजीविका का प्रबन्ध हो जाय—घर का काम चलने लगे तो धर्मध्यान करू।

महात्मा ने पूछा—'तुझे प्रतिदिन एक रुपया मिल जाय तब तो तू भगवान् का भजन किया करेगा?

आगत मनुष्य ने प्रसन्न होकर कहा—'ऐसा हो जाय तो कहना ही क्या है? फिर तो मैं ऐसा भजन करूँ कि ईश्वर और मैं एक-मेक हो जाऊँ।'

महात्मा ने उसका हाथ ले एक का अक उस पर लिख दिया। उसे किसी भी प्रकार प्रतिदिन एक रुपया मिल जाता था। एक रुपया रोज मे वह खाता-पीता और अपनी सन्तान का पालन-पोषण करता। मगर उससे अब पहले जितना भी भजन नहीं होता था।

एक दिन वह फिर उन्ही महात्मा से मिला। महात्मा ने उससे कहा—'आजकल तू क्या करता है अब भी भजन नहीं करता?' वह बोला—हा, महाराज, अच्छी याद दिलाई आपने। आपने एक रुपया रोज का प्रबन्ध कर दिया है, मगर आप ही सोच देखें कि एक रुपया रोज में खाने-पीने, कपडे-लत्ते, स्त्री के गहने आदि का

खर्च किस प्रकार निभ सकता है ?

महात्मा ने पूछा—फिर चाहता क्या है ?'

उसने कहा—'महाराज और कुछ नही, दस रुपया रोज मिल जाय तो खर्च बखूबी चल सकता है।'

महात्मा—'दस रुपया रोज मिलने पर तो भगवान् का भजन किया करेगा ? फिर गड़बड़ तो नही करेगा ?

उसने उत्तर दिया—'नही महाराज ! फिर काहे की गड़-बड़ ? इतने में तो मजे से काम चल जायगा।'

महात्मा ने उसके हाथ पर एक का जो अङ्क बना दिया था, उसके आगे एक शून्य और बढा दिया। अब उसे प्रतिदिन दस रुपये अर्थात् तीन सौ रुपया मासिक मिलने लगे। उसने अपना काम खूब बढ़ा लिया। कहीं कोई दुकान, कहीं कोई कारखाना चलने लगा। नतीजा यह हुआ कि उसे तनिक भी फुर्सत न मिलती। स्त्री कहने लगी—घर मे अच्छे दिन आये हैं तो मेरी भी कुछ सुध लोगे या नही ? स्त्री के ऐसे आग्रह से उसके लिए भी आभूषण बनने लगे। उसके रहन-सहन का पैमाना (Standard) भी ऊंचा हो गया। विवाह-सगाई भी ऊँची हैसियत के अनुसार ही होने लगी।

कुछ दिनों के पश्चात् फिर उसे महात्मा मिले। बोले—आज कल तुझे दस रुपया रोज मिलते हैं, अब क्या करता है ? अब भी तू भजन नहीं करता !

उसने उत्तर दिया—'दीनदयाल ! खूब स्मरण दिलाया। आपने मुझे दस रुपया रोज पाने की जो शक्ति दी है मैं उसका दुरुपयोग नही करता। आप हिसाब देख लीजिए, इतने से तो कुछ होता ही नहीं ! ससार में बैठे हैं। गृहस्थी का भार सिर पर है। इज्जत के माफिक ही सब काम करने पड़ते हैं।'

महात्मा बोले—'मैंने दस रुपये रोज प्रपच बढ़ाने के लिए

दिये थे या घटाने के लिए ?'

उसने कहा—'करुणानिधान ! गृहस्थी मे प्रपच के सिवाय और क्या चारा है ? प्रपच न करें तो काम कैसे चले ?'

महात्मा—'फिर तू क्या चाहता है ?'

वह बोला—'आपकी दया। आपकी दया हो जाय और कुछ आमदनी बढ जाय तो जीवन सफल हो।'

महात्मा ने उसके हाथ पर एक बिन्दु और बढा कर सौ रुपया रोज कर दिये। अब उसे प्रतिदिन सौ, महीने में तीन हजार और वर्ष भर मे छत्तीस हजार रुपये मिलने लगे। इतनी आमदनी होते ही उसका धन्धा और बढ गया। मोटर, बग्घी और तांगे दौडने लगे। पहले अवकाश मिलने की जो सम्भावना थी वह भी अब जाती रही। वह इतनी उलझनो में फस गया कि उसे महात्मा को मुंह दिखलाना भी कठिन हो गया।

आज के श्रीमन्त भी आत्मकल्याण मे कितना समय व्यतीत करते हैं ? वह समझते हैं मानों हमारी सृष्टि ही अलग है। गरीबों और अमीरो की दो भिन्न-भिन्न सृष्टियां हैं !

३६ : माया

आत्मा मे ईश्वर का प्रकाश तो मौजूद है, लेकिन थोड़ी भूल हो रही है। भूल यही कि जिस ओर मुंह करना चाहिए, उस ओर मुंह न करके विपरीत दिशा में कर रक्खा है।

सूर्य पूर्व दिशा मे उदित हुआ है। एक व्यक्ति पश्चिम की ओर मुंह करके खड़ा है। उसकी परछाई पश्चिम मे पड़ रही है।

अपनी परछाई देखकर वह व्यक्ति उसे पकडने दौडता है । ज्यो-ज्यों वह आगे बढ़ता है, परछाई भी आगे बढ़ती है । वह खीजकर परछाई पकडने दौडता है तो परछाई भी उसी तेजी के साथ आगे-आगे दौडती जाती है। किसी तरह भी परछाई हाथ नही आती ।

इस व्यक्ति की परेशानी किसी ज्ञानी ने देखी । उसने दयालुता से प्रेरित होकर कहा—'भाई, तू करता क्या है ? क्यो इस प्रकार भाग रहा है ?'

भागने वाला बोला—'मैं अपनी छाया पकडने के लिए दौड रहा हू, मगर वह हाथ नही आती । मैं जितना दौडता हूँ, छाया भी उतनी ही दौड लगा देती है ।

ज्ञानी ने कहा—'छाया को पकडने का उपाय यह नहीं है। तू पूर्व की ओर मुंह करके आगे बढ । तेरी छाया भी-तेरे पीछे-पीछे हो लेगी । तू अपना मुंह बदल लेगा तो तुझे छाया के पीछे भागने की आवश्यकता नहीं रहेगी, बल्कि छाया तेरे पीछे भागेगी ।'

भागने वाले ने अपना मुंह फेरा और पूर्व की ओर भागने लगा परछाई भी उसके पीछे-पीछे भागने लगी । इस प्रकार पहले वह छाया के पीछे दौड कर परेशान हो रहा था, फिर भी छाया हाथ नहीं आती थी, अब छाया ही उसके पीछे दौडने लगी ।

अगर तुम आत्मा और परमात्मा की ओर दृष्टि न लगा कर माया के पीछे दौडकर उसे पकड़ना चाहोगे तो माया तुम से दूर रहेगी । माया के दूर रहने का अर्थ यह है कि तृष्णा कभी नहीं मिटेगी । परन्तु आत्मा एव परमात्मा पर दृष्टि दोगे तो माया तुम्हारे पीछे उसी प्रकार दौडेगी, जिस प्रकार सूर्य की ओर दौड़ने से परछाई पीछे-पीछे दौडती है ।

३७ : पुराय का प्रताप

एक सेठ थे। गाड़ी, वाडी और लाडी (पत्नी) ही उन्हें प्यारी लगती थी। मतलब यह कि वह सासारिक कामो में ही रचा-पचा रहता था। धर्म की ओर उसकी रुचि नही थी।

सेठ ने एक बछेरा पाला। बछेरा बहुत खूबसूरत और चपल था। सेठ उसे बहुत प्यार करता था। खूब खिलाने-पिलाने और सार-सभाल करने के कारण वह अच्छा तगडा हो गया। धीरे-धीरे वह सवारी करने के योग्य हुआ।

एक दिन सेठ पहले-पहले सवारी करने के लिए उसे गाव से बाहर ले गया। सेठ उस पर सवार हुआ। सवार होते ही सेठ की आशा पर पानी फिर गया। सेठ उसे पूरब की ओर ले जाना चाहता तो वह पश्चिम की तरफ चलता। चलते-चलते अड भी जाता। उसने सेठ की इच्छा के अनुकूल काम नहीं किया, बल्कि इच्छा के प्रतिकूल किया, सेठ ने उसे खूब पुचकारा, खूब थपथपाया-प्यार किया, मगर उसने अपनी चाल नही छोडी।

दोपहर का समय हो गया। सेठ को भूख लग आई। वह थक गया और परेशान हो उठा। गहरी चिन्ता के साथ वह सोचने लगा—इसे मैंने अपने लडके के समान पाला और समय आने पर धोखा दे गया! इस पर सवारी करके नगर मे जाऊँगा और कही अड जायगा तो लोग खिल्ली उडाएँगे। इस तरह सोचता-विचारता वह पास के एक पेड की छाया मे विश्राम करने के लिए बैठ गया। पास में बछेरा बाँध दिया और मन ही मन हिसाब लगाने लगा कि अब तक इस पर इतना खर्च किया और वह सब वृथा हो गया!

सेठ इस प्रकार पछता ही रहा था कि उसी समय उधर से एक मुनि निकले। मुनि आहार-पानी लेकर जगल की ओर जा रहे थे। वे भी वृक्ष की छाया मे थोडी देर विश्राम लेने वहीं जा पहुचे।

मुनि ने सेठ को देखकर सोचा—यह किसी गहरी चिन्ता में डूबा है। पेड भी शीतल छाया देकर दूसरो का दुख दूर करता है तो मुझे भी इसकी चिन्ता दूर करने का उपाय करना चाहिए। इस तरह सोचकर मुनि ने सेठ से पूछा—'किस बात की चिन्ता में पडे हो ?'

सेठ ने मुनि के इस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया। वह बोला नही और चिन्ता मे ही डूबा रहा।

मुनि ने अपना प्रश्न फिर दोहराया। तब उसने कहा—'आप पूछकर करेंगे क्या ? आपके सामने अपना दुखड़ा रोने से लाभ क्या होगा ?'

मुनि—'अगर मुझसे कहने से कुछ लाभ न होगा तो इस तरह चिन्ता करने से भी कुछ न होगा।'

मुनि के कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि सेठ उनकी ओर आकर्षित हुआ। उसने कहा—'मेरी भूल हो गई। जानता हूँ, आप मे बडी करामात है। मैं अपना दुख आपसे नही कहूँगा तो किससे कहूँगा ? महाराज ! यह जो घोडा बँधा है, इसने मेरा बहुत माल खाया है। देखिए न, कितना तगडा हो रहा है ! मगर यह इतना दुष्ट है कि मेरी इच्छा के अनुसार नही चलता है। मेरा अनुमान है कि बहुत सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट होने के कारण इसे किसी की नजर लग गई है या किसी ने जादू-टोना कर दिया है। आप मुझ पर दया करें और झाड फूंक दें तो बडा उपकार होगा।'

सेठ की बात सुन कर मुनि स्वय सिर पर हाथ रखकर चिन्तित हुए। तब सेठ ने पूछा—'मेरी बात सुनकर इतने उदास

क्यों हो गये ?'

मुनि—'तू घोड़े की चिन्ता कर रहा है और मैं तेरी चिन्ता कर रहा हूँ। जिस तरह घोड़े ने तेरा खाकर नहीं बजाया, उसी प्रकार तू ने मेरा खाकर नहीं बजाया।

सेठ—'अनोखी बात है ! मेरा और आपका क्या लेन-देन ? मैंने आपसे कब क्या लिया है, जो नहीं बजाया ?

मुनि—सुनो, हिसाब बतलाता हू। पहले यह बताओ, तुम्हें जन्म किसने दिया ?

सेठ—मेरे माँ-बाप ने।

मुनि—तुम कितने भाई थे ?

सेठ—पाँच।

मुनि—बाकी चार कहाँ हैं ?

सेठ—वे छोटी उम्र मे ही मर गये।

मुनि—क्या उन चार भाइयो के माँ-बाप नहीं थे ? या उन्हें माँ-बाप ने मारना चाहा था ? फिर भी तुम जीते रहे और वे मर गये ! इसका कारण क्या है ?

सेठ—वे पुण्य लेकर नहीं आये थे इस कारण मर गये।

मुनि—तुम पढ़े-लिखे हो ?

सेठ—हाँ।

मुनि—तुम्हारे साथ और लोग भी पढते होंगे ?

सेठ—हाँ।

मुनि—तो वे सब तुम्हारे बराबर ही पढे हैं ?

सेठ—नहीं, उनमे से कई तो मूर्ख ही रह गये।

मुनि—ऐसा क्यों !

सेठ—वे पुण्य लेकर नहीं आये थे।

मुनि ने इसी तरह स्त्री, धन,दौलत आदि के सम्बन्ध मे भी प्रश्न किये। अन्त मे कहा—यह सब वैभव तुम्हें पुण्य से मिला है।

यह बात तुम स्वयं स्वीकार करते हो। मगर यह बताओ कि जिस पुण्य से तुमने मनुष्य शरीर पाया, उम्र लम्बी पाई, विद्या पाई, धन-सम्पदा पाई और कुटुम्ब पाया, वह पुण्य तुमने कहाँ से पाया ? हम साधुओं से ही तो तुमने पुण्य पाया होगा ! फिर आज तुम हमें देखते ही प्रसन्न नहीं होते हो। क्या यह खाकर बिगड़ना नहीं है ? घोड़े को तुमने मोटा-ताजा बनाया और हमने तुम्हें मोटा-ताजा बनाया है। तुम घोड़े से जैसी आशा रखते थे, हम भी तुमसे वैसी ही आशा रखते थे। हमें भी क्या मालूम था कि तुम पूर्व के बदले पश्चिम की तरफ जाओगे ? आज तुम दुनियादारी के कामों में दौड़ते हो और धर्म के कार्यों में रुकते हो—अड़ते हो। तुम्हारी यह दशा क्या घोड़े के समान नहीं है ?

मुनि की बात सेठ की समझ में आ गई। वह प्रसन्न होकर बोला—आपने ठीक कहा है। मैं घोड़े के लिए रोता था, मगर अपना विचार ही नहीं करता था ! जिस धर्म के प्रताप से मैं सम्पन्न बना हुआ हूँ, उस धर्म को मैंने कब माना ? मैंने किस दुखिया के दुख दूर किये ? सचमुच, पहले के पुण्य को मैं नरक का सामान बना रहा हूं। इसे पाकर मैंने तनिक भी सुकृत नहीं किया ! न सद्-गुरु की संगति की, न परमात्मा की वाणी सुनी। मैं तो इस घोड़े से भी गया-बीता हूँ !

अपनी असली हालत का विचार कर सेठ की आंखों में पश्चात्ताप के आँसू आ गये। वह मुनि के चरणों में गिर पड़ा। बोला—दयामय ! आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा ! आपने घोड़े के साथ ही मेरी नजर झाड़ दी। यह घोड़ा बुरा नहीं, भला है जो अड़ गया और आप मिल गये। यह अड़ा न होता तो मैं आपके सामने भी न देखता। अब कृपा कर मुझे धर्म का मार्ग बतलाइए।

मुनि ने कहा—बस, 'दया' इन दो अक्षरों में ही धर्म है। तुम्हारे दिल में दया का वास हो गया तो फिर किसी पाप का

की ओर तुम्हारी प्रवृत्ति ही नहीं होगी। इसलिए हृदय में दया को बसा लो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

इतना कहकर मुनि रवाना हो गये। अब की बार सेठ घोड़े पर सवार हुआ तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि घोड़ा बिना अड़े, सीधी और सरपट चाल चल रहा है!

३८ : खरा-खोटा

देहली जैसे किसी शहर में एक प्रतिष्ठित जौहरी रहता था। यद्यपि वह होशियार था, मगर कभी-कभी होशियार भी चूक जाते हैं। मनुष्यमात्र भूल का पात्र है। इस जौहरी से भी एक बार भूल हो गई। उसने एक खोटे हीरे को खरा और कीमती समझ कर खरीद लिया और इस खरीद में उसने अपनी सारी पूंजी लगा दी।

जौहरी को खरीद करने के बाद पता तो चल गया कि हीरा बिलकुल खोटा है, मगर अब करता क्या? वेचने वाला रफू-चक्कर हो चुका था। उसने सोचा—अब इस सम्बन्ध में हल्ला-गुल्ला करना वृथा है। ऐसा करने से आबरू जायगी! मगर मैंने इस हीरे के पीछे घर की सारी पूंजी खरच दी है। अगर मेरी मृत्यु जल्दी हो जाय तो कुटुम्बी-जन क्या खाएंगे? कुछ भी हो, जो संकट माथे पर आ पड़ा है, उसे भुगते बिना कोई उपाय नहीं है। हां, मेरे एक मित्र हैं जो आपत्ति के समय अवश्य सहायक होंगे। हीरा भले खोटा निकल गया, मगर मेरा मित्र खोटा नहीं निकल सकता।

ग्रन्थों में सन्मित्र की बड़ी प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि सौभाग्य से ही सन्मित्र की प्राप्ति होती है। सुख के समय

साथ देने वाले तो अनेक मित्र मिल जाते है, किन्तु दुःख के समय साथ देने वाले कोई विरले ही होते हैं। वह विरले मित्र ही सन्मित्र कहलाते हैं।

जौहरी सोचने लगा—मेरा मित्र सच्चा मित्र है। लेकिन मित्र के प्रति मांगने की नहीं वरन् देने की बुद्धि रखनी चाहिए। अतः जब तक मैं जीवित हू तब तक तो कोई प्रश्न ही नहीं है। मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरा मित्र मेरे घर की सार-सभाल कर ही लेगा।

जौहरी बीमार तो था ही, थोड़े दिनों बाद उसकी मौत का समय निकट आ पहुचा। तब उसने विचार किया—'मेरी पत्नी समझती है कि मैं एक बड़े जौहरी की पत्नी हूँ अगर मैं उसे सच्ची परिस्थिति बतला दूंगा तो उसे गहरा आघात लगेगा। अतएव कोई ऐसा मार्ग खोजना चाहिए कि पत्नी को आघात न लगे और पुत्र का अहित न हो।' और उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया।

जौहरी ने अपनी पत्नी को पास बुलाकर कहा—मेरा अन्तिम समय नजदीक आ गया है। देखना, अपने घर की सम्पत्ति का सार हीरा है। इस हीरे को सम्भाल कर रखना। खयाल रखना, हीरा किसी और के हाथ मे न चला जाय। अगर कोई आर्थिक कठिनाई आ पड़े तो इस हीरे को लड़के के साथ मेरे मित्र के पास भेज देना। फिर वह जैसा कहे वैसा करना।

जौहरी चल बसा। उसकी पत्नी ने जैसे-तैसे कुछ महिने निकाले। इसके बाद उसके सामने आर्थिक कठिनाई आ खड़ी हुई। उसने सोचा—पुत्र जब तक बड़ा नहीं हुआ है, तभी तक कठिनाई है। जब तक पुत्र काम में नहीं लगता तब तक के लिए हीरा काम आ सकता है। हालां कि हीरा बहुत कीमती है, फिर भी कष्ट के समय काम न आया तो फिर इसका उपयोग ही क्या है? लड़का बड़ा हो जायगा और कमाने लगेगा तो न जाने कितने हीरे फिर हो

जाएंगे !

इस प्रकार विचार कर उसने लडके को नहलाया-धुलाया, अच्छे कपडे पहनाए, और फिर कहा—बेटा, इस हीरे को अपने पिता के मित्र के पास ले जा। उन्हें पिता के समान समझ कर, नमस्कार करके विनयपूर्वक कहना—'पिताजी कह गये हैं कि यह हीरा घर की सम्पत्ति है। इसे आप चाहें तो बेच दें या गिरवी रख दें, घर का खर्च चलाने के लिए पैसे की आवश्यकता है, उसकी आप व्यवस्था कर दें'

लडका हीरा लेकर पिता के मित्र के पास गया। माता का सन्देश उसने अक्षरशः कह सुनाया। हीरा, हाथ पर रख दिया। हाथ में लेते ही उसे पता लग गया कि हीरा खोटा है। परन्तु उसने विचार किया—अगर मैं साफ कह दूंगा कि हीरा खोटा है तो मित्र की पत्नी को असह्य आघात लगेगा। अगर मैं इसे अपने पास रखता हूं कि तो मेरी साख जोखिम में पडती है। अतएव हीरे के सम्बन्ध में अभी कोई स्पष्टीकरण न करना ही योग्य है।

जौहरी-मित्र ने लडके से कहा—तुम्हारे पिता की मृत्यु हो जाना बडे दुःख की बात है, पर तुझे देखकर मुझे सन्तोष है। मेरे इस घर को तू अपना ही घर समझना। खर्च की तंगी मत भोगना। जितनी जरूरत हो, यहां से ले जाना। पर यह हीरा बहुत कीमती है। अभी इसकी पूरी कीमत नही उपजेगी। इसलिए इसे वापिस घर लेते जाओ और माता से कह देना—हीरे को सम्भाल कर रखना। मैं इसे सम्भाल नहीं सकूंगा। रुपया यों न ले जाना चाहे तो नाम लिखा कर ले जाओ। हीरा बिके तब लौटा देना। पर मेरी एक बात मान ले। तू मेरी दुकान पर आया कर। इसे अपनी ही दुकान समझ।

लडका अपनी मां के पास लौट गया। सब बातें सुनकर वह सन्तुष्ट हुई और सोचने लगी—मेरे पास दो हीरे हैं—एक यह और दूसरा मेरा पुत्र ! फिर किस बात की चिन्ता है ! वह पति के मित्र से रुपया मंगवा कर खर्च चलाने लगी। पुत्र को दुकान पर

भेजना आरम्भ कर दिया।

लडका सुसंस्कारी और होशियार था। दुकान पर जाकर वह रत्नो की परीक्षा करने लगा। धीरे धीरे वह अच्छा पारखी बन गया। एक बार तो उसने ऐसे रत्न की ठीक परख की जिसे जौहरी भी नही परख सके थे। सभी जौहरी उस पर प्रसन्न हुए। सब ने कहा— आज इसने हम लोगो की इज्जत रख ली।

पहले के लोग कृतज्ञ होते थे और गुणो का आदर करते थे। जब से ईर्ष्या ने कृतज्ञता को कुतरा है सभी से गुणो की कद्र कम हो गई है।

जौहरी ने लडके से कहा—'तू अब रत्नो का परीक्षक बन गया है। अब तेरे घर मे जो रत्न है उसकी परीक्षा कर देख। मैंने तो अनुमान से ही उसे बहुत कीमती कह दिया था अब तू उसको अच्छी तरह परीक्षा करके देख।

लडका घर गया। उसने माँ से कहा—माँ, जरा वह हीरा निकालो। माँ ने पूछा— कोई ग्राहक आया? लडके ने कहा—नहीं, ग्राहक तो नही आया। जरा परीक्षा कर देखू कि कितनी कीमत है, कैसा है?

माँ प्रसन्न होती हुई बोली—अब तो तू रत्नो का परीक्षक हो गया है न? लडके ने उत्तर दिया— यह तुम्हारी ही कृपा का फल है माँ। यदि मोहवश होकर तुम दुकान न जाने देती तो मैं परीक्षक कैसे बनता?

माता ने खोटा हीरा पुत्र को पकडा दिया। उसने हाथ में लेते ही परख लिया कि यह हीरा खोटा है और जमीन पर पटक दिया। माता ने कहा—क्यो बेटा फेंक क्यो दिया? पुत्र बोला—माँ, यह हीरा नही है। तेरे लिए तो मैं हीरा हू। यह तो काच है। इसके सहारे सकट का इतना समय कट गया, यही बहुत है।

लडका इतने दिनों तक जिसे हीरा समझता था, उसी

को इतने दिन जौहरी की दुकान पर बैठने से काच समझने लगा। इसके लिए वह जौहरी की प्रशसा करेगा या निन्दा ? वह जौहरी की प्रशसा ही करेगा कि इसने, मुझे रत्न-परीक्षक बना कर बहुमूल्य सम्पत्ति प्रदान की है। जो खरे-खोटे का ज्ञान कराता है, उसके समान और कोई उपकारी नहीं हो सकता।

लड़के ने परीक्षक बनकर खोटे हीरे को फैंक दिया, इसमें दुःख मानने की कोई बात नहीं है। सत्य,असत्य के विषय में हमारी यही मनोवृत्ति होनी चाहिए।

३६ : तत्त्व-ज्ञान और धन

तत्त्व ज्ञान की महिमा क्या है और उसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, इस विषय मे उपनिषद् मे एक कथा है। उसका सारांश इस प्रकार है—

एक बड़ा राजा था। दान के प्रभाव से उस राजा की कीर्ति चारों ओर फैल गई थी। सर्वत्र अपनी कीर्ति फैली देख कर राजा को अपने दान पर अभिमान होने लगा। वह सोचता— मैं बड़ा दानी हूँ। मेरे जैसा दानी दूसरा नहीं हो सकता।

एक रात्रि मे राजा महल की छत पर सो रहा था। वहाँ होकर हंस का रूप धारण किये दो गधर्व निकले। एक ने राजा को देखकर दूसरे से कहा—'यह राजा बहुत धीर-वीर और बड़ा दानी तथा दयालु है। इसके बराबर दानी और दयालु दूसरा नहीं है।'

यह सुनकर दूसरे गन्धर्व ने कहा—यह राजा कैसा ही क्यों

न हो, पर उस तत्त्वज्ञानी का सौवाँ हिस्सा भी नहीं हो सकता। यह राजा उस तत्त्वज्ञानी की बराबरी किसी भी प्रकार नहीं कर सकता।

पहला गन्धर्व—तुम किस तत्त्वज्ञानी की बात कह रहे हो?

दूसरे ने उस तत्त्वज्ञानी का परिचय दिया।

पहला— वह तो गरीब है। वह गरीब इस राजा की बराबरी कैसे कर सकता है?

दूसरा—जान पडता है, तुम ससार के वैभव को ही बड़ा मानते हो। ऐसा न होता तो इस प्रकार न कहते। परन्तु मैं तत्त्वज्ञान के सामने ससार के वैभव को तुच्छ समझता हूँ। तत्त्वज्ञान के सामने ससार का वैभव सौ गुना क्या करोडगुना हीन है। अतएव मेरे सामने उस वैभव की प्रशसा मत करो। जो लोग ससार के वैभव से युक्त हैं उन्हे मैं बडा नही मानता। मैं तत्त्वज्ञानी को ही महान् मानता हू। जैनशास्त्रों मे भी यही कहा है—

देवा वि त नमसति, जस्स धम्मे सया मणो।

अर्थात्—जिनमे धर्म है, उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं।

सासारिक वैभव की दृष्टि से मनुष्य, देव की बराबरी नहीं कर सकता। मनुष्यो की अपेक्षा देवो का वैभव असख्य गुना अधिक होता है। फिर भी देवो की अपेक्षा मनुष्य महान् हैं। देवो का राजा इन्द्र भी मनुष्यों के पैरो मे अपना मस्तक झुकाता है। इसका कारण क्या है? यही कि भोग-विलास की सामग्री देवो के पास अधिक होने पर भी धर्म का पालन और आचरण मनुष्य ही कर सकता है। देव भोग-विलास का सेवन कर सकता है, मगर मनुष्य के समान धर्म का सेवन नहीं कर सकता। अतएव देवो की अपेक्षा मनुष्य की महिमा महान् है।

दोनों गधर्वों में होने वाली बात-चीत राजा ने सुनी। राजा विचार करने लगा—किसी भी उपाय से उस तत्त्वज्ञानी

को, गिराना चाहिए। सासारिक वैभव के प्रलोभन मे फांस कर उसे तत्वज्ञान से पतित करना चाहिए और यह सावित करना चाहिए कि तत्वज्ञान महान् नही, वरन् सासारिक वैभव ही महान् है।

इस प्रकार विचार करके प्रात काल होने ही राजा दस हजार गायें और एक मूल्यवान् हार लेकर, रथ मे बैठ कर उस तत्वज्ञानी के पास गया। तत्वज्ञानी के पास पहुँचकर राजा ने कहा— 'महानुभाव ! मैं आपको दस हजार गायें, यह हार और यह रथ भेंट मे देता हूँ। मुझे आप तत्वज्ञान सुनाइए।'

तत्वज्ञानी बोला—हे शूद्र ! तू जिस प्रकार आया है उसी प्रकार यहाँ से लौट जा। तू तत्वज्ञान श्रवण करने का अधिकारी नही है।

राजा क्षत्रिय था, फिर भी ज्ञानी ने उसे शूद्र क्यो कहा ? इस प्रश्न का उत्तर शांकर-भाष्य मे दिया गया है। कहा है— जिसके हृदय में कुछ और होता है तथा बाहर-वचन मे कुछ और होता है तथा जो ससार के वैभव के संताप से व्याकुल रहता है वह भी शूद्र है।

तत्वज्ञानी की फटकार सुनकर राजा चौंक उठा। उसने सोचा— वास्तव मे हस ने ठीक ही कहा था। यह तत्वज्ञानी तो मेरे वैभव को तुच्छ समझता है और मुझे शूद्र कहता है ! इतनी दरिद्रता और फिर भी वैभव के प्रति इतनी उपेक्षा ! इसकी दृष्टि मे तो स्वर्ग भी तुच्छ है ! यह नहीं सोचता कि तत्वज्ञानी होते हुए भी मैं इतना निर्धन हूँ ! वास्तव मे यह सच्चा तत्वज्ञानी है और तत्वज्ञानी के सामने ससार की विभूति तुच्छ ही होती है।

इस प्रकार विचार कर राजा ने उस ज्ञानी से कहा—आप मेरा अपराध क्षमा कीजिए। यह गायें और यह हार आदि देकर मैं आपको तत्वज्ञान से पतित करके सिद्ध करना चाहता था कि तत्वज्ञान की अपेक्षा सांसारिक वैभव ही महान् है। मेरा यह अप-

राव क्षमा कीजिए और मुझे तत्वज्ञान सुनाइए।

राजा के इस प्रकार कहने पर तत्वज्ञानी ने कहा—अगर तत्व-ज्ञान सुनना चाहते हो तो अपने वैभव को त्याग करके मेरे यहाँ बैठो। मैं तुम्हें तत्वज्ञान सुनाऊँगा।

तत्वज्ञान की महिमा जितनी बड़ी है, उसे प्राप्त करने के लिए त्याग भी उतना ही बड़ा करना पड़ता है। तत्वज्ञान संसार की सम्पत्ति या विभूति से नहीं खरीदा जा सकता।

४० : परिग्रह

वैसे तो परिग्रह से सर्वथा मुक्त होना ही श्रेयस्कर है, भगवान् महावीर का उपदेश भी यही है, लेकिन जो लोग परिग्रह का सर्वथा त्याग नहीं कर सकते, फिर भी भगवान् के उपदेश पर विश्वास रख कर कुछ भी त्याग करते हैं, उनको भी लाभ ही होता है। भगवान् के कथन पर विश्वास रख कर कुछ भी त्याग करने से किस प्रकार लाभ होता है, यह बात एक दृष्टान्त द्वारा समझाई जाती है।

एक राजा और उसके मन्त्री के यहाँ पुत्र न था। राजा सोचा करता था, कि मेरे पश्चात् प्रजा की रक्षा का भार कौन उठावेगा? इसी प्रकार मन्त्री के भी कोई पुत्र नहीं है, अतः मन्त्री के बाद मन्त्रित्व भी कौन करेगा? राजा और मन्त्री, इसी प्रकार के विचारों से पुत्र के लिए चिन्तित रहा करते थे। उन्होंने पुत्रप्राप्ति के लिए प्रयत्न भी किये, परन्तु सब प्रयत्न निष्फल हुए।

राजा और मन्त्री ने सुना कि नगर के बाहर एक सिद्ध

पुरुष आये हैं, जो बहुत करामाती हैं। वे शायद हमारी अभिलाषा पूर्ण होने का उपाय बता सकें, यह सोचकर राजा और मन्त्री उस सिद्ध के पास गये। उचित अभिवादन और कुशल-प्रश्न के पश्चात् राजा उस सिद्ध से कहने लगा कि महाराज, मेरे पुत्र नहीं है। मुझे इस बात की सदा चिन्ता रहा करती है कि मेरे पश्चात् राजधर्म का पालन कौन करेगा? और मैं प्रजा की रक्षा का भार किस को सौंपूँगा! इसी प्रकार मेरे इस मन्त्री के भी पुत्र नहीं है। कृपा करके आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे हमारी यह चिन्ता दूर हो और हमारे पश्चात् प्रजा की समुचित प्रकारेण रक्षा हो।

राजा की बात सुनकर सिद्ध समझ गया कि इन दोनों को अपने-अपने उत्तराधिकारी की चिन्ता है। उसने राजा से कहा—तुम दोनों योग्य उत्तराधिकारी ही चाहते हो न?

राजा—हाँ।

सिद्ध—यदि पुत्र हुए बिना किसी दूसरे उपाय से योग्य उत्त-राधिकारी प्राप्त हो जावे तो?

राजा—हमें कोई आपत्ति नही है।

सिद्ध—इसके लिए, मैं उपाय बताता हूँ। उसके अनुसार कार्य करने से तुम दोनों को योग्य उत्तराधिकारी मिल जावेंगे। यदि तुम दोनों के यहाँ पुत्र हुए भी, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे योग्य ही होंगे। लेकिन मैं जो उपाय बताता हूँ। उसके द्वारा तुम्हें योग्य उत्तराधिकारी प्राप्त होंगे।

राजा—यह तो प्रसन्नता की बात है।

सिद्ध—तुम लोग अपने नगर मे किसी दिन भिखमंगों को खूब टुकड़े बँटवाना! फिर सब भिखमंगों को एकत्रित करना और उनमें से एक एक को निकाल कर उन से कहते जाना कि तुम अपने पास के टुकड़े फेंक दो, तो हम तुमको राज्य देंगे। जो भिख-मंगा तुम्हारे इस कथन पर विश्वास न करे, उसको जाने देना। जो

विश्वास तो करे, लेकिन भविष्य के लिए कुछ टुकड़े रहने देकर शेष फेंक दे, और जो पूरी तरह विश्वास करके सब टुकड़े फेंक दे, उन दोनों में से जिसने सब टुकड़े फेंक दिये हों, उसको राजा बना देना और जिसने कुछ रख कर शेष फेंक दिये हों, उसे मन्त्री बना देना। वे दोनों, तुम दोनों के योग्य उत्तराधिकारी होंगे और उनके द्वारा प्रजा की भी पूरी तरह रक्षा होगी।

राजा और मन्त्री को सिद्ध पर विश्वास था। इसलिए उन्होंने सिद्ध का कथन स्वीकार किया। सिद्ध को अभिवादन करके राजा और मन्त्री, नगर को लौट आये। कुछ दिनों बाद राजा ने नगर में यह घोषित करा दिया कि आज अमुक समय से अमुक समय तक भिखमंगों को खूब रोटी के टुकड़े बांटे जावें। राजा और मंत्री ने, अपनी ओर से भी भिखमंगों को खाने की बहुत-सी चीजें बंटवाईं। फिर सब भिखमङ्गों को एक बाड़े में एकत्रित किया गया। राजा और मन्त्री उस बाड़े के द्वार पर बैठ गये, तथा हुक्म दिया कि एक एक भिखारी को बाहर आने दिया जावे। राजा की आज्ञानुसार एक-एक भिखारी बाड़े से बाहर आने लगा। जो भिखारी बाहर आता उससे राजा कहता—तू अपने पास के टुकड़े फेंक दे तो मैं तुझ को मेरा राज्य दूंगा। राजा प्रत्येक भिखारी से ऐसा कहता, लेकिन उन लोगों को कथन पर विश्वास ही न होता। वे सोचते कि बहुत दिनों के बाद तो हमें इतना खाने को मिला है! राजा का क्या भरोसा! यह अभी तो राज्य देने को कहता है, लेकिन यदि इसने राज्य न दिया, तो हम इसका क्या कर लेंगे! पास के टुकड़े फेंक कर और भूखों मरेंगे!

इस प्रकार विचार कर भिखमंगे लोग राजा के कथन के उत्तर में कहते—'हें हुजूर, मेरे भाग्य में राज्य कहाँ? मेरे भाग्य में तो टुकड़ा मांग कर खाना है।' कोई भिखारी इस तरह कहता और कोई दूसरी तरह कहता, लेकिन राजा के कथन पर विश्वास

करके किसी ने भी टुकड़े नहीं फैंके। राजा, इस तरह के भिखारी को जाने देता और दूसरे को बुलाता। होते-होते एक भिखारी आया। राजा ने उससे भी टुकड़े फैंक देने के लिए कहा। राजा का कथन सुन कर उस भिखारी ने सोचा—कि यह राजा झूठ बात कह कर मेरे पास के टुकड़े फैंकवाने से इसको क्या लाभ हो सकता है! लेकिन दूसरी ओर मैंने अभी कुछ भी नहीं खाया है। यदि इसने टुकड़े फिकवाने के बाद राज्य न दिया तो मुझे अभी ही भूखों मरना पड़ेगा। इसलिए सब टुकड़े फैंकना ठीक नहीं।

इस प्रकार सोच कर, उस भिखारी ने, कुछ अच्छे-अच्छे टुकड़े रख लिये और बाकी के टुकड़े फैंक दिये। राजा ने उस भिखारी को बैठा लिया।

अनेक भिखमगो के बाद एक भिखमंगा फिर ऐसा ही आया। राजा ने उससे भी ऐसा ही कहा। उस भिखारी ने सोचा कि यह राजा टुकड़े फैंक देने पर राज्य देने को कहता है; फिर भी यदि टुकड़े फैंकने पर राज्य न देगा, तो जितने टुकड़े फिकवाता है उतने टुकड़े तो देगा! और कदाचित् उतने टुकड़े भी न देगा, तो जाने तो देगा। मैं और टुकड़े मांग लूंगा। इस प्रकार विचार कर, उसने अपने पास के सब टुकड़े फैंक दिये। राजा उस भिखारी को तथा पहले वाले भिखारी को साथ लेकर महल को चल दिया, और शेष सब भिखारियों को भी चला जाने दिया। दोनो भिखारियो को महल मे लाकर राजा ने सब टुकड़े फैंक देने वाले भिखारी को अपना उत्तराधिकारी बनाया और थोड़े टुकड़े रख लेने वाले भिखारी को मन्त्री का उत्तराधिकारी बनाया। आगे जाकर दोनों भिखारी, योग्य राजा तथा मन्त्री हुए और प्रजा का पालन करने लगे।

यह दृष्टान्त है। इस दृष्टान्त के अनुसार, भगवान् महावीर

हैं। भगवान् महावीर संसार के जीवों से कहते हैं—जो कोई इन सांसारिक-पदार्थ रूपी टुकडो को फेंक देगा, उसे मेरा पद प्राप्त होगा। भगवान् महावीर के इस कथन पर अविश्वास करने का कोई कारण नही है, फिर भी जो लोग भगवान् के कथन पर विश्वास नही करते, तथा सांसारिक-पदार्थों को नही त्यागते, वे भिखारी के भिखारी ही बने रहते हैं। और जो सासारिक पदार्थों को सर्वथा त्याग देते हैं—परिग्रह से निवृत्त हो जाते हैं—वे सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग सासारिक पदार्थ रूपी टुकडो को सर्वथा नहीं त्याग सकते, उनको उचित है कि वे भिखारियो मे तो न रहें। महा-परिग्रह रूप खराब-खराब टुकडे फेंक कर, श्रावक पद रूप भगवान् के पद का मन्त्रित्व प्राप्त करें।

४१ : जाट-जाटिनी

संसार का ऐसा कोई पदार्थ नही, जो कभी न छूटे। छोडने की इच्छा न रहने पर भी, संसार के पदार्थ तो छूटते ही हैं। लेकिन यदि संसार के पदार्थों को इच्छा-पूर्वक छोडा जावेगा, तो दुःख भी न होगा, तथा प्रशंसा भी होगी। और इच्छा-पूर्वक न छोडने पर, संसार के पदार्थ छूटेंगे तो अवश्य ही, परन्तु उस दशा मे हृदय को अत्यन्त खेद होगा, तथा लोगो मे निन्दा भी होगी। इस विषय मे एक कहानी है, जो इस स्थान के लिए उपयुक्त होने से वर्णन की जाती है।

एक जाट की स्त्री, अपने पति से प्राय सदा ही यह कहा करती थी कि मैं चली जाऊगी। जरा भी कोई बात होती, तो वह

कहने लगती कि—मैं जाती हूं! जाट ने सोचा, कि यह चचला मेरे यहां से किसी दिन अवश्य ही चली जावेगी, लेकिन यदि यह स्वय मुझको छोड जाएगी, तो मेरे हृदय को दु.ख भी होगा और लोगो मे मेरी निन्दा भी होगी। लोग यही कहेंगे, कि जाट मे कोई दोष होगा, इसी से उसकी स्त्री उसे छोड कर चली गई। इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे मुझे इसके जाने का दुख भी न हो और लोगों में मेरी निन्दा भी न हो।

एक दिन पति-पत्नी मे फिर कुछ खटपट हुई। उस समय भी जाटिनी ने यही कहा, कि मैं तुम्हे छोड कर चली जाऊंगी! जाट ने जाटिनी से कहा—तू बार-बार जाने का भय दिखाया करती है, यह अच्छा नहीं। तेरे को जाना ही है, तो तू खुशी से जा। मैं तेरे को जाने की स्वीकृति देता हूं। तू मेरी रकम-माल मुझे सौंप दे, और फिर भले ही चली जा। जाट का यह कथन सुनकर, जाटिनी प्रसन्न हुई। उसने, अपने शरीर के आभूषणादि उतार कर जाट को दे दिये। जाट ने उससे कहा—अब तू मजे से जा, लेकिन एक काम तो और कर दे! घर मे पानी नहीं है। मैं अभी ही घड़ा लेकर पानी भरने जाऊंगा, तो लोग मेरे लिए भी न मालूम क्या-क्या कहेंगे और तेरे लिए भी कहेंगे, कि घर में पानी तक नही रख गई! इसलिए एक घडा पानी ला दे, और फिर जहाँ जाने की तेरी इच्छा हो, वहाँ मजे से चली जा।

जाटिनी ने सोचा—जब यह एक घडा पानी ला देने से ही मुझे छुटकारा देता है और मैं इससे सदा के लिए छुटकारा पा जाती हूं, तब इसका कहना मान लेने मे क्या हर्ज है! इस प्रकार सोचकर जाटिनी, घडा लेकर पानी भरने गई। जाटिनी के जाने के पश्चात् जाट भी घर से डडा लेकर निकला और उसी मार्ग पर जा बैठा, जिस मार्ग से जाटिनी पानी लेकर आने वाली थी। जाट ने, दो चार आदमियों को बुलाकर अपने पास बैठा लिया। जैसे ही सिर

पर पानी भरा घडा लिये हुए जाटिनी जाट के सामने आई, वैसे ही जाट कटु-शब्द कहता हुआ उठ खडा हुआ। उसने अपने डण्डे से जाटिनी के सिर पर का घडा फोड कर उससे कहा - कुलटा, मेरे यहाँ से चली जा! तेरे लाए हुए पानी की मुझे आवश्यकता नहीं है। मैं अपने घर मे तुझे नहीं रहने दे सकता इसलिए तेरी इच्छा हो वहाँ जा!

सिर पर का घडा फूट जाने से, जाटिनी भीग गई। वह जाट से कहने लगी, कि—दुष्ट, मैं तेरे यहाँ रहना ही कब चाहती हूँ? मैं तो तेरे जेवर आदि फैंक कर जाती ही थी, केवल तेरे कहने से पानी भरने गई थी। इस प्रकार जाटिनी भी चिल्लाई, परन्तु उसके कथन पर किसी ने भी विश्वास नही किया। सब लोगों ने यही समझा और यही कहने लगे कि जाट ने जाटिनी को निकाल दिया।

तात्पर्य यह, कि ससार का कोई पदार्थ ऐसा नहीं है, जो आत्मा का साथ दे। सभी पदार्थ एक न एक दिन अवश्य छूटने वाले हैं। लेकिन यदि उन पदार्थों को स्वय छोड़ देंगे, तो हृदय को दुःख भी न होगा और लोगो मे निन्दा भी न होगी। किन्तु जैसे जाटिनी के विषय मे लोग कहने लगे, कि जाट ने जाटिनी को त्याग दिया, उसी प्रकार सासारिक पदार्थ त्यागने वाले के विषय में भी लोग यही कहेंगे, कि अमुक ने सासारिक पदार्थ—धन सम्पद् आदि को त्याग दिया।

४२ : लज्जा

आजकल की बहुत सी स्त्रियां घूंघट पर्दा आदि के ही लज्जा

की रक्षा समझती हैं, किन्तु वास्तव मे लज्जा कुछ और ही है। लज्जावती अपने अंग-अग को इस प्रकर से छिपाती है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। लज्जावती कैसी होती है यह बात एक उदाहरण से समझ लीजिये—

एक लज्जावती बाई पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अपना जीवन बिताती थी उसने यह निश्चय कर रक्खा था कि मेरे साथ जो भी कोई रहेगी, उसे भी मैं यही शिक्षा दूंगी। उसकी शिक्षा से मुहल्ले की बहुत-सी स्त्रियाँ सदाचारिणी बन गई।

उसी मुहल्ले मे एक और औरत थी, जिसका स्वभाव इससे एकदम विपरीत था। यह पूर्व को तो वह पश्चिम को जाती थी। उस यह अपना दल बढाने के लिए स्त्रियो को भरमाया करती। उस पतिव्रता की निन्दा करती, उसकी सगति को बुरा बतलाती और कहती—'अरि, उसकी सगत करोगी तो जोगिन बन जाओगी। खाना-पीना और मौज करना ही तो जीवन का सब से बड़ा लाभ है।

कुछ स्त्रियाँ उस निर्लज्जा और धूर्ता स्त्री की बाते सुनतीं, पर ऐसी थी बहुत कम ही। सदाचारिणी की बातें सुनने वाली बहुत थी। यह देखकर उसे बडी ईर्ष्या होती और उसने उस सदाचारिणी की जड खोद फेंकने का निश्चय कर लिया।

वह सदाचारिणी बाई बडी लज्जावती थी, मगर ऐसी नहीं कि घर मे ही बन्द रहे और बाहर न निकलें। वह अपने काम करने के लिए बाहर भी जाती थी। जब वह बाहर निकलती तो निर्लज्जा उससे कहती—'मैं तुझे अच्छी तरह जानती हू कि तू कैसी है। बड़ी बगुला-भगत बनी फिरती हैं, लेकिन तेरी जैसी दूसरी कहीं शायद ही मिले।'

निर्लज्जा ने दो-चार बार लज्जावती से ऐसा कहा। लज्जावती ने सोचा—क्षमा रखना तो उचित है, पर ऐसा करने से—चुपचाप सुन लेने से तो लोगो को शका होने लगेगी। एक बार ऐसा

ही प्रसंग उपस्थित होने पर उसने रुक कर कहा— 'तेरा मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग है। मेरा-तेरा कोई लेन-देन नहीं, फिर बिना मतलब अपनी जबान क्यों बिगाड़ती है?

लज्जावती का इतना कहना था कि निर्लज्जा भड़क उठी। वह कहने लगी—'तू मीठी-मीठी बातें बनाकर अपने ऐब छिपाती है और जाल रचती है। मगर मैं तेरे सारे ऐब संसार के सामने खोल कर रख दूंगी।'

यह सुनकर लज्जावती को भी कुछ तेजी आ गई। उसने उस कुलटा से कहा—'तुझे मेरे चरित्र को प्रकट करने का अधिकार है, मगर जो यद्वा-तद्वा ऊल-जलूल कहा तो तेरा भला न होगा।'

पतिव्रता की यह युक्तिपूर्ण बात सुनकर लोगों पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा। लोगों ने उससे कहा—'बहिन, तुम अपने घर जाओ। यह कैसी है, यह बात सभी जानते हैं।' लोगों की बात सुनकर पतिव्रता अपने घर चली गई। यह देखकर कुलटा ने सोचा—'हाय! वह भली और मैं बुरी कहलाई। अब इसकी पूछ और बढ़ जायगी और मेरी बदनामी बढ़ जायगी। ऐसे जीवन से तो मरना ही भला! मगर इस प्रकार मरने से भी क्या लाभ है? अगर उसे कोई कलंक लगाकर उसके प्राण ले सकूं तो मेरे रास्ते का कांटा दूर हो जाए। मगर कलंक क्या लगाऊं? और कोई कलंक लगाने पर तो उसका साबित करना कठिन हो जायगा। क्यों न मैं अपने लड़के को ही मार डालूं और दोष उसके माथे मढ़ दूं। लोगों को विश्वास हो जायगा और उसका खात्मा हो जायगा।

इस प्रकार का क्रूरतापूर्ण विचार करके उसने अपने लड़के के प्राण ले लिए। लड़के का मृत शरीर उस सदाचारिणी के मकान के पास कुएं में फेंक आई। इसके बाद रो-रो कर, बिलख-बिलख कर अपने लड़के को खोजने लगी। हाय! मेरा लड़का न जाने कहाँ गायब हो गया है। दूसरे लोग भी उसके लड़के को ढूंढने

लगे । आखिर वह लोगों को उसी कुएँ के पास लाई, जिसमे उसने लडके का शव फेंका था । लोगों ने कुए को ढूंढा तो उसमें से बच्चे की लाश निकल आई लाश निकलते ही दुराचारिणी उस सदाचारिणी का का नाम ले-लेकर कहने लगी—'हाय ! उस भगतन की करतूत देखो । उस पापिनी ने मुझसे वैर भजाने के लिए मेरे लडके को मार डाला ! डाकिन ने मेरा लाल खा लिया । हाय ! मेरे लड़के को गला घोटकर मार डाला ।'

आखिर न्यायालय मे मुकद्दमा पेश हुआ । दुराचारिणी ने सदाचारिणी पर अपने लडके को मार डालने का अभियोग लगाया । सदाचारिणी को भी न्यायालय मे उपस्थित होना पडा । उसने सोचा—वडी विचित्र घटना हैं । मैं उस लडके के विषय मे कुछ नही जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है । खैर कुछ भी हो, अभियोग का उत्तर तो देना ही पड़ेगा ।

कुलटा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन मे कुछ गवाह भी पेश किये । सदाचारिणी से पूछा गया—'क्या तुमने इस लडके की हत्या की है ?'

सदाचारिणी—नहीं, मैंने लडके को नहीं मारा, किसने मारा है, यह भी मैं नही जानती और न मुझे किसी पर शक ही है ।

मामला वादशाह के पास पहुचाया गया । वादशाह बडा बुद्धिमान् और चतुर था । उसने सदाचारिणी को भली-भांति देखा और सोचा—कोई कुछ भी कहे, सवूत कुछ भी हो पर यह निश्चित मालूम होता है कि इसने लडके की हत्या नहीं की ।

वादशाह का वजीर भी वडा बुद्धिमान् था । उसने कहा—इस मामले में कानून की किताबें मददगार नही होंगी यह मेरे सुपुर्द कीजिये । मैं इसकी जांच करूंगा ।

वादशाह ने वजीर को मामला सौंप दिया । वजीर दोनो स्त्रियों को साथ लेकर अपने घर गया । वह उस सदाचारिणी को

साथ लेकर एक ओर जाने लगा। सदाचारिणी ने वजीर से कहा—मैं अकेली परपुरुष के साथ एकान्त मे कदापि नहीं जा सकती। आप जो पूछना चाहें, यहीं पूछ सकते हैं। अकेले पुरुष के साथ एकान्त मे जाना धर्म नहीं है, फिर वह चाहे सगा बाप ही क्यों न हो।

वजीर ने धीमे स्वर मे कहा—तुम एक बात मेरी मानो तो मैं तुम्हें बरी कर दूंगा।

सदाचारिणी— आपकी बात सुने विना मैं नहीं कह सकती कि मैं उसे मान ही लूंगी। अगर धर्मविरुद्ध बात नहीं हुई तो मान लूंगी, अन्यथा जान देना मंजूर है।

वजीर—मैं तुम्हारा धर्म नहीं जाने दूंगा। तब तो मानोगी।

सदाचारिणी—अगर धर्म न जाने योग्य बात है तो साफ क्यों नहीं कहते?

वजीर—तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लड़के को मारा है। न मारने की बात केवल तुम्हीं कहती हो, पर तुम्हारी बात पर विश्वास कैसे किया जाय? अपनी बात पर विश्वास करना है तो नंगी होकर मेरे सामने आ जाओ। इससे मैं समझ लूंगा कि तुमने मेरे सामने जैसे शरीर पर पर्दा नहीं रक्खा, उसी प्रकार बात कहने में भी पर्दा न रक्खोगी।

सदाचारिणी—जिसे मैं प्राणों से भी अधिक समझती हूं, उस लज्जा को नहीं छोड़ सकती और आपका यह कर्त्तव्य नहीं है। आप चाहें तो शूली पर चढ़ा सकते हैं—फांसी पर लटकाने का अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझ से न हो सकेगा।

इतना कह कर वह वहां से चल दी। वजीर ने कहा—'देखो, समझ लो। न मानोगी तो मारी जाओगी' सदाचारिणी ने कहा—'आपकी मरजी। यह शरीर कौन हमेशा के लिए मिला है। आखिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है।'

वजीर ने सोच लिया—'यह स्त्री सच्ची और सती है।'

इसके बाद वजीर ने कुलटा को बुलाकर वही कहा—'तुम मेरी एक बात मानो तो तुम जीत जाओगी।'

कुलटा—मैं तो जीती हुई हूँ ही। मेरे पास बहुत से सबूत हैं।

वजीर—नहीं, अभी संदेह है। वह बाई हत्यारिणी नहीं है।

कुलटा—आप इसके जाल में तो नहीं फंस गये ? वह बड़ी धूर्त्ता है।

वजीर—यह सन्देह करना व्यर्थ है।

कुलटा—फिर आप उस हत्यारिणी को निर्दोष कैसे बतलाते हैं ?

वजीर—अच्छा मेरी बात मानो।

कुलटा—क्या ?

वजीर—तुम मेरे सामने कपड़े खोल दो तो मैं समझूंगा कि तुम सच्ची हो।

कुलटा अपने कपड़े खोलने लगी। वजीर ने उसे रोक दिया और जल्लाद को बुला कर कहा—'इसे ले जाकर बेंत लगाओ।

जल्लाद उसे बेरहमी से पीटने लगा। वह चिल्लाई—ईश्वर के नाम पर मुझे मत मारो। जल्लाद ने पूछा—'तो बता, लड़के को किसने मारा है ?' कुलटा ने सच्ची बात स्वीकार कर ली। मार के आगे भूत भागता है, यह कहावत प्रसिद्ध है।

वजीर ने अपना फैसला लिखकर बादशाह के सामने पेश कर दिया। कहा—लड़के की हत्या उसकी मां ने ही की है।

बादशाह ने कहा—यह बात कौन मान सकता है कि माता अपने पुत्र को मार डाले ! लोग अन्याय का सन्देह करेंगे।

वजीर ने कहा—यह कोई अनोखी बात नहीं है। धर्मशास्त्र के अनुसार पहला धर्म लज्जा है। जहां लज्जा है। वहीं दया है।

मैंने दोनों की लज्जा की परीक्षा की। पहली बाई ने मरना स्वीकार किया, पर लाज तजना स्वीकार न किया। वह धर्मशीला है। इस दूसरी ने मुझे भी कलंक लगाया और फिर लाज देने को तैयार हो गई। यह देखकर इसे पिटवाया तो लड़के की हत्या करना स्वीकार कर लिया।

सारा मामला बदल गया। सच्चरित्रा बाई के सिर मढ़ा हुआ कलंक मिट गया। बादशाह ने सच्चरित्रा को धन्यवाद देकर कहा—'आज से तुम मेरी बहिन हो।'

लज्जा के प्रताप से उस बाई की रक्षा हुई। वह लाज तज देती तो उसके प्राण भी न बचते। बादशाह ने कुलटा को फांसी की सजा सुनाई और सदाचारिणी से कहा—'बहिन! तुम जो चाहो, मुझसे मांग सकती हो।'

सदाचारिणी बाई ने उठकर कहा—'आपके अनुग्रह के लिए आभारी हूं। मैं आपके आदेशानुसार यही मांगती हूं कि यह बाई मेरे निमित्त से न मारी जाय। इस पर दया की जाय।'

बादशाह ने वजीर से कहा—'तुम्हारी बात बिलकुल सत्य है। जिसमें लज्जा होगी, उसमें दया भी होगी। इस बाई को देखो। अपने साथ बुराई करने वाली की भी कितनी भलाई कर रही है!'

बादशाह ने सदाचारिणी बाई की बात मान कर कुलटा को क्षमा-दान दे दिया। कुलटा पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसका जीवन एकदम बदल गया।

सारांश यह है कि लज्जा एक बड़ा गुण है। जिसमें लज्जा होगी, वह धर्म का पालन करेगा।

४३ : खान-पान की शुद्धि और सामायिक

खान-पान और रहन सहन की छोटी-सी अशुद्धि भी चित्त को किस प्रकार अस्थिर बना देती है, और चतुर श्रावक उस अशुद्धि को किस प्रकार मिटाता है यह बताने के लिये एक कथित घटना इस प्रकार है:—

एक धर्मनिष्ठ श्रावक था। वह नियमित रूप से सामायिक किया करता था और इसके लिए उन सब नियमोपनियमो का भली-भांति पालन करता था, जिनका पालन करने पर शुद्ध रीति से सामायिक होती है, अथवा सामायिक करने का उद्देश्य पूरा होता है।

एक दिन वह श्रावक, नित्य की तरह सामायिक करने के लिए बैठा। नित्य तो उसका चित्त सामायिक मे लगता था परन्तु उस दिन उसके चित्त की चचलता न मिटी। उसने अपने चित्त को स्थिर करने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन सब व्यर्थ। वह सोचने लगा, कि आज ऐसा कौन-सा कारण हुआ है, जिसमे मेरा चित्त सामायिक मे नहीं लगता है, किन्तु इधर-उधर भागा ही फिरता है! इस तरह सोच कर, उसने अपने सब कार्यों की आलोचना की, अपने खान-पान की आलोचना की, किन्तु उसे ऐसा कोई कारण न जान पडा, जो सामायिक में चित्त को स्थिर न रहने दे! अन्त में उसने विचार किया, कि मैं अपनी पत्नी से तो पूछ देखूँ कि उसने तो कोई ऐसा कार्य नहीं किया है, जिसके कारण मेरा चित्त सामायिक मे नहीं लगता है! इस तरह विचार कर, उसने अपनी पत्नी को बुला कर कहा कि आज सामायिक मे मेरा चित्त अस्थिर रहा,

स्थिर नहीं हुआ। मैंने अपने कार्य एव खान-पान की आलोचना की, फिर भी ऐसा कोई कारण न जान पडा, जिससे चित्त मे अस्थिरता आवे। क्या तुमसे कोई ऐसा कार्य हुआ है, जिसका प्रभाव मेरे खान-पान पर पड़ा हो और मेरा चित्त सामायिक मे अस्थिर रहा हो।

श्रावक की पत्नी भी धर्मपरायणा श्राविका थी। पति का कथन सुनकर उसने भी अपने सब कार्यों की आलोचना की। पश्चात् वह अपने पति से कहने लगी कि मुझसे दूसरी तो कोई ऐसी त्रुटि नहीं हुई है, जिसके कारण आपके खान-पान मे दूषण आवे और आपका चित्त सामायिक मे न लगे, लेकिन एक त्रुटि अवश्य हुई है। हो सकता है कि मेरी उस त्रुटि का ही यह परिणाम हो, कि आपका चित्त सामायिक मे न लगा हो। घर मे आज आग नहीं रही थी। मैं भोजन बनाने के लिए चूल्हा सुलगाने के वास्ते पडोसिन के यहाँ आग लेने गई। जब मैं पडोसिन के घर के द्वार पर पहुँची, तब मुझे याद आया कि मैं आग ले जाने के लिए तो कुछ लाई नहीं, फिर आग किसमे ले जाऊँगी? मैं आग लाने के लिए कडा ले जाना भूल गई थी। पडोसिन के द्वार पर कुछ कडे पडे हुए थे। मैंने सहज भाव से उन कडो मे से एक कडा उठा लिया, और पडोसिन के यहाँ से उस कडे पर आग लेकर अपने घर आई। मैंने, आग जलाकर भोजन बनाया। पडोसिन की स्वीकृति बिना ही मैं जो कण्डा उठा कर लाई थी, उस कण्डे को भी, मैंने भोजन बनाते समय चूल्हे में जला दिया। पडोसिन के घर से मैं बिना पूछे जो कण्डा लाई थी, वह कण्डा चोरी का था। बेहक का था। इसलिए हो सकता है कि मेरे इस कार्य के कारण ही आपका चित्त सामायिक में न लगा हो। क्योंकि उस कण्डे को जलाकर बनाया गया भोजन आपने भी किया था।

पत्नी का कथन सुनकर श्रावक ने कहा कि बस ठीक है!

उस कण्डे के कारण ही आज मेरा चित्त सामायिक मे नहीं लगा। क्योंकि वह कण्डा अन्यायोपार्जित था। अन्यायोपार्जित वस्तु या उसके द्वारा बनाया गया भोजन जब पेट में हो, तब चित्त स्थिर कैसे रह सकता है! अब तुम पडौसिन को एक के बदले दो कण्डे वापस करो, उससे क्षमा मांगो और इस पाप का प्रायश्चित्त करो। श्राविका ने ऐसा ही किया। यह कथानक या घटना ऐसी ही घटी हो या रूपक मात्र हो, इसका मतलब तो यह है कि जो शुद्ध सामायिक करना चाहता है, उसे अपना खान-पान और रहन-सहन शुद्ध रखना चाहिए। जब सामायिक में मन न लगे तो खान-पान और रहन-सहन की आलोचना करके अशुद्धि मिटानी चाहिए।

४४ : मार

एक सेठ के लडके का विवाह दूसरे सेठ के यहाँ हुआ था। उसकी स्त्री बहुत ओछे स्वभाव की थी। एक दिन सेठ का लडका भोजन कर रहा था और उसकी माता तथा पत्नी सामने बैठी थी। सासू ने कहा—बहू, जरा शिला तो उठा लाओ, मसाला पीसना है। बहू तडक कर बोली—मैं क्या पत्थर उठाने यहाँ आई हूं! मैंने अपने बाप के घर कभी पत्थर नहीं उठाए। सासू गम्भीर और समझदार थी। उसने बहू से सिर्फ इतना कहा—मुझ से भूल हुई कि मैंने तुम्हें यह काम करने को कह दिया। मैं स्वयं उठा लूंगी। यह कहकर उसने स्वय शिला उठा ली और मसाला पीस लिया।

लडका यह सब देख-सुन रहा था। पत्नी के इस दुर्व्यवहार से उसके हृदय को बडी चोट लगी। वह सोचने लगा—'मेरी माता

के प्रति इसका ऐसा व्यवहार है।' लडका कुलीन था। उस समय तो वह चुप रह गया पर उसने निश्चय कर लिया कि किसी तरकीब से इसकी अक्ल ठिकाने लानी होगी। ऐसा निश्चय करके वह चला गया।

लडका सराफी की दुकान करता था। एक दिन उसकी दुकान पर एक हार बिकने आया। उसने वह हार खरीद लिया और सुनार को बुलाकर कहा—इस हार में पान की जगह लोहे की ढाई सेरी सोने मे मढ़कर जड दो। ऊपर से कुछ जवाहर जड़ दो, जिससे भीतर लोहा होने का किसी को खयाल भी न आवे। सुनार ने ऐसा ही किया। लडका वह हार घर ले गया। उसने अपनी पत्नी से कहा—आज एक बहुत बढिया हार बिकने आया था। मैंने उसे खरीद लिया है। बात इतनी ही है कि वह भारी बहुत है और तुम्हारा शरीर बहुत नाजुक है, वर्ना तुम्हारे लायक था। तुम उसका बोझ नही सँभाल सकोगी।

पत्नी के दिल मे गुदगुदी पैदा हो गई। बोली—दिखाओ तो सही कितना भारी है वह हार। मैंने अपने पिता के घर बहुत भारी-भारी गहने पहने हैं।

पति ने कहा—हाँ, देख लो। मगर तुम से वह उठेगा नही।

पत्नी ने हार देखा तो खुश हो गई। कहने लगी—मैंने अपने पिताजी के घर पर तो इससे भी भारी हार पहने हैं। उनके सामने यह क्या चीज है।

पति बोला—हाँ पहने होंगे। वह बडा घर है। अपनी शक्ति देख लो। पहन सको तो पहन लो!

पत्नी—पहन तो मैं लूँगी। इसकी कीमत क्या है?

पति—कीमत की चिन्ता मत करो! वह मैंने चुका दी है।

स्त्री ने हार पहन लिया। हार पहनने की खुशी मे वह फूली नहीं समाई। घर का काम दौड-दौड़ कर करने लगी! हार

बार-बार उसकी छाती से टकराता और छाती की हड्डियाँ चूरचूर होने को हो गई, फिर भी वह हार का लोभ नहीं छोड़ सकी। हार पहन कर उसकी प्रसन्नता बहुत बढ गई।

लडके ने सोचा -- हार के लोभ मे यह अन्धी हो गई है! इसे हार का भार मालूम ही नही होता! अगर ढ़ाई-सेरी की चोटें खाते खाते छाती का खून जम गया तो नया बवाल उठ खड़ा होगा! दवाई-दारू की झंझट तो मुझे ही करनी पड़ेगी।

एक रात, जब स्त्री सो रही थी, उसके पति ने किसी औजार से ढाई-सेरी का सोना हटा दिया! ढाई-सेरी आधी नजर आने लगी! सुबह स्त्री ने उठ कर देखा—अरे! हार तो लोहे का है! लोहा पहना कर मुझे बोझों क्यो मारा? वैर भजाना ही था तो और तरह भजा लेते!

सेठ के लडके ने कहा—मैं तुम्हारी सुकुमारता की परीक्षा करना चाहता था। एक दिन माँ ने शिला लाने को कहा था, तब तुम इतनी सुकुमार थी कि तुमसे शिला नही उठी। फिर तुम शिला से भी भारी बोझ गले मे लटकाये रही और कष्ट का अनुभव नही किया। आज, जब तुमने देखा कि यह सोना नहीं लोहा हैं, तो फिर तुम्हें बोझ लगने लगा। बोझ क्या लोहे मे ही होता है, सोने मे नहीं? तुम्हे सीख देने के लिए ही मैंने यह उपाय किया था। तुम मेरी माता को देव-गुरु की तरह ही पूजनीय समझना। मैं माता से द्रोह करके स्त्री का गुलाम होकर रहने वाले कपूतों मे नही हूं।

अब आप अपने विषय में सोचिए। आप पाप का बड़े से बडा बोझा उठा लेते हैं मगर धर्म का थोडा-सा भार भी नही उठा सकते! सोने का बोझ प्रसन्नतापूर्वक सह सकते हैं पर लोहे का बोझ नहीं सहा जाता! मगर ज्ञानी की दृष्टि में सोने का बोझ और लोहे का बोझ समान है।

४५ : मिश्री का हीरा

एक बार अकबर बादशाह अपने महल मे सो रहा था। वर्षा की अधिकता के कारण यमुना नदी मे जोर का पूर आया। यमुना की घरं-घरं की ध्वनि से बादशाह की नींद टूट गई। बादशाह ने पहरेदार को बुला कर पूछा—यमुना क्यो रो रही है ?

पहरेदार—जहाँपनाह, इतनी बुद्धि मुझमें होती तो मैं सिपाही क्यों बना रहता ? वजीर न बन जाता ?

बादशाह—ठीक है। जाकर वजीर को बुला लाओ।

पहरेदार वजीर को बुलाने गया। वजीर सो रहे थे। सिपाही ने आवाज लगाई। वजीर की नींद खुली। उसने पूछा—क्या मामला है ?

सिपाही—जहाँपनाह आपको याद फरमा रहे हैं।

वजीर—क्यों ? इस वक्त किसलिए ?

सिपाही ने सारा वृत्तान्त उसे बता दिया। रात का समय था। वर्षा हो रही थी। घोर अन्धकार छाया हुआ था। पर वजीर विवश थे, बादशाह की हुक्म-अदूली कैसे की जा सकती थी ? अतएव इच्छा न होने पर भी उसे बादशाह के पास जाना पड़ा।

यथोचित शिष्टाचार के पश्चात् वजीर ने अपने को बुलवाने का कारण पूछा। बादशाह ने वजीर को वही प्रश्न पूछा—यमुना नदी क्यों रो रही है ?

वजीर ने उत्तर दिता—जहाँपनाह, यमुना हिन्दुस्तान की नदी है। हिन्दुस्तान की नदी होने के कारण वह भी हिन्दुओं की रीति-भाँति का पालन करती है। हिन्दुओं में रिवाज है कि लड़की

बार-बार उसकी छाती से टकराता और छाती की हड्डियाँ चूरचूर होने को हो गई, फिर भी वह हार का लोभ नही छोड सकी। हार पहन कर उसकी प्रसन्नता बहुत बढ गई।

लडके ने सोचा -- हार के लोभ मे यह अन्धी हो गई है! इसे हार का भार मालूम ही नहीं होता! अगर ढाई-सेरी की चोटें खाते खाते छाती का खून जम गया तो नया बवाल उठ खड़ा होगा! दवाई-दारू की झंझट तो मुझे ही करनी पड़ेगी।

एक रात, जब स्त्री सो रही थी, उसके पति ने किसी औजार से ढाई-सेरी का सोना हटा दिया! ढाई-सेरी आधी नजर आने लगी! सुबह स्त्री ने उठ कर देखा—अरे! हार तो लोहे का है! लोहा पहना कर मुझे बोझों क्यो मारा? वैर भजाना ही था तो और तरह भजा लेते!

सेठ के लड़के ने कहा—मैं तुम्हारी सुकुमारता की परीक्षा करना चाहता था। एक दिन माँ ने शिला लाने को कहा था, तब तुम इतनी सुकुमार थी कि तुमसे शिला नहीं उठी। फिर तुम शिला से भी भारी बोझ गले में लटकाये रही और कष्ट का अनुभव नही किया। आज, जब तुमने देखा कि यह सोना नही लोहा है, तो फिर तुम्हे बोझ लगने लगा। बोझ क्या लोहे में ही होता है, सोने में नही? तुम्हें सीख देने के लिए ही मैंने यह उपाय किया था। तुम मेरी माता को देव-गुरु की तरह ही पूजनीय समझना। मैं माता से द्रोह करके स्त्री का गुलाम होकर रहने वाले कपूतों मे नही हू।

अब आप अपने विषय में सोचिए। आप पाप का बड़े से बड़ा बोझा उठा लेते हैं मगर धर्म का थोडा-सा भार भी नही उठा सकते! सोने का बोझ प्रसन्नतापूर्वक सह सकते हैं पर लोहे का बोझ नहीं सहा जाता! मगर ज्ञानी की दृष्टि मे सोने का बोझ और लोहे का बोझ समान है।

४५ : मिश्री का हीरा

एक बार अकबर बादशाह अपने महल में सो रहा था। वर्षा की अधिकता के कारण यमुना नदी में जोर का पूर आया। यमुना की घर्र-घर्र की ध्वनि से बादशाह की नींद टूट गई। बादशाह ने पहरेदार को बुला कर पूछा—यमुना क्यो रो रही है ?

पहरेदार—जहाँपनाह, इतनी बुद्धि मुझमें होती तो मैं सिपाही क्यो बना रहता ? वजीर न बन जाता ?

बादशाह—ठीक है। जाकर वजीर को बुला लाओ।

पहरेदार वजीर को बुलाने गया। वजीर सो रहे थे। सिपाही ने आवाज लगाई। वजीर की नींद खुली। उसने पूछा—क्या मामला है ?

सिपाही—जहाँपनाह आपको याद फरमा रहे हैं।

वजीर—क्यों ? इस वक्त किसलिए ?

सिपाही ने सारा वृत्तान्त उसे बता दिया। रात का समय था। वर्षा हो रही थी। घोर अन्धकार छाया हुआ था। पर वजीर विवश थे, बादशाह की हुक्म-अदूली कैसे की जा सकती थी ? अतएव इच्छा न होने पर भी उसे बादशाह के पास जाना पड़ा।

यथोचित शिष्टाचार के पश्चात् वजीर ने अपने को बुलवाने का कारण पूछा। बादशाह ने वजीर को वही प्रश्न पूछा—यमुना नदी क्यो रो रही है ?

वजीर ने उत्तर दिया—जहाँपनाह, यमुना हिन्दुस्तान की नदी है। हिन्दुस्तान की नदी होने के कारण वह भी हिन्दुओं की रीति-भाँति का पालन करती है। हिन्दुओं में रिवाज है कि लड़की

जब पीहर से अपने ससुराल जाती है तब रोती जाती है । यमुना भी अपने पीहर से ससुराल जा रही है, इसलिए रोती जा रही है ! इसका पीहर यह हिमालय पहाड़ है, जहां से इसका उद्गम हुआ है और ससुराल समुद्र है ।

वजीर की यह व्याख्या बादशाह को पसन्द आई । उसने वजीर को जाने की इजाजत दी ।

वजीर घर जाने के लिए रवाना हुआ । रास्ते मे किसी घर में एक बूढ़ा जोर-जोर से रो रहा था । वजीर ने उसका रोना सुनकर सोचा—नदी का चढ़ना और बादशाह का मुझे बुलाना इसी बूढे के निमित्त हुआ जान पड़ता है । अगर मैंने इसका रोना सुन करके भी इसका दु ख दूर न किया तो मेरी वजारत को और साथ ही आदमियत को धिक्कार है ।

जिस घर में बूढा रो रहा था, उस घर का नम्बर नोट करके वजीर अपने घर चला गया । बूढे का रोना रात-भर वजीर के दिल में कांटे की तरह चुभता रहा । वह सोचता रहा—कब सुबह हो और बूढे का दु ख दूर करूँ ।

प्रात काल होते ही वजीर ने बूढे को बुला लाने के लिए आदमी भेजा । वजीर का बुलावा सुनते ही बूढा बुरी तरह घबराया । सोचने लगा—यह और नई मुसीबत कहां से आ पडी । परन्तु वह वजीर के आदमी के साथ हो लिया और वजीर के घर आ पहुचा ।

वजीर ने बूढे से पूछा— चाचा, रात को रोते क्यों थे ? सच बताओ ?

बूढ़े ने जवाब दिया— हुजूर, मैं कारीगर हूँ । जवानी मे मैं रफू करने का काम करता था और काफी कमा लेता था । पर जो कमाता था, सब खर्च कर देता था बचत नहीं करता था । उस समय बचत की आवश्यकता ही महसूस नही होती थी जवान

लडका था—सोचा था बुढ़ापे मे वह कमाएगा और मैं बैठा-बैठा खाऊँगा। इस प्रकार बेफिक्री मे अपना समय गुजार रहा था कि अचानक मेरा जवान बेटा चल बसा मैं पापी बैठा रहा। अब हाथ पैर थक चुके हैं। काम होता नही और गुजर करने को फूटी कोडी पास में नही है। जिंदगी मे कभी भीख नही मांगी—भीख मांगने का इरादा करते ही शर्म से गड जाता हू। इसी मुसीबत के मारे रात को रोना आ गया था।

मित्रो! किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति पर आर्थिक सकट आकर पडता है तब उस पर क्या बीतती है, इस घटना से यह जाना जा सकता है।

बूढ़े की कैफियत सुनकर वजीर ने कहा—तुम अब भी रफू करना जानते तो हो न।

बूढ़ा—जी हाँ, जानता क्यो नहीं, पर हाथ कांपता है।

हाँ तो वजीर ने उस बूढे को रुपये देते हुए कहा—मैंने तुम्हें अपना चचा बना लिया है। अब चिंता-फिक्र करना नही।

बूढे ने कहा—जन्म भर मैंने कभी मांगा नहीं है, न किसी का मुफ्त का खाया है। अगर मुझे कुछ काम मिल जाय और फिर यह रुपये मिलें तो ठीक होगा।

वजीर ने कहा—अच्छा, तुम्हें काम भी देंगे। लो, यह मिश्री का टुकडा ले जाओ। इसे हीरा बना कर ले आना। दिखने मे वह बिलकुल हीरा हो, मगर पानी लगने से गल जाय!

बूढे ने 'बहुत ठीक' कहकर विदा ली।

अचानक सहायता मिल जाने से बूढे मे कुछ उत्साह आ गया था और वह कारीगर तो था ही। थोडे दिनो बाद मिश्री के टुकडे को वह हीरा बनाकर, एक सुन्दर मखमल की डिब्बी मे सजा कर वजीर के पास ले आया। वजीर हीरे को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने कारीगर को बढ़िया-बढ़िया कपड़े देकर कहा—

तुम यह कपड़े पहन कर, हीरा लेकर बादशाह सलामत के दरबार में हाजिर होना।

वजीर के आदेशानुसार कारीगर जौहरी बन गया। वह नकली हीरा लेकर बादशाह के समक्ष उपस्थित हुआ।

वजीर ने कारीगर को जौहरी बताते हुए उसकी खूब प्रशंसा की। कहा—यह अमुक देश के प्रसिद्ध जौहरी हैं। इनके पास एक बढ़िया हीरा है। वह जहाँपनाह के लायक है। मैंने हीरा देखा है। वह मुझे बहुत पसन्द आया।

बादशाह ने हीरा देखने की इच्छा प्रदर्शित की तो जौहरी ने डबिया खोलकर हीरा उसके सामने रख दिया। बादशाह को भी वह पसन्द आ गया। उसने कहा—जौहरियों को बुलाकर इसकी कीमत जचवाओ।

वजीर ने नकली जौहरी से कहा—आज आप जाइए। कल आइए, तब तक इसकी कीमत की जाँच करा ली जायगी।

वजीर ने कारीगर को रवाना किया और हीरा अपने पास रख लिया। वजीर ने सोचा—अगर जौहरी आये तो सारा गुड़-गोबर हो जायगा। फिर यह चालाकी न, चल सकेगी। यह सोच कर उससे पहले ही उचित व्यवस्था करने का निश्चय कर लिया।

बादशाह जब दरबार से उठकर नहाने गया और नहाने लगा, तब वजीर ने कहा—हुजूर, जौहरी आवेंगे तब मैं उस जरूरी काम में लगा होऊँगा। बेहतर होगा, आप ही अपने पास इसे रखें और जौहरियों को दिखला लें।

बादशाह ने वह हीरा ले लिया और वहीं कहीं रख लिया।

वह नहाने लगा। बादशाह को क्या पता था कि हीरा मिश्री का है और वह पानी लगने से गल जायगा। वह नहाता रहा और पानी हीरे पर पड़ता रहा। नतीजा यह हुआ कि हीरा गल गया और बादशाह को पता ही न चला।

बादशाह स्नान करके अन्यत्र चला गया। उसे हीरे का खयाल न रहा। थोड़ी देर बाद जब उसे हीरा याद आया तो उसने स्नान गृह मे तलाश करवाया, पर हीरा नदारत था।

बादशाह ने नौकरों को डांटा-डपटा। उनकी चमडी उधड़वा लेने की धमकी दी। कोड़े लगवाने का डर दिखाया। पर नतीजा कुछ न निकला। बेचारे नौकर हीरे के विषय में क्या कहते? जब हीरा न मिला तो बादशाह ने वजीर को बुलवा कर पूछा—वजीर, तुम मुझे हीरा दे गये थे न?

वजीर—जी हाँ जहांपनाह, मैं आपके हाथ में दे गया था और आपने स्नान घर मे अपने पास ही रख लिया था।

बादशाह—मुझे भी यही याद पड़ता है। तुमने मुझे हीरा दिया और मैंने वहीं रख लिया। मैं नहाने लगा। नहाने के बाद मैं उसका खयाल भूल गया और वहां से चला आया। अब तलाश करवाया तो वह गायब है। सिवाय नौकरों-चाकरों के, स्नान-घर में कोई जाता नहीं है। साफ है कि इन्ही में से किसी की बदमाशी है। इनकी मरम्मत करो और हीरा निकलवाओ।

वजीर ने कहा—हीरा खाने की चीज तो है नहीं जिसे कोई खा जायगा। अगर कोई खा जायगा तो मर जायगा। इसके लिए मारपीट करने से आपकी बदनामी होगी। वह परदेशी व्यापारी है। सुनेगा तो देशदेशान्तर मे कहता फिरेगा कि, इतने बड़े बादशाह एक हीरा भी नही संभाल सके, तो इतनी बड़ी सल्तनत को क्या खाक संभाल सकेंगे! इससे आपकी नेकनामी मे धब्बा लगेगा। हीरा तो गया अब इज्जत क्यों जाने दी जाय? मेरी राय मे तो चुप रहना ही बेहतर है।

वजीर की बात बादशाह समझ गया। उसने कहा—अच्छा इनकी तलाशी तो ले लो।

वजीर जानता था—हीरा पानी बन गया है। उसने इधर-

उधर की तलाशी ली और जाकर बादशाह से बोला—अन्नदाता, बहुत तलाश करने पर भी हीरे का पता नही चला। ऐसी बडी और बढिया चीज पर फरिश्ते भी आशिक हो जाया करते हैं। मुमकिन है कोई फरिश्ता ही उसे उडा ले गया हो। खैर, हीरा गया सो गया। अब नौकरो को सख्त हिदायत कर दी जाय कि उसके गुम होने की खबर बाहर न पहुच सके। बादशाह की स्वीकृति से वजीर ने नौकरो को बुला कर कहा—हीरा तुम्ही लोगो मे गायब हुआ है। फिर भी तुम्हें जहाँपनाह माफी बख्शते है। मगर याद रखना, हीरा गायब होने की खबर अगर बाहर गई तो सारा कसूर तुम्हारे ही सिर मढा जायगा और तुम्हारी खाल उतरवा ली जायगी।

सभी नौकर मन ही मन वजीर के प्रति कृतज्ञ हुए, कि वजीर साहब ने आज हम लोगो को बचा लिया। इधर बादशाह बजीर के प्रति उपकृत थे, कि हीरा तो चला ही गया था, वजीर ने बदनाम होने से बचा लिया। यह अच्छा हुआ।

इसके बाद बादशाह ने कहा—हीरा तो गया, अब वह व्यापारी आएगा तो क्या करना होगा?

वजीर—व्यापारी आपको हीरा दे गया था। वह तो अपने हीरे की कीमत चाहेगा ही और उसे मिलनी भी चाहिए।

बादशाह—ठीक है। उसे पूरी कीमत मिलनी चाहिए।

दूसरे दिन जौहरी बना हुआ कारीगर फिर दरबार मे आया। वजीर ने उससे कहा—'तुम्हारा हीरा बादशाह सलामत को पसन्द आ गया है। अपने ईमान से उसकी कीमत बताओ।'

कारीगर—मैं उस हीरे को ईरान, अफगानिस्तान, तुर्की, आदि कई मुल्को में ले गया हूँ। उसकी कीमत एक लाख पाँच हजार लगी है। मैं हिन्दुस्तान के बादशाह की बहुत तारीफ सुन कर यहाँ आया हूँ, कुछ अधिक पाने की उम्मीद से। अगर बाद-

शाह सलामत इससे कम देंगे तो मैं इन्कार नही करूंगा और अधिक देंगे तो उनका बडप्पन समझूंगा।

वजीर साहब की राय से एक लाख आठ हजार देना तय किया गया। कारीगर यह रकम लेकर खुशी-खुशी अपने घर चलता बना।

कारीगर फिर वजीर के घर पहुचा। उसने वजीर से कहा - इन रुपयो का क्या किया जाय ?

वजीर— यह रुपया तुम्हारी कारीगरी से मिला है, सो तुम्हीं रक्खो।

कारीगर—'इसमे मेरा क्या है ? यह तो आपकी ही बुद्धि-मत्ता और दया से मिला है।' अन्त में वजीर और कारीगर ने आपस मे कोई समझौता किया और रुपया रख लिया गया।

यह दृष्टान्त है। पुण्य की कारीगरी से बना हुआ यह मनुष्य शरीर मिश्री के हीरे के समान । यह शरीर मिश्री के समान ही कच्चा है—ज़रा से पानी से गल जाने वाला। चक्रवर्त्ती और वासुदेवों के शरीर भी गल गये तो दूसरों के शरीर की क्या चलाइ है ? इसका गलना तो निश्चित है ही, लेकिन किसी महात्मा रूपी वजीर के द्वारा, परमात्मा की सेवा में इसे समर्पित कर दिया जाय और वहीं जाकर गले तो कैसा अच्छा हो ! अगर यह शरीर तप और शील की आराधना मे काम आवे तो इससे अच्छा और क्या उपयोग हो सकता है ? अतएव इस बात का विचार करो कि जो वस्तु तुम्हें प्राप्त हुई है, उसका सदुपयोग किस प्रकार किया जा सकता है ?

९६ : कर्तव्य पालन

एक सेठ थे जिनका नाम मोतीलाल था। उनकी दो पत्नियाँ थी। एक बडी, दूसरी छोटी। छोटी ने विचार किया, बडी सेठानी की मौजूदगी में आई हू इससे प्रगट है कि बडी ने पति की सेवा में किसी प्रकार की कमी की है। ऐसा न होता, वह पति का मनोरंजन करती रहती, पति की सेवा मे कुछ भी त्रुटि न होने देती तो पति मुझे क्यो लाते ? अतएव मुझे सावधान रहना चाहिए मुझे ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिससे तीसरी के आने का अवसर उपस्थित हो।

छोटी सेठानी ने बडी सेठानी के कार्यों की देखभाल की। बडी सेठानी एक मोटी-सी गद्दी पर बैठ कर हाथ मे माला ले लेती और 'मोतीलाल सेठ, मोतीलाल सेठ' कह कर अपने पति के नाम की माला जपा करती। यह देखकर छोटी ने सोचा—इस प्रकार पति का रजन होता तो मेरे आने का अवसर ही क्यों आता ? सेठजी को इसमे सन्तोष नहीं हुआ इसीलिए मुझे लाये हैं। तब क्या मैं भी बडी की भांति माला लेकर उनका नाम जपने बैठूं ? नहीं। मैं तो सीधी-सादी एक बात करूंगी। वह यह कि सेठजी के काम मे अपना काम! सेठजी की खुशी में अपनी भी खुशी। जिस कार्य से सेठजी को प्रसन्नता होती है उसी से मैं प्रसन्नता का अनुभव किया करूंगी। इसके अतिरिक्त वे आज्ञा दें उसे शिरोधार्य कर लेना। उनका काम पहले से ही कर रखना, जिससे उन्हें कभी मेरा अपमान करने का मौका न मिले।

दोनो सेठानियां अपने-अपने तरीके से चलने लगीं। एक दिन सेठ मोतीलाल जल्दी मे घबराये हुए से घर आये। दरवाजे के नज-

दीक पहुचते ही उन्होंने पानी लाने के लिए पुकार की। उनकी पुकार सुनकर बडी सेठानी कहने लगी—'न जाने इनकी कैसी समझ है। मैं इन्हीं के नाम की माला फेर रही हू और यह स्वयं उसमे विघ्न डाल रहे है। इतनी दूर चल कर आये है, तो यह नहीं बनता कि दो कदम आगे चले आवे और हाथ से भर कर पानी पीलें। यह तो करते नही और मुझ से कहते हैं—पानी लाओ। पानी लाओ। भला मैं अपने जाप को कैसे खडित करू ?'

मन मे इस प्रकार कह कर बडी सेठानी अपने स्थान से न हिली, न डुली और ज्यो की त्यो बैठी-बैठी माला सरकाती रही। उधर छोटी सेठानी आवाज सुनते ही दौडी और उसी समय पानी लेकर हाजिर हो गई।

सेठ ने छोटी सेठानी की तरफ नजर फैकी और पानी लेकर अपनी प्यास बुझाई। जैसे ही सेठ भीतर घुसा तो देखा— बडी सेठानी बैठी-बैठी उन्ही के नाम की माला जप रही है। बडी सेठानी ने सेठ को आते देखा तो अपना स्वर ऊचा कर दिया। अब वह तनिक जोर से 'मोतीलाल सेठ' मोतीलाल सेठ' कह कर जाप जपने लगी।

उधर छोटी सेठानी ने हाथ जोडकर प्रेम के साथ कहा—'भोजन तैयार है, पधारिये। भोजन का समय भी तो हो चुका है।'

आपके घर मे ऐसा हो तो आपका चित्त किस पर प्रसन्न होगा ?

'छोटी पर !'

पद्मिनी अपने 'पियु' को नही भूलती, इसे स्पष्ट करने के लिए यह दृष्टान्त दिया गया है। इस दृष्टान्त मे दोनों स्त्रियां अपने पति को नहीं भूलतीं, पर दोनो में से पति को प्रिय कौन होगी ?

'काम करने वाली !'

ईश्वर के भजन के विषय में भी यही बात है। ईश्वर का

भजन करने वाले भी दो प्रकार के होते हैं। एक बडी सेठानी के समान ईश्वर के नाम की माला फेरने वाले और और दूसरे ईश्वर की आज्ञा की आराधना करने वाले। इन दोनों भक्तो में से ईश्वर किस पर प्रसन्न होगा ?

'आज्ञा की आराधना करने वाले पर !'

मैं यह नहीं कहता कि माला फेरना बुरा है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि प्यास का मारा सेठ तो पानी की पुकार करे और सेठानी बैठी-बैठी उसी के नाम की माला जपे। क्या इस प्रकार की क्रिया विवेकशून्य नहीं है ?

ईश्वर की आज्ञा की अवहेलना करके, उसके नाम की माला जप लेने मात्र से कल्याण नही हो सकता।

कदाचित् कोई यह कहने लगे कि मोतीलाल सेठ की बडी सेठानी यदि सचित्त पानी पिलाती तो उसे पाप लगता। इसी कारण उसने पानी नहीं पिलाया होगा। इस सम्बन्ध मे इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि जो इस पाप से बचेगा वह मोतीलालजी की स्त्री भी न कहलाएगी। वह तो ससार सम्बन्धी समस्त व्यवहारों से विमुख होकर आत्म-कल्याण मे ही तत्पर रहेगी जो उच्चतर स्थिति मे जा पहुंचता है वह तो जगत् से नाता तोड लेता है और जगत् से नाता तोडकर भी सभी से नाता जोडता है। अर्थात वह सकुचित विचारो की परिधि से बाहर निकल आता है। सेठ के दिये वस्त्राभूषण पहनकर बनाव-सिंगार करना, गाडी पर बैठना, सेठ के नोकरों पर हुक्म चलाना' ससार सम्बन्धी भोग-विलास करना, इन सबके लिये तो पाप का विचार न करे और सेठ के पानी मांगने पर भी पाप के विचार से उसे पानी न देना निरी आत्म-वंचना नही तो और क्या है ? क्या यह धर्म का उपहास नहीं है ?

४७ : निष्काम सेवा

सच्चा सेवक वह है जो स्वामी के कहने पर ही सेवा नहीं करता वरन् स्वामी पर ऐसी जिम्मेवारी डालता है कि उसे सेवा करानी ही पड़े।

वन-गमन करते समय रामचन्द्र को नदी पार करने का काम पड़ा। आपकी दृष्टि मे तो नाव खेने वाला नीच है, लेकिन उसकी नाव में बैठकर नदी पार करते समय वही नाविक कितना प्यारा लगता है, इसे कौन नही जानता ?

तो रामचन्द्र ने जाकर निषाद से कहा—भाई, हमें पार उतार दो।' निषाद मन में सोचने लगा—'यह मोहिनी मूर्ति कौन है ? कैसा यह पुरुष है, कैसी नारी है। और क्या ही सौम्य इसका भाई है।

मन ही मन इस प्रकार सोच कर निषाद ने पूछा—'मैंने सुना है, दशरथ के पुत्र रामचन्द्र वन को आये हैं। क्या तुम्हीं तो राम नहीं हो ?'

राम—हां भाई, राम तो मैं ही हूँ।

निषाद— मैं इन्हें तो पार उतार दूंगा, पर तुम्हें न उतारूंगा।

राम—क्यों ? क्या हम इतमे अधम हैं ?

निषाद—अधम तो नहीं हो, पर एक अवगुण तुम में अवश्य है।

राम—वह कौन-सा ?

निषाद—मैंने सुना है, तुम्हारे पांव की धूल यदि पत्थर से लग जाती है तो वह पत्थर भी मनुष्य बन जाता है। जब पत्थर

भी मनुष्य बन जाता है, तो मेरी नाव तो लकडी की ही है। तुम्हारे पैर की धूल अगर इसे छू गई और यह भी मनुष्य बन गई तो मेरी मुसीबत हो जायगी। मै कैसे कमा कर खाऊँगा ? तुम्हारे पैर मे रज तो लगी ही होगी और वह नाव से लगे बिना रहेगी नहीं। इसलिए मैं तुम्हें पार नही उतारने का।

राम—तो क्या मैं तैर कर नदी पार करूँ ? अगर बीच मे थक जाऊँ तो डूब मरू ?

निषाद—नही, तैर कर मत जाओ। जिसके पाँव की रज से पत्थर भी मनुष्य बन जाता है- उसे डूबने कैसे दूँगा ?

इतना कह कर निषाद ने लकड़ी की कठोती ला कर राम के आगे रख दी बोला—अगर आप नाव पर चढ़ कर पार जाना चाहते हैं तो इसमें पैर रख दीजिए। मैं अपने हाथों से आपके पाँव धो लूँगा और यह विश्वास कर लूँगा कि आपके पाँवों मे धूल नहीं रही, तब नाव पर चढा कर पार पहुँचा दूँगा। हाँ, यह ध्यान रहे कि दूसरे किसी को मैं आपके पैर न धोने दूँगा। नहीं तो सम्भव है, रज रह जाय।

तुलसीदासजी की रामायण का यह वर्णन है। निषाद यह सब बातें इस मतलब से कह रहा था कि उसे रामचन्द्र की सेवा करनी थी और राम अपनी सेवा किसी से कराना नही चाहते थे। वे वनवासी थे, अतएव यथाशक्य स्वावलम्बी रहना चाहते थे। पर निषाद ने यह कह कर रामचन्द्र को पैर धुलाने के लिए विवश कर दिया। भक्तजन ऐसे ही उपायो से अपने स्वामी को सेवा कराने के लिए विवश कर देते हैं।

निषाद ने राम, लक्ष्मण और सीता, इन तीनो को बैठा कर बड़े प्रेम मे पाँव धोये। इसके पश्चात् उसने उन्हें नाव मे बैठने को कहा। उसने सोचा—चलो, यह पानी भी बड़े काम का है। इसमें वह रज है जिससे पत्थर भी मनुष्य बन जाता है।

पैरों का वह धोन (धोवण) लेकर निषाद अपने घर गया। उसने घर वालों से कहा—लो, यह चरणामृत ले लो। आज बड़े पुण्य से यह मिला है। इस चरणामृत मे वह रज है जिससे पत्थर भी मनुष्य बन जाता है। पेट मे पहुच कर यह रज न जाने क्या गुण करेगी ?

इधर राम ने सोचा—सेवा-भक्ति किसे कहते हैं, यह लक्ष्मण को सिखाने का अच्छा अवसर है, जिससे लक्ष्मण को अभिमान हो जाय। यह सोचकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—देखो, निषाद क्या कर रहा है ? हम लोगों को बिलम्ब हो रहा है।

रामचन्द्र के आदेश से लक्ष्मण निषाद के घर गये। वे निषाद से कहने लगे—भाई, चलो, विलम्ब हो रहा है।

निषाद ने कहा—अभी ठहरिये। हम प्रसाद बांट रहे हैं। जब सब ले लेंगे तब आएंगे।

लक्ष्मण ने सोचा—मैं समझता था, रामचन्द्र का बड़ा भक्त मैं ही हूँ, पर निषाद ने मेरा अहकार चूर कर दिया। इसकी भक्ति के सामने तो मेरी भक्ति नगण्य-सी हो जाती है। राम की सेवा करने मे मुझे तो कुछ आशा भी हो सकती है पर निषाद को क्या आशा है ? भैया ने मुझे यहाँ भेज कर मेरी आँखें खोल दी हैं। शायद उन्होंने इसी उद्देश्य से मुझे यहा भेजा है। यहाँ आकर मैंने जाना कि निषाद जो सेवा-भक्ति कर रहा है, मैं उसका एक अश भी नही कर सकता।

निषाद आया सीता, राम और लक्ष्मण उसकी नाव मे बैठ कर नदी पार गये। रामचन्द्र निषाद के सौजन्य की प्रशसा करते जाते थे, पर निषाद अपनी प्रशसा की ओर ध्यान न देता हुआ भक्ति-रस में डूब रहा था।

रामचन्द्रजी जब दूसरे किनारे पहुच गये तब बड़े सकट में पड़े। वे सोचने लगे—निषाद ने इतनी सेवा की है और बिना

बदला दिये किसी की सेवा लेना उचित नही है। लेकिन इसे दें क्या ? क्षत्रियो का यह धर्म है कि सेवा का प्रतिपादन अवश्य दे। मगर देने को कुछ भी नहीं है !

जब कोई देना चाहता है मगर पास मे कुछ न होने से दे नहीं सकता, तब हृदय कितना सतप्त होता है, यह बात भुक्तभोगी ही भली-भांति समझ सकता है। रामचन्द्र ऐसी ही गहरी चिन्ता मे थे कि—

सिय पिय-हिय की जाननिहारी।
मणि मुंदरी निज दीन्हि उतारी ॥

सीता को अपने स्वामी के हृदय मे होने वाले सताप का पता चला। वे समझ गई कि पति इस समय सकट और संकोच मे हैं। पति यो तो सकटों से घबराने वाले नही हैं, किन्तु यह सकट तो धर्म-सकट है। जब सीताजी राम के साथ वनगमन के लिए तैयार हुई तो वे भी अपने सब आभूषण घर पर ही उतार आई थी, सिर्फ एक अगूठी उगली में रख ली थी। इस समय सीताजी ने बिना कहे सुने ही अगूठी राम को सौंप दी। रामचन्द्र सीता की प्रशसा करने लगे। पत्नी हो तो ऐसी हो !

आज तो पति भी अपना कर्त्तव्य भूले हुए हैं और पत्नियां भी आभूषणो के लोभ मे पडकर अपना कर्त्तव्य बिसर बैठी हैं। मगर राम की यह कथा पति-पत्नि का आदर्श आज भी सामने उपस्थित करती है।

राम निषाद को यह अंगूठी देते हुए बोले—भाई, अपनी उतराई ले लो।

निषाद—उतराई देकर क्या आप मुझे जातिभ्रष्ट करना चाहते हैं ?

राम—इससे जातिभ्रष्ट कैसे हो जाओगे ?

निषाद—अगर नाई-नाई से बाल बनवाई के पैसे ले तो वह

जाति से च्युत कर दिया जाता है। धोबी, धोबी से धुलाई व
तो वह जाति से अलग कर दिया जाता है। वे लोग अ
वालों का काम करने वाले से मजदूरी नही लेते। फिर मैं अ
लू ? आपका और मेरा पेशा तो एक ही है। जो काम
हू वही आप भी करते हैं। ऐसी अवस्था मे मैं आपसे अपन
श्रमिक नही ले सकता। इससे तो मुझे जाति से भ्र
पडेगा।

राम—भाई, तुम्हारा और मेरा एक ही पेशा कैसे ?
बात ही कुछ निराले ढग की होती है।

निषाद—मैं अपनी नाव में बैठा कर नदी से पार
हूँ और आप अपनी नौका पर चढा कर लोगों को ससार
उतारते हैं। पार उतारना दोनो का ही काम है। अगर
से उतराई ले लूंगा तो फिर आप मुझे क्यो पार करें
एक बात हो सकती है। अगर आप बदला दिये बिना
सकते तो अच्छा-सा बदला दीजिए। मैंने आपको नदी से
दिया है, आप मुझे भव-सागर से पार कर दीजिए। बस
हो जायगा।

तात्पर्य यह है कि सेवा करने वाले में निष्कामत
चाहिए। जो सेवक निष्काम होता है, वेलाग रहता हैं, उस
के वश में सभी हो जाते हैं, भले ही वह ईश्वर ही क्यो
इसके विपरीत लालच के वश होकर सेवा करने वाले मे एक
की दीनता रहती है। वह अपने आपको ओछा, हीन अ
मुखापेक्षी अनुभव करता रहता है। निष्काम भावना से सेव
बनती है और कामना सेवा का दूषण बन जाती है।

४८ : ढोंग

एक ठाकुर अपनी पत्नी की बहुत प्रशंसा किया करता था। वह कहता ससार मे सती स्त्रियाँ तो और भी मिल सकती हैं पर मेरी स्त्री जैसी सती दूसरी नही है। कभी-कभी वह सीता, अजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ कहता। उसके मित्रो मे कोई सच्चे समालोचक भी थे।

एक वार एक समालोचक ने कहा—ठाकुर साहब ! आप भोले हैं और स्त्री के चरित्र को जानते नही हैं। इसी कारण आप ऐसा कहते हैं। तिरिया-चरित को समझ लेना साधारण बात नही हैं।

ठाकुर ने अपना भोलापन नहीं समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समालोचक ने कहा—कभी आपने परीक्षा की है या नही ?

ठाकुर—परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरी स्त्री मुझसे इतना प्रेम करती है, जितना मछली पानी से प्रेम करती है। जैसे मछली बिना पानी जीवित नही रह सकती उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नही रह सकती।

समालोचक—आपकी बातो से जाहिर होता है कि आप बहुत भोले हैं। आप जब परीक्षा करके देखेंगे तब सचाई मालूम होगी।

ठाकुर—अच्छी बात है, कहो किस तरह परीक्षा की जाय ?

समालोचक—आज आप अपनी स्त्री से कहिए कि मुझे पांच-सात दिन के लिए राजकीय काम मे बाहर जाना है। यह कह कर आप बाहर चले जाना और फिर छिप कर घर मे बैठ रहना।

उस समय मालूम होगा कि आपकी स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है। आप अपने पीछे ही स्त्री की परीक्षा कर सकते हैं। मौजूदगी में नहीं।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया। स्त्री से उसने कहा—तुम्हे छोडने को जी नही चाहता, मगर लाचारी है। कुछ दिनो के लिए तुम्हे छोडकर बाहर जाना पडेगा। राजा का हुक्म माने विना छुटकारा नही।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता और आश्चर्य के साथ कहा—क्या हुक्म हुआ है ? कौन-सा हुक्म मानना पडेगा ?

ठाकुर—मुझे पाँच-सात दिन के लिए बाहर जाना है।

ठकुरानी—इतने दिनो मे तो मैं छटपटा कर मर ही जाऊगी। आप राजा से कह कर किसी दूसरे को अपने बदले नहीं भेज सकते ?

ठाकुर—लेकिन ऐसा करना ठीक नही होगा। लोग कहेंगे, स्त्री के कहने मे लगा है। मैं यह कहूँगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नहीं छूटता ? ऐसा कहना तो बहुत बुरा होगा।

ठकुरानी—हाँ, ऐसा कहना तो ठीक नही होगा। खैर जो होगा देखा जायगा।

इतना कह कर ठकुरानी आँसू बहाने लगी। उसने अपनी दासी से कहा—दासी, जा। कुछ खाने-पीने के लिए बना दे, जो साथ में ले जाया जा सके।

ठकुरानी की मोह पैदा करने वाली बातें सुन कर ठाकुर सोचने लगा—मेरे ऊपर इसका कितना प्रेम है !

ठाकुर घोडी पर सवार होकर कोस दो कोस गया। घोडी ठिकाने बाँधकर वह लौट आया और छिपकर घर मे बैठ गया।

दिन व्यतीत हो गया। रात हो गई। ठकुरानी ने दासी से कहा—'ठाकुर गया गाम, म्हाने नी भावे धान।' अभी रात ज्यादा

है। जा, पास के अपने खेत से दस-पाँच साँठे ले आ, जिससे रात व्यतीत हो।' दासी ने सोचा—'ठीक है। मुझे भी हिस्सा मिलेगा।' वह गई और गन्ने तोड लाई। ठकुरानी गन्ना चूसने लगी।

ठाकुर छिपा छिपा देख रहा था उसने सोचा—मेरे वियोग के कारण इसे अन्न नहीं भाता। मुझ पर इसका कितना गाढ़ा प्रेम है।

ठकुरानी पहर रात तक गन्ना चूसती रही। गन्ना समाप्त हो जाने पर वह दासी से बोली—अभी रात बहुत है। गन्ना चूसने से भूख लग आई है। थोड़े नरम-नरम बाफले तो बना डाल! देख, घी जरा अच्छा लगाना हो!

दासी ने सोचा—चलो ठीक है। मुझे भी मिलेंगे। दासी ने बाफले बनाये और खूब घी लगाया। ठकुरानी ने बाफले खाए। खाने के थोड़ी देर बाद वह कहने लगी—दासी, बाफले तूने बनाये तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नहीं लगे। यह खाना कुछ भारी भी है। थोड़ी नरम-नरम खिचड़ी बना डाल।

दासी ने वही किया। खिचड़ी खाकर ठकुरानी बोली—तीन पहर रात बीत गई। अभी एक पहर और बाकी है। थोड़ी लाई (धानी) सेक ला। उसे चबाते-चबाते रात बितायें! दासी लाई सेक लाई। ठकुरानी खाने लगी।

ठाकुर बैठा-बैठा सब देख-सुन रहा था। वह सोचने लगा—पहली ही रात मे यह हाल है तो आगे क्या-क्या नहीं हो सकता! अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है। यह सोचकर वह अपने घोडे के पास लौट आया। घोड़े पर सवार होकर घर आ पहुंचा।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया—'होकम' पधार गया है। ठकुरानी ने कहा—'होकम' पधार गया! अच्छा हुआ।

ठाकुर से वह बोली—अच्छा हुआ, आप पधार गये। मेरी तकदीर अच्छी है। आखिर सच्चा प्रेम अपना प्रभाव दिखलाता ही है।

ठाकुर—तुम्हारी तकदीर अच्छी थी, इसी से मैं आज बच गया। बड़े संकट में पड़ गया था।

ठकुरानी—ऐं, क्या संकट आ पड़ा था ?

ठाकुर—घोड़े के सामने एक भयंकर सांप आ गया था। मैं आगे बढ़ता तो सांप मुझे काट खाता। मैं पीछे की ओर भाग गया, इसी से बच गया।

ठकुरानी—आह ! सांप कितना बड़ा था ?

ठाकुर—अपने पास के खेत के गन्ने जितना बड़ा भयानक था।

ठकुरानी—वह फन तो नहीं फैलाता था ?

ठाकुर—फन का क्या पूछना है ! उसका फन बाफला जैसा बड़ा था !

ठकुरानी—वह दौड़ता भी था ?

ठाकुर—हां दौड़ता क्यों नहीं था ! ऐसा दौड़ता था जैसे खिचड़ी में घी।

ठकुरानी—वह फुंकार भी मारता होगा ?

ठाकुर—हां, ऐसे जोर का फुंकार मारता था जैसे कढ़ेले में पड़ी हुई धानी सेकने के समय फूटती है !

ठाकुर की बातें सुनकर ठकुरानी सोचने लगी—यह चारों बातें मुझ पर ही घटित हो रही हैं ! फिर भी उसने कहा—चलो, मेरे भाग्य अच्छे थे कि आप उस नाग से बच कर घर लौट आये !

ठाकुर—ठकुरानी, समझो। मैं उस नाग से बच निकला मगर तुम सरीखी नागिन से बचना कठिन है।

ठकुरानी—क्या मैं नागिन हूं ! अरे बाप रे ! मैं नागिन

हो गई ? भगवान् जानता है, सब देव जानते हैं। मैंने क्या किया जो मुझे नागिन बनाते हैं।

ठाकुर—मैं नही बनाता, तुम स्वय बन रही हो ! मैं अपने मित्रो के सामने तुम्हारी तारीफ बघारता था, लेकिन सब व्यर्थ हुआ !

ठकुरानी—तो बताते क्यों नहीं, मैंने ऐसा क्या किया है ? मैं आपके बिना जी नही सकती और आप लाछन लगा रहे हैं।

ठाकुर—बस रहने दो। मैं अब वह नही जो तुम्हारी मीठी बातो मे आ जाऊ। तुम मुझसे कहा करती थी—तुम्हारे वियोग मे मुझे खाना नहीं भाता और रात भर खाने का कचूमर निकाल दिया !

ठकुरानी की पोल खुल गई। साराश यह है कि ससार मे इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रियाँ भी हैं और पतिव्रताएं भी हैं। पति के प्रति निष्कपट भाव से अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रियाँ भी मिल सकती है और मायाविनी भी मिल सकती है। ससार मे अच्छाई भी है और बुराई भी है। प्रश्न यह है कि हमे क्या ग्रहण करना चाहिए ? किसको अपनाने से हमारा जीवन उन्नत और पवित्र बन सकता है ?

९९ : समभाव

सामायिक को समझने वाला एक परिवार था। ऐसे परिवार के बालको में सहज ही धर्म के सस्कार पड जाते हैं। उस परिवार मे जन्मी हुई एक कन्या का विवाह हुआ। उस लडकी की रग-

रग में धर्म की भावना भरी थी। वह समझती थी कि मुझे विवाह आदि सांसारिक कृत्य तो करने ही पडते है, लेकिन यह संसार सदा साथ देने वाला नही है। साथ देने वाला तो एक मात्र धर्म ही है।

विवाह के बाद लडकी सुसराल गई। उसने देखा—मेरी सुसराल के सब लोग उदास हैं। उसने सोचा—और घरो मे नयी बहू आने पर प्रसन्नता का पार नही रहता, लेकिन इस घर में तेरे आने पर उदासी छाई हुई है। इस उदासी का क्या कारण होगा? मैं अब इस घर की सदस्या हो गई हू। मेरा कर्त्तव्य है कि घर वालो के सुख-दुख को जानूँ और दुख हो तो उसे दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न करूँ। ऐसा विचार कर उसने अपने साथ की दासी से कहा—सासूजी से पूछो कि आज घर में किस बात का दुःख है? दासी गई और कारण पूछा।

सासू समझदार थी। उसने सोचा—हम तो दुखी हैं ही, नई आई बहू को क्यो दुखी करें? यह सोचकर उसने दासी से कहा—बहू से कह दो कि तुम्हारी ओर का कोई दुख नहीं है। दुख का कारण तो और ही है। तुम अभी यह जानकर चिन्ता में क्यो पडती हो? अगर तुम जान भी गई, तो भी कुछ प्रतिकार नही होगा। इसलिए हमारा दुख हम ही को भोगने दो।

बहू स्वार्थी स्वभाव की नही थी। उसने यह नहीं सोचा कि अपनी ओर का दुःख नही है, बस, चलो छुट्टी पाई। अब हमें चिन्ता करने का क्या प्रयोजन है? बहू ने दासी को भेज कर फिर कहलाया—अगर कहने से कुछ नही होता तो इस तरह रोने से भी कुछ नही होता। रोने से दुख मिटता नही है, प्रत्युत बढ़ता है। आखिर कहिए तो सही कि दुख क्या है? कौन जाने कोई उपाय निकल आवे।

सासू ने समझा—यह बहू कुछ और तरह की मालूम होती

है । आखिरकार धर्मात्मा के घर की बेटी है । वह स्वय बहू के पास आई और बोली—और कुछ दु ख नही है । इस मोहल्ले में एक बुढ़िया रहती है । उसका स्वभाव बडा लड़ाईखोर है । वह चाहे जब, चाहे जिससे लड़ती थी । इसलिए यह ठहरा दिया है कि वह नित्य एक घर से लड़ लिया करे । सयोगवश आज अपने घर की बारी है । आज ही तुम आई और और आज ही वह न जाने क्या-क्या बकेगी ! इसी विचार के कारण उदासी छाई हुई है ।

सासू की बात सुनकर बहू ने कहा—इस जरा-सी बात के लिये इतनी भारी चिन्ता ! आप सबने उसकी आदत बिगाड दी है, नही तो वे माजी क्यो लडती ? आप न लडने का उपाय करती तो वे लडना छोड देती । आज लडाई का सब काम मुझे सौंप दीजिए । मैं सब ठीक कर लू गी । मैं इसका मन्त्र जानती हू ।

सासू ने कहा—'भले ही । मगर होशियार रहना । तुम नई आई हो और वह बड़ी लडने वाली हैं । उससे कोई जीत नहीं पाता ।'

बहू बोली—'चिन्ता न कीजिए ।'

बहू घर के दरवाजे मे बिछौना डालकर बैठ गई । उधर बुढिया ने सोचा—आज लडाई का अच्छा मोका हैं । आज ही नई बहू आई है और आज ही उस घर से लडने की बारी आई है । उसने यह भी सुना कि नई बहू ही उससे लडने को तैयार हुई है । यह सुनकर उसे और भी खुशी हुई । वह खान-पान से निवृत्त होकर, हाथ मे लकडी ले वहां आ पहुची । आते ही उसने कहा— तू कैसे गये-बीते घराने की है कि इस तरह दरवाजे में बैठकर मुझ बुढिया से लडने को तैयार हुई है ।'

बहू को इस बात पर सहज ही क्रोध आ सकता है । मगर वह सामायिक को जानती थी ? उसे क्रोध नहीं आया । उसने यह भी नहीं कहा कि लडने मैं आई हू या तू आई है ? पर उसने कुछ नहीं कहा । तब बुढिया कहने लगी—रांड अब बोलती भी

नही है ! कैसी चुप्पी मार कर बैठ रही है ! लेकिन वहू हँसती-हँसती सुनती ही रही । तब बुढिया चिल्लाई—यह बेशर्म हँस रही है । बडी निर्लज्ज है ! फिर भी बह कुछ न बोली । जब बुढिया धीमी पडती तब वह खास कर फिर हस देती । बुढ़िया का पारा फिर गर्म हो उठता । शाम तक यही क्रम चलता रहा । जब शाम हो गई तो दासी ने कहा—जीमने का समय हो गया है । रात होती है । चल कर जीम लो । वहू ने कहा—यही भोजन ले आओ । यही जीम लेंगे ।

दासी भोजन ले आई । बहू ने बुढिया को भोजन की ओर इशारा करके कहा—आओ, माजी, भोजन करलें । बहू का इतना कहना था कि बुढिया गर्ज उठी—मैं क्या भूखी मरतीहूँ ! क्या मुझे कुत्ती समझा है !

बहू ने धीमे से कहा—मनुहार करना मेरा काम था सो मैंने कर लिया । जीमना, न जीमना आपकी मर्जी की बात है ।

बहू भोजन करने लगी । बुढिया बोली—कितनी बेशर्म है यह चण्डी, कि मेरे सामने ही खा रही है ! इस प्रकार वह बड-बडाती रही । बडबडाते उसकी आंते चढ़ गई । वह बेहोश होकर गिर पडी । बहू ने उसी समय दासी को बुलाया और बुढिया को भीतर ले लेने को कहा । दोनो ने मिलकर उसे उठा लिया । घर के भीतर ले गई । पानी छिडका । बुढिया फिर होश में आ गई । तब बहू ने पूछा—सासूजी, अब आपकी तबीयत ठीक है न ! आपका यह वृद्ध शरीर और इतना ज्यादा कष्ट उठाना पडा ! अगर मैंने सम्भाला न होता तो न जाने क्या होता ? अब आप क्रोध मत किया करो - आज मैंने जो उपाय किया है, वह मुहल्ले के सब लोग जान गये हैं । आप इसी तरह लडती रही तो वर्ष भर के बदले छह महिने में ही मर जाओगी । मरने के बाद न जाने कौन-सी गति मिलेगी । इसलिए अपनी सेवा का सौभाग्य

मुझे दो। एक सासू के बदले दो की सेवा करके मुझे दुगुनी प्रसन्नता होगी।

बुढिया की आँखें खुल गईं। उसने सोचा—यह बहू कुछ और ही तरह की है। उसने कहा—बहू ! तू ठीक कहती है। भला, मैं अकेली कब तक लड सकती हूँ ! सामने लडने वाला हो तो जोश भी आता है और विश्राम भी मिल जाता है। इस तरह जोश चढा-चढा कर ही लोगो ने मुझे लडना सिखाया है।

बहू की मधुर बातें सुनकर बुढिया को शांति मिली। वह उसी के घर रहने लगी। बहू ने उसकी तन-मन से सेवा की। बुढिया ने बहू को अपने धन की स्वामिनी बना दी। सब जगह बहू की तारीफ होने लगी। झगड़े के समय लोग उसे मध्यस्थ बनाने लगे। मुहल्ले की अशान्ति मिटी और शान्ति का वातावरण फैल गया।

बहू सामायिक मे नहीं बैठी थी। फिर भी उसने सामायिक का फल पाया या नहीं ? इस प्रकार कहीं भी, किसी भी अवस्था में, समभाव रखने से सामायिक का फल अवश्य प्राप्त होता है।

५० : लेश्या

जैन शास्त्रों में मानसिक भावों के लिए लेश्या का निरूपण किया गया है और उनकी शुद्धता-अशुद्धता को देख कर विशिष्ट ज्ञानियों ने उनके कृष्ण, नील आदि छह भेद भी बताये हैं। उत्त-राध्ययन और प्रज्ञापना सूत्र में लेश्याओ का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। वहाँ उनके वर्ण, गन्ध, रस आदि का भी निरूपण किया है।

जिसके मन में जैसे विचार होते हैं, वैसे ही परमाणु उसके आ चिपटते हैं। जिसके मन में किसी की हत्या करने की भावना होगी, उसके काले और काले में भी अत्यन्त भद्दे पुद्गल आ चिपटेंगे। तात्पर्य यह है कि खोटे परिणाम होने पर रंग भी खोटा हो जाता है।

विज्ञान की अनेक उपयोगी बातें जैन शास्त्र में पहले ही बतला दी गई हैं, लेकिन आज वह बातें शास्त्र के पन्नों में ही पड़ी हुई है। यह हम लोगों की कमजोरी या उपेक्षा है। आज धर्म-शास्त्र को गहराई से अध्ययन करने वाले और साथ ही विज्ञान के पारगत पंडित हमारे यहां नहीं हैं। अतएव उन सब शास्त्रीय बातों पर यथेष्ट वैज्ञानिक प्रकाश नहीं पड़ता।

लेश्याएँ छह हैं— (१) कृष्ण (२) नील (३) कापोत (४) पीत (५) पद्म (६) शुक्ल। इनमें से जब कोई मनुष्य कृष्ण लेश्या को त्याग कर नील लेश्या में आता है, तब शास्त्र-कारों के कथनानुसार वह कापोत लेश्या की अपेक्षा अधिक अशुद्ध है, मगर कृष्ण लेश्या की अपेक्षाकृत अधिक उदारता और शुभ विचार आ गये हैं। लेश्या के परिणामों की तरतमता समझाने के लिए एक उदाहरण इस प्रकार है—

छह आदमी एक साथ जा रहे थे। उन्हें भूख लगी तो वे इधर उधर दृष्टि दौड़ाने लगे। उन्हें एक फला हुआ आम का वृक्ष दिखाई दिया। सब ने आम खाने का निश्चय किया। यहाँ तक सबके विचारों में समानता है, मगर आगे उनके विचारों में अन्तर पड़ जाता है। छहों में इस प्रकार वार्तालाप होने लगा।

पहले ने कहा—अपने पास कुल्हाडी भी है और अपन इतने आदमी हैं कि दो-दो हाथ मारते ही आम का पेड़ कट कर गिर जायगा। तब हम लोग मन चाहे आम खा लेंगे।

थोड़े-से आम खाने हैं, मगर परम्परा तक वृक्ष काट गिराने

से कितनी हानि होगी, इस बात का विचार इस आदमी को नही है।

दूसरे आदमी ने कहा—यह वृक्ष न जाने कितने दिन मे लगकर तैयार हुआ है, अतएव इसे काट डालना ठीक नहीं है पेड तो हम लोगो को खाना नही है। आम खाने हैं। आम मोटी मोटी डालियाँ काटने से भी मिल सकते है। इसलिए यह डालियाँ काट लेनी चाहिए।

तीसरे ने कहा—पहले आदमी की अपेक्षा तुम्हारा कहना ठीक है, लेकिन वास्तव में तुम्हारा कहना भी ठीक नहीं। बडी-बडी डालियाँ काटने से लकडियो और पत्तों का ढेर लग जायगा।

आम छोटी-छोटी डालियों मे लगे हैं, इसलिए छोटी डालियाँ ही काटनी चाहिए। इससे लकडियो और पत्तो का ढेर भी नही लगेगा और अगले वर्ष तक वह डालियाँ फिर फूट निकलेगी।

चौथे ने कहा—तुम्रारी बात भी ठीक नही जचती। छोटी-छोटी डालियाँ काटने से भी लकडी व पत्तों का ढेर हो जायगा और दूसरों को लाभ न पहुचेगा। हमे फल खाने से मतलब है, इसलिए फलो के गुच्छे ही तोड लो।

पाँचवें ने कहा - यह भी स्वार्थबुद्धि की बात है। फल खाना क्या तुम्ही जानते हो, दूसरे नहीं? अगर तुम्हारी ही तरह पहले आने वालों ने विचार किया होता, सब कच्चे-पक्के फल तोड लिए होते तो आज तुम्हें ये फल कहाँ से मिलते! इसलिए कच्चे फल रहने दो। पके-पक्के तोड लो।

छठे ने कहा—औरों से तुमने ठीक कहा है, पर आम का यह वृक्ष बड़ा है। इसमे पके फल बहुत अधिक है। हम लोग सभी फल नही खा सकेंगे। फिर सब पके फल तोडने से क्या लाभ है? तुम लोग जितने फल खा सको उतने ले लो। उससे अधिक लेने का तुम्हें क्या अधिकार है? आम का वृक्ष प्रकृति से ही

इतना उदार है कि वह पके फल अपने ऊपर नहीं रखता । सर्व-साधारण के उपभोग के लिए उन्हे त्याग देता है । सो तुम नीचे गिरे हुए पके फलो से ही काम चला सकते हो । अधिक फल बिगाड़ने से क्या लाभ है ?

यहाँ छहों आदमियों के विचार आम खाने के होने पर भी छह प्रकार के विचार हुए । इसी प्रकार ससार के मनुष्य भी छह प्रकार के होते हैं । कई अपने आराम के लिए दूसरो की जड काट देते हैं और कई दूसरों को हानि न पहुचाते हुए अपनी जीविका का निर्वाह कर लेते हैं । अपने थोडे से स्वार्थ के लिए महा आरम्भ करना और दूसरों को हानि पहुचाना कृष्ण लेश्या है । इसके पश्चात् ज्यों-ज्यो आरम्भ कम होगा, दूसरे की दया होगी, हृदय मे उदारता होगी त्यो-त्यों लेश्या भी शुद्ध होती जायगी । कृष्ण लेश्या से निकलने पर नील लेश्या, और नील लेश्या से निकलने पर कापोत लेश्या होती है । कापोत लेश्या से ऊँचे उठने पर तेजो (पीत) लेश्या, तेजो लेश्या से पद्म लेश्या और पद्म लेश्या से भी ऊपर शुक्ल लेश्या होती है । तेजो लेश्या से धार्मिकता आरम्भ होती है । इन लेश्याओ के भी अवान्तर भेद अनेक हैं, परन्तु मुख्य भेद यही हैं । लेश्याओ का यह वर्णन सुनकर आप अपनी कसोटी कीजिए । देखिए, आप किस लेश्या मे हैं और किस प्रकार शुद्धता बढ़ाकर आत्म-शुद्धि प्राप्त करनी चाहिए ।

५१ : जीते जी पुनर्जन्म

एक साहसी और चतुर चोर ने एक बार राजा के महल

मे प्रवेश किया । चोर के प्रवेश करते ही सयोगवश राजा जाग उठा । राजा को जागा देख चोर सिर से पैर तक कॉप उठा । उसने सोचा—पकड़ मे आ गया तो मारा जाऊँगा । कहीं छिपने की जगह न देख वह सिर पर पैर रख कर भागा । राजा ने भी चोर को देख लिया था । राजा ने विचार किया कि मैं चोर को न पकड़ सका तो मेरी बड़ी बदनामी होगी । सिपाहियों को आवाज देने, बुलाने और समझाने का समय नहीं था । अतएव राजा ने स्वय चोर का पीछा किया । आगे-आगे चोर और पीछे-पीछे राजा दौड़ा जा रहा था ।

राजा को चोर का पीछा करते देख सिपाही भी दौडे । अपने पीछे राजा को और सिपाहियों को दौडते देख चोर की हिम्मत जाती रही । मगर पकड मे आते ही प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा, इस विचार से वह रुक नहीं सका । कुछ और आगे भागा । मगर उसके पैरों ने जबाब दे दिया । इतने मे ही श्मशान आ गया । चोर ने सोचा—आज प्राण बचना कठिन है, फिर भी अन्त तक बचने का प्रयास तो करना ही चाहिए । अगर इस श्मशान मे मैं मुर्दे की की तरह पडा रहूं तो सम्भव है राजा मुझे मरा समझ कर छोड दे । बस, बचाव का एक ही उपाय है कि मुर्दे का स्वांग बना लूँ ।

चोर श्मशान मे जाकर पड़ गया । मृतक की भाँति अपनी नाडियों को सकुचित करके उसने ऐसा दिखावा किया, मानो वह सच-मुच ही मर गया हो । इतने मे राजा और सिपाही भी वहाँ जा पहुचे । चोर को जमीन पर पड़ा देख सिपाहियों ने कहा—महा-राज, देखिए तो सही, चोर आपके डर से गिर पड़ा और मर गया है ।

राजा ने कहा—अच्छी तरह जाँच करो यह मरा नहीं होगा, ढोंग कर रहा होगा ।

सिपाही चोर को इधर-उधर लुढकाने लगे, पर यह तो ठीक मुर्दे की तरह निश्चेष्ट ही बना रहा।

आपत्ति मनुष्य को अपूर्व शिक्षा देती है और बहुत बार उन्नत भी बनाती है। राम को वनवास न करना पडा होता तो उन्हें कौन जानता? भगवान् महावीर ने आपत्तियाँ सहन न की होती तो उनका नाम कौन लेता? कैसे उनकी उन्नति होती?

तो राजा को विश्वास नही हुआ कि चोर वास्तव में मर गया है। उसने सिपाहियों से कहा—अच्छी तरह जाँच करो। कपट करके पड़ा होगा।

सिपाहियों ने उसे मारना पीटना शुरु किया तो चोर के शरीर मे से लोहू वहने लगा। फिर भी उसने जरा भी चूँ-चाँ नहीं की। तनिक भी नहीं कराहा। चुपचाप पड़ा रहा।

राजा ने कहा—है पक्का! इतनी मार खाने पर भी चुपचाप पड़ा है। मर जाने का ढोंग करता है और हमारी आँखों मे धूल झोंकना चाहता है! मर गया होता लोहू कैसे निकलता? मरे शरीर मे से लोहू निकलता ही नही है।

इसके बाद राजा ने एक सिपाही को बुला कर कहा—धीरे से उसके कान मे कह दो कि राजा ने तेरा अपराध क्षमा कर दिया है। ढोंग करके क्यों वृथा मार खाता है?

अपने अपराध को क्षमा करने की बात सुनते ही चोर उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड कर राजा के सामने पहुचा। उस समय राजा, अपने मन मे सोच रहा था—'यह चोर मेरे भय से मुर्दा बन गया तो मुझे साक्षात मृत्यु के भय से क्या करना चाहिए?' इस प्रकार विचार करके राजा ने चोर से पूछा—तू मुर्दा सरीखा बन कर क्यों पड़ा था?

चोर—अन्नदाता, आपके भय से ही मैंने ऐसा किया था।

राजा—इतनी मार खाने के बाद भी तू बोला क्यों नहीं?

चोर—जब मैंने मुर्दा बन जाने का ढोंग किया था तो कैसे बोलता ?

राजा—तब तो तू बड़ा भक्त मालूम होता है ?

चोर—महाराज, मैं भक्त नहीं हूँ। मैंने तो आपके भय से ही मुर्दा का स्वांग बनाया था।

राजा—जैसे मेरे डर से तू जमीन पर पड गया था, वैसे संसार के भय से डरे और पूरा स्वांग बनावे तो तेरा कल्याण ही हो जाए !

चोर—दयानिधान, मैं ऐसी बातें नही जानता। ऐसा ज्ञान मुझे नहीं है, आपको ही है।

राजा—ज्ञान तो आत्मा मे बहुत है, पर उसे प्रकट करने के लिए जीवन नीतिमय और धर्मयुक्त होना चाहिए। मैंने तेरा यह अपराध क्षमा कर दिया है, मगर यह जानना चाहता हूँ कि अब तेरा क्या विचार है ? इस पापमय आजीविका का त्याग करना है या नही ?

चोर—इस प्रश्न की आवश्यकता ही नहीं रही महाराज ! चोर के रूप मे तो मैं तभी मर चुका जब मैंने मुर्दे का स्वांग बनाया था अब आपके सामने एक गरीब भलामानस खडा है। मैं रूखी सूखी खाकर अपना गुजर कर लूंगा, पर अनीति का धन्धा नही करूंगा। आपने क्षमा दन्ड देकर मेरा जीवन बदल दिया है। मैंने आज नया जन्म धारण किया है।

क्षमा, दया और सहानुभूति के कोमल शस्त्रों की मार गजब की होती है।

५२ : निरन्वय नाश

एक मनुष्य ने दूसरे मनुष्य पर अदालत में दीवानी दावा किया। वादी और प्रतिवादी अदालत मे उपस्थित हुए। वादी को प्रतिवादी से कुछ रकम लेनी थी, जो उसने कर्ज के रूप में प्रतिवादी को दी थी। प्रतिवादी पहले तो टालमटूल करता रहा, कल दूंगा, परसों दूंगा, सुबह दूंगा आदि। मगर उसने अन्त मे देने से इन्कार कर दिया। तब वादी को विवश होकर दावा करना पड़ा। जब दोनों अदालत में उपस्थित हुए और न्यायाधीश ने प्रतिवादी से पूछा—क्या तुम यह रकम देना स्वीकार करते हो? तब वह बोला—वादी का दावा झूठा है। इसने मुझे कोई रकम नही दी और मैंने इससे कोई रकम नही ली है।

प्रतिवादी के द्वारा उपस्थित किया हुआ लेख-पत्र न्यायाधीश के सामने था। उसने पूछा—इस कागज पर तुम्हारे हस्ताक्षर हैं। इसमे कर्ज लेना स्वीकार किया गया है। क्या वह झूठा है?

प्रतिवादी—ससार के सभी पदार्थ नाशवान् है। क्षण क्षण नष्ट होते जाते हैं। आत्मा भी नाशशील है। जो पहले क्षण में है वह दूसरे क्षण मे नही रहता। ऐसी स्थिति मे देने वाला और लेने वाला—दोनो ही अब नही रहे। जिसने दिया था, वह देते ही नष्ट हो गया और जिसने लिया था वह लेते ही समाप्त हो चुका। अब मैं यह रकम क्यो चुकाऊँ?

न्यायाधीश ने सोचा—यह मनुष्य दार्शनिक मान्यताओं के बहाने दूसरे की रकम पचा लेना चाहता है। इसे सही शिक्षा मिलनी चाहिए। यह सोचकर उसने पूछा—तुम किसके मकान में रहते हो?

प्रतिवादी—मेरा निजी मकान है।

न्याया०—उसे कब बनवाया था ?

प्रतिवादी—लगभग दस वर्ष पहले।

न्याया०—(वादी से) तुम इनके मकान पर अपना अधिकार कर लो। उस मकान के मालिक यह नही है। जिसने उसे बनवाया था, वह तो बनवाते ही नष्ट हो गया है। वह अब नहीं रहा। इन्होंने दूसरे के मकान पर कब्जा कर रखा है!

प्रतिवादी यह सुनकर घबराया। उसने दीनता दिखलाते हुए कहा—हुजूर, ऐसा मत कीजिए। जो रकम इनकी देनी है वह मैं अभी अदालत में ही चुका देता हूँ।

न्यायाधीश—ठीक है, अभी गिनकर दे दो।

प्रतिवादी ने लाचार होकर सारी रकम चुकत कर दी। तब न्यायाधीश ने वादी से कहा—अब उस मकान पर कब्जा सरकार का रहेगा।

प्रतिवादी भौंचक होकर रह गया। न्यायाधीश ने मुस्कराते हुए कहा—जिसने रकम चुकाई वह दूसरा था। तुम दूसरे हो। आत्मा तो क्षण-क्षण मे बदलता रहता है न? इसलिए उस मकान बनवाने वाले तुम नही हो, कोई भी जीवित नहीं है। इसलिए वह मकान सरकार का होगा। यही नही, तुम्हारी पत्नी और सन्तान छीन ली जायगी, क्यो कि तुम, जो इसी वक्त नये उत्पन्न हुए हो, उसके पति या पिता नहीं हो।

प्रतिवादी की अक्ल ठिकाने आ गई। उसने गिड़गिड़ाते हुए क्षमा मांगी और प्रतिज्ञा की अब किसी को दर्शनशास्त्र के नाम पर ठगने की कोशिश नही करूंगा।

आत्मा का निरन्वय नाश मान लिया जाय तो ससार का व्यवहार एक भी क्षण नही चल सकता।

५३ : माँ बाप सावधान

एक विधवा बुढिया को अपना इकलौता लडका बहुत प्यारा था। अपने भविष्य की उससे बडी आशाएँ थी। वह समझती थी कि मेरे पति के वश मे वही एकमात्र आशा की किरण है। विधवा का यह पुत्र बडा लाडला था। उस पर किसी का दवाव नही था, इस कारण वह स्वच्छन्द हो गया।

एक दिन वह किसी दुकानदार के यहाँ पहुँचा। दुकानदार ऊंघ रहा था। मौका पाकर वह कुछ पैसे चुरा लाया। घर आकर उसने वे पैसे अपनी माँ को दे दिये। माँ पैसे देखकर बहुत राजी हुई और पूछने लगी—ये पैसे कहाँ से लाया है? लडके ने सच-सच बता दिया। माँ ने कहा—ठीक किया, और उसे चोरी करने के इनाम स्वरूप कुछ बतासे दिये।

लडके की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने मन में सोचा—माँ को मेरा यह काम पसन्द आया है। इसलिए तो मुझे उसने इनाम दिया है। धीरे-धीरे वह ज्यादा चोरी करने लगा। वह जैसे-जैसे बडा होता गया, तैसे-तैसे बडी चोरियाँ करने लगा।

पाप का घडा जब भर जाता है तो फूटे बिना नही रहता। इस कहावत के अनुसार वह लडका एक दिन चोरी करते पकडा गया। एक चोरी पकडी गई तो कई चोरियो का भेद खुल गया। राजा ने विचार किया—यह बचपन से ही चोरी करता आया है। इसने बहुत बार चोरी की है। चोरी करना इसकी आदत में शामिल है और यही इसका धन्धा है। इसे फाँसी की सजा मिलनी चाहिए।

राजा ने उसे फाँसी की सजा सुना दी। जल्लाद उसे फाँसी

देने के लिए ले चले । तमाशा देखने के लिए बहुत से लोग इकट्ठे हो गये । लडका सोचने लगा—मैं पहले चोर नही था । मेरे कुल मे चोरी का धन्धा नही होता था । फिर यह आदत मुझमे कहाँ से आ गई ? यह सोचते-सोचते अपने जीवन की पिछली सारी घटनाएं उसकी आँखो के आगे नाचने लगी । उसे याद आया—पहले-पहल मैंने दुकानदार के पैसे चुराये थे और मां ने मुझे वतासे इनाम दिये थे । उस इनाम ने ही मुझे चोर वना दिया । मेरी माँ ने अगर मेरा उत्साह न वढाया होता और चोरी करने के कारण मेरे गाल पर एक तमाचा जड दिया होता तो आज मुझे फाँसी के तख्ते पर चढने की नौवत क्यों आती ?

फांसी देने से पहले नियमानुसार उससे पूछा गया—'कुछ कहना चाहते हो ? किसी से मिलने की इच्छा है ?' चोर ने कहा-'मैं अपनी माँ से मिलना चाहता हूँ।'

सिपाही उसकी मां के पास गया । सूचना दी – तुम्हारे वेटे को फांसी दी जा रही है । अन्तिम समय मे वह तुमसे मिलना चाहता है । माँ सिपाही के पीछे-पीछे चली । वह चिल्लाती जा रही थी—'हाय वेटा ! मैंने तुझे कितना समझाया कि चोरी मत कर । परन्तु तू ने एक न मानी !' वह जव लडके के पास पहुची तब भी यह कह कर रोने-चीखने लगी ।

इधर लडके ने सोचा—माँ जले पर नमक छिडक रही है । इसी ने मुझे चोर बनाया है और यही अव ऐसा कहती है ? पश्चाताप और क्रोध ने वह पागल हो उठा । क्रोध ही क्रोध मे वह माँ के पास पहुँचा । उस समय उसके पास कोई शस्त्र नहीं था अतएव अपने दाँतो ने ही उसने माँ की नाक काट ली । माँ चिल्लाने लगी—हाय ! मार डाला ! कैसा पापी लडका है कि आप फांसी पर लटकने जा रहा है और ऐसे समय भी मुझे कष्ट दे रहा है ! इसके गुन फांसी पर चढने लायक ही हैं ।

वहाँ जो राजकर्मचारी उपस्थित थे, यह दृश्य देखकर हैरान हो गये। उन्होंने चोर से पूछा— तू ने अपनी माता की नाक क्यो काटी ? चोर ने कहा—'बस, रहने दीजिए। आप कारण न पूछिए। अब मेरी कोई इच्छा नही रह गई। फाँसी देना हो तो दे दीजिए।'

राजकर्मचारियो ने सोचा—इस घटना के पीछे कोई बडा रहस्य अवश्य होना चाहिए। उन्होने उसे फिर राजा के सामने पेश किया। सारा हाल कह सुनाया। तब राजा ने चोर से पूछा—ठीक-ठीक कहो, तुमने अपनी माता की नाक क्यों काटी ?

पहले के लोग राजा और परमात्मा को समान समझते थे। इस कारण वे प्राय राजा के सामने झूठ नही बोला करते थे। मगर आज तो सबसे अधिक झूठ कचहरियो मे ही बोला जाता है।

चोर ने राजा से कहा—'महाराज, मैं चोर नही था, मेरे बाप दादे भी चोर नही थे। अपने पुरखाओं से मुझे चोरी करने के सस्कार नहीं मिले। फिर भी मैं चोर बन गया और आज फांसी के तख्ते पर चढाया जा रहा हूं। इसका कारण यह है कि छुटपन मे नासमझी के कारण मैं एक दिन कुछ पैसे चुरा लाया था। पैसे मैंने अपनी माँ को दिये। माँ ने मुझे चोरी करने के लिए दण्ड देने के बदले इनाम दिया! इसी कारण मैं धीरे-धीरे चोर बन गया। मैंने सोचा—जब चोरी करने के अपराध मे मुझे फांसी मिल रही है तो चोर बनाने के अपराध मे मेरी माता को भी दण्ड मिलना चाहिए। दूसरी माताओ को इससे शिक्षा मिलेगी और वे अपने बेटो को चोर नही बनाएगी।'

चोर की बात सुनकर राजा ने सोचा—इसे अपने किये पर पश्चात्ताप है। चोरी के दुष्परिणाम का इसे भान हो गया है। यह अब सुधर गया है और दण्ड देने का प्रयोजन अपराधी का सुधार करना ही है। ऐसी हालत में इसे प्राणदण्ड देने की आवश्यकता

नही है। फिर राजा ने उससे कहा—'मैं समझता हूँ कि तुमने चोरी की बुराई समझ ली है और आगे कभी चोरी नही करोगे। तुम्हे अपने अपराध का गहरा पश्चाताप हो रहा है। अत. मैं तुम्हे फांसी की सजा से मुक्त करता हूँ।'

माता-पिता, सावधान ! आप कभी अपनी सन्तान के किसी दुष्कर्म का, किसी बुरी आदत का समर्थन तो नही करते ? उपेक्षा तो नही करते ?

५४ : विवेकहीनता

जब मनुष्य मे निज का विवेक न हो तो उसे दूसरे से विवेक सीखना चाहिए। ऐसा करते-करते वह एक दिन स्वय विवेकवान् बन जाता है। कम से कम हानि से तो बच ही जाता है। पर बहुत बार ऐसा होता है कि मनुष्य स्वय अविवेकी होते हुए भी अपने को अविवेकी नही मानता। यह अविवेक की पराकाष्ठा है। ऐसी स्थिति मे वह ऐसे काम कर बैठता है, जिससे भयानक क्षति उठानी पड़ती है।

एक किसान था। उसके प्रान्त मे पानी की वर्षा नहीं हुई तो वह किसी दूसरे प्रान्त मे चला गया। उसे मिहनती देखकर किसी किसान ने अपनी लड़की से उसका विवाह कर दिया। कुछ दिन बाद वह किसान अपने घर वापिस लौटा तो वर्षा हो चुकी थी। उसने बाजरे की खेती की। खेत हरा-भरा हो गया। किसान अपनी स्त्री को लेने के लिए सुसराल गया।

सुसराल वालों ने उसकी मेहमानी करने के लिए खीर और

मालपुवे बनवाये । उस किसान ने कभी मालपुवे नहीं खाये थे । वह असमजस में पडा कि इन्हे किस प्रकार खाया जाय ? सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया—टुकडे-टुकडे करके खाने से मजा जाता रहेगा । पूरा मालपुवा उसने मुँह में डाला और किसी प्रकार खाने लगा । पास मे उसके साले वगैरह जो लोग बैठे थे, हँसने लगे ।

अपने जामाता की मूर्खता देखकर सासू ने दो उगलियां दिखाकर इशारा किया कि कम से कम दो टुकडे करके तो खाओ । पर मूर्ख किसान इस इशारे को उलटा समझा । उसने समझा—एक-एक खाने से नही, दो एक साथ खाने से ज्यादा मजा आता है । अब उसने दो-दो खाने शुरु किये । लोगो ने समझ लिया—यह एकदम गवार है ! आखिर उसे स्पष्ट करके समझाया गया कि टुकडे करके खाना चाहिए ।

किसान को मालपुवे बडे स्वादिष्ट लगे । जब वह अपनी स्त्री को लेकर घर लौट रहा था तो रास्ते में निश्चय करने लगा क घर पहुच कर मालपुवा बनवाऊगा । मालपुवा बनाने की विधि वह सुसराल में सुन चुका था । उनके लिए गेहू की आवश्यकता थी, इसलिए उसने बाजरा की जगह गेहू की खेती करने का निश्चय किया । जब वह घर पहुचा तो बाजरा पकने में कुछ ही दिनों की देरी थी । मगर वह मालपुवा खाने के लिए गेहू बोने को उतावला हो रहा था । उसने अपने पिता से गेहू बोने के लिए कहा । पिता बोला—अपने खेतों मे बाजरे की ही खेती अच्छी होती है । यहाँ के कुओं में इतना पानी भी नही कि गेहूँ सींचे जा सकें ।

मगर मालपुवो के लिए पागल बने उसने कहा—अजी नहीं बहुत दिनों तक बाजरे की खेती की, मगर कुछ भी आनन्द नहीं आया । सारी मिहनत बेकार गई । अब कुछ तरक्की करनी चाहिए ।

पिता बेचारा चुप हो गया।

युवक किसान ने उसी समय बाजरे के खेत को खुदवा डाला और उसमे गेहूँ बो दिये। पर कुएं में इतना पानी कहाँ रखा था ? न बाजरा हाथ आया, न गेहू ही। सारी मिहनत बेकार हुई। खाने के लाले पड गए।

बिना सोचे-समझे काम करने वालों की ऐसी ही स्थिति होती है।

५५ : चमार गुरु

संसार के झगडो में न पडकर, ईश्वर मे याचना करो तो ऐसी चीज की याचना करो कि जिसमे फिर कभी, किसी से, किसी भी प्रकार की याचना ही न करनी पडे। एक दूसरे की दी हुई चीज कैसा अनर्थ करती है, इस सम्बन्ध मे एक दृष्टान्त लीजिए—

एक चमार था। वह जूते बनाया करता था जूते बनाते-बनाते ही वह यह भजन गाया करता—

'तोय मांगी मागिवो न मगतो कहायो।'

अर्थात्—हे प्रभो ! तुझसे मांगने वाला मंगता नहीं है, क्योंकि तुझसे मांगने पर मगतापन ही मिट जाता है।

यह भजन गाता-गाता चमार मस्त हो जाता। जिस जगह बैठ कर चमार सिया करता था, उसके सामने ही एक सट्टे-बाज सेठ रहता था। चमार का भजन सुनकर सेठ की नींद खुल खुल जाती। वह सोचता—यह चमार कितना मस्त है !

एक दिन सेठ ऐसा सोच ही रहा था कि उसी समय उसे

तार मिला—रुई का भाव घट गया है। सेठ यह समाचार पाकर सन्ताप करने लगा। सोचा—कल ही तो माल खरीदा था और आज इतना नुकसान हो गया? इसके बाद उसे किसी दूसरे सौदे मे भी घाटा लग गया। व्यापारी के लिये घाटे की मार बुरी होती है।

सेठ इतनी चिन्ता में पड गया कि करवटें बदलते ही उसकी रात बीतती। उसका मुंह सूखता चला जाता। कभी सरकार को, कभी प्रजा को और कभी गांधी को दोष देने लगता। इस प्रकार दस-पांच दिनो मे ही सेठ की शारीरिक दशा बिगड गई। वैद्य दवा करने आये, मगर चिन्ता की दवा उनके पास नहीं थी। जैसे-जैसे बाजार गिरता जाता, सेठ का दुख बढ़ता और स्वास्थ्य गिरता जाता था। सेठ को सारा ससार सूना दिखाई देने लगा। उसकी दृष्टि में धर्म या ईश्वर कोई नही रहा। पैसे जाते ही धर्म और ईश्वर पर से विश्वास भी चला गया। एक दिन चमार ने फिर गाया—

सुरनर मुनि असुर नाम साहब तो घनेरे।

चमार के गाये हुए इस भजन को सुनकर सेठ को कुछ सान्त्वना मिली। वह सोचने लगा—इस चमार के पास तो कुछ भी नहीं है। और इतना घाटा होने पर भी मेरे पास लाखो का धन मौजूद है। यह कुछ न होने पर भी इतना मस्त रहता है और लाखों की सम्पत्ति होने पर भी मैं रोता हू!

चमार ने सेठ के हृदय में एक कुतुहल पैदा कर दिया। उसने चमार को अपने पास बुलवाया और पूछा—क्या गाते रहते हो चौधरी?

चमार बोला—सेठजी, मेरे काम मे हरकत होती है। काम करने दीजिए।

सेठ—दो घडी बैठो तो सही।

चमार—दो घडी में एक जूता बनता है।

धनिक लोग घण्टो-पहरो ऐश-आराम और साज-सिंगार मे व्यतीत कर देते है। उन्हें जूतो पर पालिश करवाने और बाल-सवारने के लिए ही घण्टो चाहिए। वे आलस्य मे अपना समय व्यतीत करते हैं। चमार जूता बनाता है सो कहते हैं कि अधर्म करता है और स्वय गप्पें मार कर क्या धर्म करते हैं? चमार जूता बना कर अपना पेट भरता है और साथ ही दूसरो के पैरों को आराम पहुँचाता है। पर गप्पो से किसका पेट भरता है? किसे सुख पहुँचता है?

तो सेठ ने चमार से कहा—तुम जो भजन गाया करते हो, उसे एक बार सुना दो।

चमार—भजन मैं वहीं से सुनाऊंगा।

सेठ—भजन तो मैंने कई बार सुना है, यह बताओ कि उसका अर्थ क्या है?

चमार—उस भजन का अर्थ इतना ही है कि ईश्वर ही मेरा दाता है। वही मेरा दुखहरण करने वाला है। दूसरा कोई दुख दूर नही कर सकता।

चमार की बात सुनकर सेठ सोचने लगा—इसकी भावना गजब की है। मेरे पास अब भी लाखों की सम्पत्ति है। फिर भी मैं ईश्वर को कोसता हूं। और एक यह है जो रोज मजदूरी करके खाता है, फिर भी ईश्वर पर अखण्ड विश्वास रखता है। यह चमार क्या मुझसे अच्छा नही है?

बात सेठ की समझ में आ गई। सेठ ने चमार की दया खाई। उसने अपने लम्बे-चौड़े सट्टे के व्यापार को समेट लिया और ऐसा धन्धा करने लगा जिससे खुद को भी शान्ति मिले और दूसरों को भी। थोड़े ही दिनों मे सेठ भी मस्त बन गया। उसे वैद्यों और डाक्टरों की दवा की जरूरत नही रही।

सेठ चमार को अपना उपकारी मानने लगा। वह सोचा

करता जिसने मुझे ईश्वर पर भरोसा करना सिखलाया और जिसने मुझे ऐसी दवाई दी है जैसी कि वैद्य और डाक्टर हजारो रुपया लेकर भी नही दे सकते थे, वह चमार मेरा बड़ा उपकारी है।

लोग ताकत के लिए दवा खाते है, मगर अनुभवी लोगो का कहना है कि जितने आदमी रोग से नही मरते, उतने दवा से मरते हैं।

सेठ ने सोचा—इस चमार का उपकार मानना उचित है। अतएव उसने चमार को बुलवा कर पचास रुपये के नोट उसके सामने रख दिये। उससे कहा—मेरे ऊपर तुम्हारा बड़ा उपकार है, इसलिए यह नोट ले लो। चमार ने प्रथम तो बहुत नाही की, मगर सेठ के बहुत आग्रह करने पर उसने नोट ले लिए।

नोट लेकर चमार अपनी दुकान पर आया। सोचने लगा—इन नोटो को कहाँ रखू ? इस चिन्ता से उसने जल्दी दुकान बन्द करदी और घर चला गया। उसे एकदम पचास रुपये मिल गये। भला उसे क्या कमी रह गई ? घर आकर भी वह इसी विचार मे पड़ा रहा कि इन्हे रखू कहाँ ? कही ऐसा न हो कि चोर ले जावें या बच्चे ही फाड डालें ? आखिर चमड़े के टुकड़े रखने की एक टूटी-सी पेटी मे उसने नोट रख दिये। इससे अधिक सुरक्षित जगह उसके पास थी ही नहीं। रात को वह सोया तो, मगर उसे यही चिन्ता बनी रही कि कही चूहे नोटो को काट न खाए! इस तरह चिन्ता करते करते ही उसकी सारी रात व्यतीत हुई।

सवेरा हुआ। चमार सोचने लगा—रात मे नींद नही आई और ईश्वर के भजन मे भी मन नही लगता। दुकान जाने को भी चित्त नही चाहता। यह सब इन नोटो की ही करामात है! जब तक इन नोटों को मैं अपने घर से निकाल न दूंगा, मुझे चैन नहीं मिलने की। नोट हैं तब भी हाय हाय कराते हैं और कहीं नष्ट हो गए तब भी हाय-हाय कराएंगे। अतएव इन्हें सेठजी को

सौंप देने ही में मेरा कल्याण है ।

वह नोट लेकर सेठ की दुकान पर पहुचा । उसने नोट सेठ के सामने रख दिये और कहा—अपनी चीज आप ही सभालिए।

सेठ ने कहा—यह नोट वापिस लेने के लिए नहीं दिये हैं। तुमने मेरा उपकार किया है, इसलिए यह पुरस्कार में दिये हैं।

चमार—आपका पुरस्कार मुझे नही चाहिए । इसे आप ही सभालिए । मुझे तो भजन मे ही आनन्द मिलता है ।

इसके बाद चमार ने रात वाली समस्त घटना सेठ को सुनाई और अन्त मे कहा—उपकार के बदले यह न देकर हम दोनों ही भगवान् के भजन मे मस्त रहें । इसी मे आनन्द है ।

आखिर चमार ने नोट सेठ की ओर सरका दिये और आप उठ कर चल दिया । उसे ऐसा लगा, मानो सिर पर लदा हुआ भारी बोझ उतर गया है । वह हल्का हो गया और अपनी धुन मे मस्त रहने लगा ।

चमार की इस निस्पृहता का सेठ पर बहुत प्रभाव पडा । वह सोचने लगा—इतनी सम्पत्ति होने पर भी मुझे सन्तोष नही है, और इस चमार को देखो कि न कुछ मे भी कितना मस्त है ! चमार ने प्रत्यक्ष बतला दिया है कि सुख का असली कारण धन नही, चित्त का सतोष है । मैं इतने दिनो तक व्यर्थ ही चक्कर मे पडा रहा !

कुछ दिनो बाद चमार बीमार पड गया । बीमारी मे भी वह उसी भजन को गाया करता और कहता—प्रभो ! अब तो बस तू ही तू है । पहले तो मुझे काम भी करना पडता था, परन्तु अब तो वह भी छूट गया है । मैं यही चाहता हू कि इस बीमारी मे भी मुझे किसी के आगे दीनता न दिखानी पड़े । तेरे प्रति मेरी श्रद्धा अखण्ड और अटल बनी रहे ।

चमार की बीमारी का हाल सेठ को मालूम हुआ । सेठ ने

जाकर उसे देखा तो उस बीमारी में भी वह उसी प्रकार गा रहा है ! घर मे खाने को नही है, फिर भी वह मस्त है और किसी के आगे हाथ नही पसारना चाहता । ओह ! इसकी महानता के आगे मैं कितना तुच्छ हूँ ? सब कुछ होते भी मैं इस दैवी सम्पदा से दरिद्र हू !

सेठ ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि उसके परिवार को किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे । चमार ने ऐसा करने से सेठ को बहुत रोका, पर सेठ ने कहा—मैं तुम्हे भिखारी समझ कर दान नही दे रहा हूँ। यह तो तुम्हारे उपकार का नगण्य उत्तर है। तुमने मुझे धर्म पर स्थिर किया है।

चमार के चित्त में लोभ नहीं था, इसी से वह भक्ति में लगा रहता था । कहा भी है—

कामी कपटी लालची, इनसे भक्ति न होय,
भक्ति करे कोई शूरमा, जाति वर्ण कुल खोय ।

भक्ति वही वीर करेगा, जिसने वर्ण और जाति का अभिमान भी त्याग दिया हो । हरिकेशी मुनि से कौन प्रेम नहीं करता ?

चमार नीरोग भी हो गया और धीरे-धीरे उसकी स्थिति भी सुधर गई । सेठ उसे अपना गुरु समझने लगा और वह भी भक्ति के मार्ग पर आ गया ।

५६ : परमात्म प्रीति

जैसी दृष्टि हराम पै, तैसी हरि पै होय ।
चला जाय वैकुण्ठ मे, पल्ला न पकडे कोय ॥

ससार के पदार्थों मे, नीच कर्मों में जैसी प्रीति है, वैसी प्रीति अगर परमात्मा मे हो जाय तो ईश्वर प्राप्ति मे देरी ही न लगे। हराम से प्रीति छोडकर हरि से प्रीति करो तो बेडा पार है। बहुत-से लोग ढोग के लिए ईश्वर प्रेम का दिखावा करते हैं। पर जो सच्ची प्रीति करते हैं उन्हे ईश्वर मिलता है और जो ढोंग करते हैं उन्हें ढोंग ही मिलता है। ईश्वर की प्रीति कैसी हो, यह समझने के लिए एक स्थूल दृष्टान्त लो —

एक महात्मा नगर के शहरपनाह के किनारे ध्यान मे खडे थे। उस नगरी की एक वेश्या सजधज कर नगर के भीतर रहने वाले अपने किसी प्रेमी से मिलने निकली। मगर नगर का फाटक बन्द हो चुका था। भीतर जाने का दूसरा मार्ग नही था। उसने इधर—उधर देखा तो एक ऊची-सी चीज खडी हुई उसे दिखाई दी। प्रेमी से मिलने की आतुरता मे उसने यही समझा कि यह कोई ठूठ खडा है। उसने उसके ऊपर पैर रखकर ज्यो ही शहरपनाह पर चढना चाहा, त्यो ही महात्मा क्रोधित हो उठे। ध्यान खोलकर उन्होंने कहा—दुष्टे! तुझे दीखता नही कि मैं मनुष्य हू। तू इतनी अधी हो रही है?

महात्मा की बात सुनकर वेश्या सहम गई। उसने मन ही मन कहा—आतुरता मे मैंने इन महात्मा को ठूठ ही समझ लिया था! वह ऊपर से नीचे गिर पडी। महात्मा से बोली—क्षमा कीजिए महाराज! मै समझी थी कि यह कोई ठूठ खडा है।

महात्मा—तुझे इतना गर्व है कि तू मनुष्य और ठूठ को एक ही समझती है! मुझे इतना क्रोध है कि चाहूं तो अभी तुझे भस्म कर दू!

वेश्या ने महात्मा को सन्तोष देना उचित समझा। वह बोली—महाराज, मुझ से तो भूल हुई ही, मगर आप वहां क्या करते थे?

महात्मा—देखती नही, हम साधु हैं। हमे और क्या काम है, परमात्मा का ध्यान लगा रहे थे।

वेश्या—महाराज, ढिठाई क्षमा हो। मैं पूछना चाहती हूँ कि आपका परमात्मा मेरे प्रेमी से बडा है या छोटा?

महात्मा—परमात्मा तेरे प्रेमी से क्या, सारे ससार से बडा है।

वेश्या—मैं तो परमात्मा से अपने प्रेमी को बडा समझती हूँ।

महात्मा—क्यो? कैसे समझती है?

वेश्या—मैं अपने प्रेमी की धुन मे ऐसी मस्त थी कि आपका होना मुझे मालूम नही हुआ, पर आप परमात्मा के ध्यान में थे फिर भी आपको मेरा होना मालूम हो गया! अब आप ही सोचिए आपका परमात्मा बडा है या मेरा प्रेमी? अगर आपका परमात्मा बडा था और आप उसकी धुन मे लगे थे तो लगे रहते। इस झमेले मे क्यों पडे?

वेश्या की बात सुनकर महात्मा विचार में डूब गए। सोचने लगे—वास्तव मे वेश्या ठीक कह रही है। अगर इसके प्रेमी से मेरा परमात्मा बडा है तो उसकी धुन भी बडी होनी चाहिए और उस धुन मे क्यों पता लगना चाहिए कि शरीर पर कौन चढ़ता और कौन उतरता है!

आखिर महात्मा ने वेश्या से कहा—तुम ठीक कहती हो। वास्तव मे मेरा ध्यान पूरी तरह परमात्मा में नही था। जैसा तेरा ध्यान तेरे प्रेमी में है, वैसे ही मेरा ध्यान परमात्मा में लग जाय तो मैं तुझे अपना गुरु मानूंगा। हे प्रभो! यह वेश्या जैसे अपने प्रेमी को तन्मय दृष्टि से देखती है, वेसी ही दृष्टि मेरी भी तुझे देखने मे हो जाय!

तात्पर्य यह है कि जैसा प्रेम दुनियाँ के पदार्थों के प्रति है, वैसा ही प्रेम अगर ईश्वर के प्रति हो जाय तो सिद्धि मिलने में

देर न लगे । सासारिक प्रेम को, वैकारिक प्रेम को ईश्वर की ओर मोड लेना ही मुक्ति का मार्ग है । इसी को साधना कहते हैं ।

५७ : लक्ष्मी

एक सेठ बडे धनवान् और जितने धनवान् उतने ही उदार और जितने उदार उतने ही दानी तथा निरभिमानी थे । रात्रि के समय वह सो रहे थे । पिछली रात्रि के समय एक देवी ने आकर उनसे कहा—सेठ, सोते हो या जागते हो ?

सेठ ने पूछा—कौन है ?

देवी ने उत्तर दिया—मैं हूँ तुम्हारे यहाँ की लक्ष्मी ।

सेठ—क्यो, क्या कहना है ?

लक्ष्मी—मैं यह कहने आई हू कि अब तुम्हारे घर से जाऊँगी ।

सेठ—मेरे यहाँ तुम सात पीढियो से रहती हो, अब क्यों जा रही हो ? कुछ कारण बताओगी ?

लक्ष्मी—एक घर मे रहती-रहती ऊब गई हू । अब कहीं दूसरे घर जाऊगी ।

सेठ—अच्छी बात है । जाती हो तो मैं नाहीं नही करता, परन्तु तीन दिन और ठहर जाओ ।

लक्ष्मी ने तीन दिन और ठहरना स्वीकार किया । सेठ ने विचार किया—आखिर यह लक्ष्मी रहेगी तो है नही, फिर इसके द्वारा मैं कुछ लाभ क्यो न प्राप्त कर लू ? यह विचार कर सेठ ने इन तीन दिनो मे घर में जितनी सम्पत्ति थी, सब जीवरक्षा,

परोपकार आदि में खर्च करके, अपना सब वैभव, घर-द्वार आदि दान कर दिया। अपने घर की सब महिलाओं को अपने-अपने पीहर जाने की सलाह दी। पुत्रों से कह दिया—तुम परदेश या, जहाँ सुभीता और निर्वाह देखो वहा चले जाओ।

सेठ ने लक्ष्मी के वार्तालाप का वृत्तान्त सुनाकर कहा—मैंने तीन दिन के लिए उसे रोका है। तीन दिन के पश्चात् वह निश्चित रूप से जाएगी। इसलिए मैं जो कुछ कर रहा हु, उसमे दुख न मान कर आनन्द मानो। जब समय पलटेगा तब फिर हम सब लोग इकट्ठे हो जाएंगे।

सब अपने-अपने ठिकाने चले गए। सेठ ने अपना सभी कुछ लुटा दिया। तीसरे दिन, पिछली रात के समय लक्ष्मी फिर आई और कहने लगी—'अब मैं जाती हूँ।'

सेठ ने उत्तर दिया – मुझे जो कुछ करना था, कर चुका। अब तुम भले जाओ।

उधर लक्ष्मी गई, इधर सेठ ने सन्तोष के साथ विचार किया—जो भाग्य मे होगा, करेंगे।

अपने सर्वस्व का दान करने से सारे नगर में सेठ की कीर्ति फैल गई थी। वह जिधर जाता, उधर ही लोग उसका आदर सन्मान करते और 'सेठजी' कह कर पुकारते। परन्तु वह कहता—मैं सेठ नहीं रहा। मैं अब गरीब हूँ, अकिंचन हूँ। मगर लोग यह सुनकर उसकी और अधिक इज्जत करते थे।

दो-तीन दिन बीते कि लक्ष्मी फिर आई। उस समय सेठजी निश्चित भाव से किसी धर्मशाला मे सो रहा था। पिछली रात के समय सेठ को आवाज देकर कहा—सेठ, जागते हो या सोते हो? सेठ ने कहा—जागता हूँ, कौन है?

लक्ष्मी—यह तो मैं लक्ष्मी हूँ।

सेठ—कहो, कैसे आई?

लक्ष्मी—मैं फिर तुम्हारे घर आती हूँ।

सेठ—तुम्हें जाने के लिए किसने कहा था ? जो इस प्रकार विना कारण चली जाय, उसे आना ही क्यो चाहिए ? तुम सात पीढ़ियो से मेरे यहाँ रहतीं, फिर चले जाने मे झिझक नहीं हुई ? अब भी क्या भरोसा है ? जिसके स्वभाव मे ऐसी चपलता है उसे रखने से क्या लाभ है ? देखो, अपने लिए और कोई ठिकाना खोजो। मैं इसी हालत मे मजे मे हूँ।

लक्ष्मी—मुझसे भूल हुई, परन्तु अब मैं तुम्हारे यहाँ ही रहूँगी।

सेठ—अच्छा, यह तो बताओ कि इतने दिन कहाँ रहीं और लौट कर मेरे पास ही क्यों आई हो ?

लक्ष्मी—मैं पहले राजा के यहाँ गई वहाँ भण्डार भरे थे पर मुझे सन्तोष नहीं हुआ। वह अन्याय का पैसा था। मैंने विचार किया—अन्याय के इस पैसे मे रहने से मेरी कद्र घट जाएगी। तब वहाँ से चलकर सेठ साहूकारो के यहाँ गई। मगर तुम्हारे सरीखा धर्मात्मा कोई नही मिला। इस कारण मैं फिर तुम्हारे पास आई हू।

सेठ—आई तो अच्छी बात, मगर अब तो मेरे पास घर भी नही है। तुम्हें रखूंगा कहाँ ?

लक्ष्मी—इसकी चिन्ता न करो। मैं जो उपाय बताऊँ सो करो। तुम सुबह जगल जाते हो न ? तो लौटते समय तुम्हें एक साधु मिलेगा। उस साधु को आदर के साथ अपने यहाँ ले आना और खीर या जो भी कुछ हो, खिला कर एक डण्डा मारना। डंडा मारते ही वह सोने का पुरुष बन जायगा। उस पुरुष का सिर मात्र बाकी रख कर सारा शरीर नित्य काट लेना और फिर उसे कपड़े से ढक देना। वह जैसे का तैसा हो जायगा।

सेठ—ठीक है, पर एक बात सुन लो। तुम आती हो, यह

हर्ष की बात है, मगर तुम्हें जाने की इच्छा हो तो कह कर जाना और कहना भी सात दिन पहले। तुम्हें यह बात स्वीकार हो तो मैं तुम्हारे आने का स्वागत करूगा।

लक्ष्मी ने सेठ की यह बात स्वीकार की और अपने स्थान को चली गई।

जो मनुष्य धर्म मे निष्ठा रखता है, उसे किसी भी अवस्था मे दुःख नहीं रहता। और वस्तु पर ज्यों-ज्यो आसक्ति की जाती है, वह त्यों-त्यो दूर भागती जाती है। अगर हर हालत मे मध्यस्थ भाव रखा जाय तो गई हुई वस्तु भी मिल जाती है। कदाचित् न मिले तो भी उसके जाने की पीडा नही होती।

सवेरे सेठ को जगल की ओर से आता हुआ एक साधु मिला। सेठ उसे सत्कारपूर्वक अपने यहाँ ले आया। मित्र के यहां से लाकर उसे भोजन करा चुकने पर ज्यो ही एक लकडी मारी कि बाबाजी स्वर्ण-पुरुष बन गए। सेठजी को सन्तोष हुआ। उन्होंने पैर की तरफ से सोना काट-काट कर घर आदि तैयार करवाए। अपने सब कुटुम्बी-जनो को बुलवा लिया और पहले से भी अधिक आनन्द के साथ रहने लगा।

इस सेठजी के पडोस मे एक और सेठ रहता था। वह था तो मालदार, मगर उसकी प्रकृति दुनियाँ से न्यारी थी। 'चमडी जाय पर दमडी न जाय' यह उसकी जीवन-नीति का मूल-मन्त्र था। वह कभी एक पाई भी दान न देता था।

पूर्वोक्त सेठ और कजूस सेठ की पत्नियो में मित्रता थी। कजूस सेठ की पत्नी ने एक दिन दानी सेठ की पत्नी से पूछा— तुम्हारे पति ने सब कुछ दे दिया था, फिर एक दम इतना ठाठ कैसे हो गया? किस उपाय से इतना धन बरस पडा है? वह उपाय हमें भी बतलाओ न? कहीं चोरी करके तो नही लाये हैं? नही तो उनके साथ तुम्हें और तुम्हारे लड़कों को भी भुगतना

पडे ? तुम्हे न मालूम हो तो सेठजी से पूछ तो लेना।

दानी सेठ की पत्नी ने कहा—बात तो ठीक है। पूछूगी। और उसने घर आकर अपने पति से पूछा—यह धन कहाँ से आ गया ? पहले सेठ ने टालमटूल की । उसने सोचा—स्त्री को गुप्त भेद नहीं बतलाना चाहिए, क्योकि स्त्रियो में प्रायः विवेक नही होता। वे स्वभाव की भोली होती है । दूसरों की बातो मे आकर जल्दी भेद खोल देती है।

सेठ को टालते देख वह बोली—मैं समझ गई। कहीं से चोरी करके लाये हो, इसीलिए तो बतलाते नहीं । पर जब तक न बतलाओ, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूगी।

सेठानी के सत्याग्रह के सामने सेठजी को झुकना पडा । उन्होने बाबा का मिलना, उसे भोजन कराना, डण्डा मारना और उसका स्वर्ण-पुरुष बन जाना, आदि वृत्तान्त कह दिया । सेठानी प्रसन्न हुई और जब अपनी सखी से मिली तो उसने वह वृत्तान्त उसे बतला दिया।

कजूस की सेठानी पहले तो अचरज में पड गई और फिर लोभ में आ गई। उसने सोचा—धनी बनने का कितना सरल और सुन्दर उपाय है । उसने पति से सब हाल कहा और साधु को ले आने की भी सिफारिश की ।

सेठ लोभी तो था ही, ऊपर से पत्नी का दबाव भी पडा। वह सुबह उठा और जगल की ओर से आने वाले एक साधु को ले आया। उसे बडे प्रेम से उत्तम भोजन कराया और उसके बाद पूरी ताकत से एक लट्ठ दे मारा । परन्तु सेठ का दुर्भाग्य समझो कि साधु सोने का पुरुष नही बना। यही नहीं, वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा ।

सेठ ने सोचा— शायद मेरा लट्ठ धीरे से लगा है, इसी कारण यह सोने का नही बना ; अब की बार उसने सारी ताकत लगाकर

लट्ठ लगाया । बाबाजी ने और चिल्लाना शुरू किया । मगर सेठ लोभ मे पागल हो गया था । उसने आगा-पीछा कुछ नही सोचा और जब तक बाबाजी के तन मे प्राण रहे वह लट्ठ पर लट्ठ लगाता ही रहा ! अन्त मे बाबाजी चल बसे ।

बाबाजी की चिल्लाहट पाकर बहुत-से लोग सेठ के घर के सामने इकट्ठे हो गये । उन्होने सेठ को पकड़ा और राजा के पास ले गए ।

राजा ने सेठ को बाबाजी की हत्या करने के अपराध में समुचित दण्ड दिया ।

तात्पर्य यह है कि उस उदार सेठ ने तो दान देकर, अपना सर्वस्व लुटा कर स्वर्ण पुरुष बनाया था, मगर कजूस सेठ दान दिये बिना ही स्वर्ण पुरुष बनाने बैठा तो उसकी दुर्गति हुई ! जीवन में उदारता, नीति, ईमानदारी और समभाव होता हैं । तो किसी भी अवस्था में मनुष्य सुखी रह सकता है । ऐसा जीवन बिताने वाले को लक्ष्मी बिना बुलाये प्राप्त होती है ।

५८ : ठसक का रोग

एक सेठ के लडके की सगाई दूसरे सेठ की लड़की के साथ हुई । लडकी वाला अधिक धनवान् था और लडके वाला कम । जो ओछा होता है, वह अपना बडप्पन अधिक दिखलाना चाहता है । अतएव लडके वाले ने सोचा—लडके का विवाह करने जाना हैं तो ठसक से जाना चाहिए । यह सोचकर उसने भीतर चाहे तांबा ही रहा हो, परन्तु सोने के कड़े, कण्ठी, अगूठी आदि गहने बनवाए ।

सेठजी सब गहनों से सज कर और बरात लेकर लड़के की सुसराल गये। कभी अंगूठी पहनी तो थी नहीं, इसलिए अंगूठी पहन कर उनके हाथ कड़े-से हो गए। वह किसी को बुलाने जाएँ तो भी हाथ लम्बे और उंगलियाँ कड़ी करके कड़े और अंगूठियाँ दिखलाते हुए 'पधारो साहब, पधारो साहब' कहते थे।

लड़की वाले ने कहा—हमारे समधी को ठसक रोग हो गया है। मगर इस रोग की दवा मेरे पास है। इनका इलाज कर देने में ही इनका कल्याण है। इस विचार से उसने हीरों का एक कण्ठा गले में डाल लिया और हाथों में हीरों की पहुँचियाँ पहन कर, अपने समधी के समान ही हाथ लम्बे करके उससे कहा—'पधारिये साहब, पधारिए।'

उस कण्ठे और पहुँचियों को देखते ही सेठजी का नूर घट गया। चित्त मलीन हो गया, मानो किसी ने उनका सारा जेवर छीन लिया हो!

विचार कीजिए, उसने पहना था तो इसका दिल क्यों दुखा? इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो कई बातें स्पष्ट हो जाएँगी। मनुष्य का आनन्द गहनों में नहीं है। गहनों में होता तो जो गहने पहले इस सेठ को आनन्द दे रहे थे, वही बाद में काँटे की तरह क्यों चुभने लगते? वास्तव में मनुष्य इस कल्पना में सुख मानता है कि मेरे पास अमुक चीज है जो दूसरों के पास नहीं हैं। लेकिन वही चीज जब दूसरों के पास भी हो जाती हैं तो उसका आनन्द जाता रहता है।

कल्पना कीजिए, किसी बाई के हाथों में चाँदी की चूड़ियाँ हैं। उसके सामने सोने की चूड़ियों वाली एक बाई आ बैठती है। अब चाँदी की चूड़ियों वाली बाई कहेगी—मेरी चूड़ियाँ क्या है, कुछ भी नहीं! और सोने की चूड़ियों वाली की प्रसन्नता का पार न रहेगा। यह अभिमान में डूब जाएगी। वह अपने को सुखी अनु-

भव करेगी। उसी समय हीरों की चूड़ियों वाली एक महिला वहाँ आ पहुचती है। उसे देखकर सोने वाली के सुख पर पानी फिर जायगा उसका मुख हवा हो जायगा। वह अपनी चूड़ियो को कुछ भी नही समझेगी।

यह सब क्या बात है ? सुख कहाँ है ? सोने मे सुख है या मनोभावना में ? ठीक तरह सोचो, विचार करो, समझो। अगर मनोभावना मे ही सुख है तो तुम्हे कहीं भटकना नही है। वह तुम्हारे पास ही है। मृगतृष्णा में क्यों पड़ते हो ?

५१ : हठ

एक मनुष्य काशी गया। जब वह लौटकर आया तो अपनी माँ से कहने लगा—मैंने काशी के सब पण्डितो को हरा दिया।

माँ ने पूछा—कितने पण्डित थे ?

उसने कहा—करीब ५०० होंगे।

मा—कैसे विद्वान् थे ?

बेटा—बड़े बड़े विद्वान् थे, ऐसे कि कुछ न पूछो बात !

माँ—एक दो तो जीतने से बाकी रहे होंगे ?

बेटा—एक भी नही रहने दिया मैंने।

माँ—परन्तु तू पढ़ा तो है नही। उन्हे कैसे जीत लिया ?

बेटा—मैं पढ़ा नहीं तो क्या हुआ ? मुझे जीतने की कला तो पूरी आती है।

माँ—कैसे जीता ?

बेटा—वे सब कुछ-कुछ बोलते रहे, परन्तु मैं यही कहता

रहा कि—तुम झूठे हो और मैं सच्चा हू ।

इस प्रकार वह काशी जीत आया । मूर्ख मनुष्य दूसरों की सुनता नही, समझता नही और अपनी-अपनी हाँके जाता है । उनके हठ को कौन तोड सकता है ?

६० : महल का द्वार

किसी सेठ ने बहुत सुन्दर और बडा विशाल महल बनवाया। एक दिन उस सेठ के महल की ओर से एक महात्मा गोचरी (भिक्षा) के लिए निकले । सेठ ने सोचा—साधुजी आ गए हैं तो इन्हे अपना महल दिखलाऊ । महल देखकर महाराज प्रसन्न होंगे और जगह-जगह उसका बखान करेंगे । महाराज की गति सेठ को मालूम नही थी ।

सेठ महात्मा को अपने महल मे ले गया और वहाँ के ठाट-बाट बताने लगा। महात्मा ज्ञानी थे, इसलिए उन्होने विचार किया कि मकान देखे बिना उपदेश देना ठीक नही ।

सेठ ने बडी प्रसन्नता के साथ महल दिखलाते हुए कहा—देखिए, यह दरीखाना है, यह भोजनगृह है, यह शयनगृह है, यह बैठक है । इसके सामने के झरोखे को म्युनिसिपालिटी ने रोक दिया था, परन्तु मैंने लाखो रुपये खर्च करके झरोखा बनाया ही । यह देखिए, ऊपर चढने के लिए 'लिफ्ट' लगा है । पहले के लोगो को ज्यादा ज्ञान नही था। इस कारण वे चढने के लिए सीढ़ियाँ रखते थे । अब विज्ञान का बोल-बाला है। पैसे तो लगते हैं मगर कितना सुभीता हो गया है ! 'लिफ्ट' पर बैठे कि, ऊपर चढे । और यह धुआँ

निकलने की जगह है । इस प्रकार सेठ ने सारा महल दिखला कर महात्मा से पूछा—कहिए, कोई कसर तो नहीं है ?

साधु को सेठ का महल देख कर क्या आनन्द हो सकता था ? उन्होंने महल के प्रधान दरवाजे की ओर सकेत करके कहा—इसमे एक बात खराब है—यह दरवाजा । यह क्यो रखा है ?

सेठ मुस्कराया । उसने कहा—आखिर आप साधु ही तो ठहरे ! आप मकान का हाल क्या जानें ? दरवाजा न होता तो आते जाते कहाँ से ? साधुजी बोले—कुछ भी हो, परन्तु यह दरवाजा नही रखना था ।

सेठ ने कहा—आप कैसी भोलेपन की बात करते हैं ?

साधु ने गम्भीरता से कहा—मैं ठीक कहता हूँ । किसी रोज लोग इसी दरवाजे से तुझे निकाल देंगे ।

साधु की बात सुनकर सेठ का नशा उतर गया । उसने एक लम्बी-सी साँस लेते हुए कहा—मूर्ख, जहाँ जाता है, उस दरवाजे की तो तुझे चिन्ता नही है और ऐसी भावना मे पडा है जैसे अमर रहेगा ! मैं इस महल मे रहने के लिए तुझे मनाई नही करता, मगर यह कहता हूँ कि उसमे लिप्त न हो जाना । इस दरवाजे को सदा याद रखना कि इसी से तुझे जाना होगा । उस समय इस घर मे रहने वाला कोई भी व्यक्ति तेरा साथ नहीं देगा । तेरा किया हुआ धर्म ही साथ जाएगा । इसलिए जब तू इस महल मे रहे तो अपने मन के महल मे परमात्मा को रखना ।

६१ : पतिव्रता

राम-चरित्र मे दो मित्रो की कथा आई है । दो मित्र थे। उनमे से एक का विवाह हो गया । दूसरे ने उसकी पत्नी को देखा तो वह उस पर मोहित हो गया । उसे खाना-पीना, सोना-बैठना कुछ भी अच्छा नही लगता था । वह दिनो दिन सूखता चला जाता था ।

पहले मित्र ने पूछा—तुम बिना रोग सूखते क्यो चले जाते हो ?

दूसरा मित्र—कुछ भी तो नहीं है । पता नहीं, क्या कारण है ।

पहला—छिपाने का यत्न मत करो । हो सकेगा तो मैं आपकी चिन्ता दूर करने का उपाय करूँगा ।

दूसरे मित्र ने पहले तो टालमटूल की, मगर अन्त मे मित्र का आग्रह देख सच्ची बात कह दी । आखिर मित्र, से कपट तो वह कर नहीं सकता था । कहा भी है—

गुरु से कपट, यार से चोरी,
कै हो अन्धा, कै हो कोढी ।

मित्र के हृदय की बात सुनकर वह सोचने लगा—विचित्र समस्या है ! ऐसे अवसर पर मुझे क्या करना चाहिए ? अन्त में उसने निर्णय किया—मैं अपनी मित्रता निबाहूँगा और देखूँगा कि इसका परिणाम क्या आता है ?

इस प्रकार सोचकर उसने अपने मित्र को तसल्ली देते हुए कहा—धैर्य रक्खो । यही बात है तो मैं अपनी स्त्री तुम्हें दूँगा ।

पहले मित्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । लज्जा और

आश्चर्य के कारण वह अवाक् होकर अपने मित्र की ओर देखने लगा। थोडी देर में सँभल कर उसने कहा—नहीं, ऐसा मत करना।

घर आकर उसने अपनी पत्नी से कहा—मैं जो कहूँगा सो करोगी ?

पत्नी—आज ऐसी शका क्यों ? क्या मैंने कभी आपकी आज्ञा का उल्लघन किया है ?

तब वह बोला—नही, सदा और बात हुआ करती थी, आज और ही बात है !

पत्नी—मैं आपको सावधान देखती हूँ। आप जो आज्ञा देंगे, उचित ही देंगे। फिर मुझे उचित-अनुचित का विचार करने की आवश्यकता ही क्या है ? आप आज्ञा दीजिए, मैं उसका अवश्य पालन करूँगी।

वह बोला—तुम शृङ्गार करके मेरे मित्र के घर जाओ।

पत्नी ने आँखें गडा कर अपने पति के चेहरे की ओर देखा कि कही दिल्लगी तो नही कर रहे हैं ? मगर उसके चेहरे की गम्भीरता ने तत्काल ही उसकी शंका का निवारण कर दिया। तब उसने सोचा - आज पति का प्रेम कुछ निराला ही है। मेरी इज्जत से पति की इज्जत ज्यादा है। फिर न मालूम क्या उदारता दिखलाने के लिए यह आज्ञा दे रहे हैं। वह धर्मसकट में पड गई। वह मन ही मन परमात्मा से प्रार्थना करने लगी—प्रभो ! मुझे रास्ता दिखलाइए। पति की आज्ञा न मानना भी उचित नही है और मानती हूँ तो धर्म-भग होता है। ऐसी अवस्था मे मुझे क्या करना चाहिए ?

अन्त मे उसके हृदय की भावना फूली। उसने विचार किया—मनुष्य चाहे तो किस जगह और किस परिस्थिति में अपने धर्म की रक्षा नही कर सकता ? और पति से कह दिया—आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं अवश्य जाऊँगी। पर आप

विचार कर लें। आप स्वयं धर्मात्मा हैं और बुद्धिमान् हैं। अत मुझे अपनी बुद्धि दौडाने की आवश्यकता नही है।

पति ने कहा—अच्छी बात है, जाओ।

पति की आज्ञा मानकर स्त्री चली। पति भी पीछे पीछे चला कि देखें, क्या होता है! स्त्री ने जाकर मित्र के किवाड खटखटाए। मित्र ने पूछा—कौन?

स्त्री—जिसे याद करते हो वही।

वह आश्चर्य-युक्त होकर उठा और उसने किवाड खोले। मित्र की स्त्री को देखकर उसके आँसू निकल पडे। वह सोचने लगा—दुनियाँ मे मेरे समान कोई नीच नही है, जिसने अपने मित्र की स्त्री की माँग करते हुए सकोच नही किया! मैं कितना पामर हूँ! पशुओं से भी गया बीता! और वह मित्र? धन्य है, वह मनुष्य नहीं, देवता है!

उसने आई हुई मित्र-पत्नी को बिठलाया। इसी समय उसका मित्र भी आ पहुचा। उसने आते ही अपने मित्र की जो मुखमुद्रा देखी तो समझ गया कि कुछ गजब होने वाला है!

पहला मित्र उन्हें वहीं बैठा छोड पिछवाडे की ओर गया और फाँसी का फन्दा लगा कर प्राण त्यागने को तैयार हो गया। दूसरे मित्र को पहले ही आशका हो गई थी। वह भी पिछवाडे की ओर पहुँचा। मित्र को फाँसी लगाते देख उसने फाँसी का फँदा काट दिया और कहा—पागल हुए हो? यह क्या कर रहे हो?

उसने हडबडा कर कहा—तुम यहाँ क्यो आये? मुझे पापी को मरने देना ही योग्य है।

दूसरे मित्र ने कहा—मैं जान गया था कि तुम इधर क्यों जा रहे हो। खैर, जो हुआ सो हुआ। इसमें मेरी और तुम्हारी कोई विशेषता नही है। विशेषता है इस पतिभक्ता स्त्री

की, जो सब पुरुषों को भाई के समान समझती हुई भी मेरी आज्ञा मान कर तुम्हारे पास चली आई ।

पहले मित्र ने कहा—यह मेरी माता है । इसने मुझे नया जीवन दिया है ।

स्त्री ने कहा—मैंने परमात्मा से रास्ता दिखलाने के लिए प्रार्थना की थी । उसने रास्ता दिखलाया और मैं चली आई । मैं जानती थी कि मेरा हृदय जब पवित्र है तो उसके सामने अपवित्रता टिक ही नही सकती ।

पतिव्रता की शक्ति के सामने दानव भी हार मानते हैं ।

६२ : 'आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता'

किसी किसान ने एक खेत बोया । खेत मे पक्षियो ने जुआर के पौधों में घोसला बना लिया । घोंसले मे पक्षी भी रहते थे और पक्षियो के बच्चे भी रहते थे । बच्चे उडने नहीं लगे थे, इस कारण पक्षिणी चुग्गा ला-लाकर उनके मुंह में देती ।

एक दिन किसान अपने खेत की मेड पर आया । उसने आशा और सन्तोष की नजर सारे खेत पर डाली । फिर सोचा—खेत पक गया है, अब काट लेना चाहिए । यह सोचकर उसने खेत के रखवाले से और अपने लड़के से कहा—देखो भाई, खेत अब पक गया है । काटने मे ढील करना ठीक नही है । आज फलाँ गाँव से पाहुने आने वाले हैं । उनकी सहायता से कल खेत काट डालेंगे ।

पक्षी के बच्चों ने किसान की बात सुनी । वे बुरी तरह

घबराए । पक्षिणी के आते ही वे रोकर कहने लगे मां, अब इस जगह रहना ठीक नही है । जल्दी से जल्दी यहां से उड चलना चाहिए ।

पक्षिणी ने पूछा—क्यो ? क्या बात है ?

बच्चे बोले – मां, आज खेत का मालिक किसान आया था । वह कहता था—कल पाहुनो की सहायता से खेत को काटेंगे । खेत कल कट जायगा । अपन यहां रहकर क्या करेंगे ? यहां रहे तो खेत के कटते समय मुसीबत भी आ सकती है । उड चलना ही ठीक है ।

पक्षिणी ने हंसकर कहा - बच्चों, तुम भोले हो । तुम फिक्र मत करो । मजे मे पडे रहो । पराये भरोसे खेत नही कटा करते ।

बात भी ऐसी ही हुई । खेत नहीं कटा ।

दूसरे दिन किसान फिर आया । उसने रखवाले से फिर कहा—कल पाहुने नही आये और खेत भी नहीं कटा । अब कल गांव के अपने भाई-बन्दों को बुला लेंगे और उनकी सहायता से खेत काट लेंगे ।

पक्षी के बच्चों ने फिर यह बात सुनीं और पक्षिणी के आते ही कहा—मां, कल नही उडे तो आज ही उड चलें । कल किसान अपने भाई-बन्दों की सहायता से खेत काटेगा । हम लोगों को पहले से ही चला जाना चाहिए ।

पक्षिणी ने कहा—तुम चिन्ता मत करो । बिना अपने किये कुछ नही होता । अपनी ताकत के बिना कोई मददगार नही होता ।

पक्षिणी ने ठीक ही कहा था । दूसरे दिन भी खेत नहीं कट सका ।

तीसरे दिन किसान फिर आया और कहने लगा—बडी भूल की जो पाहुनों और भाई-बन्दों के भरोसे बैठे रहे । नहीं तो खेत कभी का कट जाता । दूसरों के भरोसे काम नहीं होता । कल

अपन सब घर वाले ही भिड पड़ें और खेत काट लें। लडके तू कल सवेरा होते ही घर के सब लोगों को लेकर आ जाना। और रखवारे, तू भी तैयार रहना। कल खेत अवश्य काट लेंगे।

पक्षी के बच्चों ने फिर किसान की बातें सुनी और अपनी माँ के आते ही कहा—माँ, अब तो उड़ना ही पड़ेगा। किसान ने अपने घर वालों के साथ आकर कल खेत काटने के लिए कहा है।

पक्षिणी ने कहा—हाँ, अब उड चलना चाहिए। किसान ने जब स्वयं खेत काटने का विचार किया है तो जरूर कट जायगा। जो अपनी हिम्मत से काम करता है, वही काम कर पाता है। और पक्षी, पक्षिणी तथा बच्चे उस खेत से उड गए।

किसान पाहुनों और भाई-बन्दों के भरोसे रहा तो उसका काम नही हुआ। वे उसके काम न आये। आज वह स्वयं अपने घर वालो को लेकर भिड़ पड़ा। तब भाई-बन्दो ने देखा कि खेत कट रहा है और हम मदद करने नहीं जाएँगे तो कल हमारी मदद करने कौन आयेगा? यह सोचकर वे भी आ पहुँचे और खेत कट गया।

यह दृष्टान्त है। जब पक्षिणी भी सोचती है कि पराये भरोसे काम नहीं होता तब क्या आप लोगो को नही सोचना चाहिए? आज आप लोग परावलम्बी हैं, आलसी हैं, सब काम नौकरों से ही कराते हैं और खुद काम करने मे असमर्थ हैं। इस मनोवृत्ति से न व्यवहारिक कार्य होता है और न धार्मिक ही हो पाता है। निश्चित समझ लीजिए कि पराये भरोसे काम नही होता। कहावत प्रसिद्ध है—'आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता।'

६३ : वीर

एक सेनापति मुनियो के समीप बैठा था। मुनियों ने साधुता की प्रशसा करते हुए कहा—'वीर पुरुष ही साधु हो सकता है।

सेनापति ने कहा—'आप अपने ही मुख से अपनी प्रशसा कर रहे हैं। अगर आप हाथ मे तलवार लें तो पता चलेगा कि वीरता किसे कहते हैं? आप साधुओ को वीर बतलाते हैं पर जहाँ तलवारों की खडखडाहट होती है वहाँ साधु नही ठहर सकते।

सेनापति की बात सुनकर साधु हँस दिये। फिर बोले—'सेनापति! जोश मे आ जाने से सच्ची बात समझ मे नही आती। शातिपूर्वक विचार करोगे तो साधु की वीरता का पता चल जायगा। अगर एक आदमी अकेला ही दस हजार योद्धाओ को जीत ले तो उसे आप क्या कहेंगे?'

सेनापति—ऐसा होना सभव प्रतीत नही होता, फिर भी यदि कोई दस हजार योद्धाओ को जीत ले तो वह अवश्य ही वीर कहलायगा।

साधु—ठीक है। लेकिन कोई दूसरा आदमी, दस हजार योद्धाओ को जीतने वाले को भी जीत ले तो उसे आप क्या कहेंगे?

सेनापति—उसे महावीर कहना होगा।

साधु—देखो, ससार मे बड़े बडे शस्त्रधारी थे। उदाहरण के लिए रावण को ही समझ लीजिए। रावण प्रचण्ड वीर था। उसने लाखो पर विजय प्राप्त की थी। मगर जिस काम ने उसे भी जीत लिया वह वीर कहलाया कि नही? रावण ने हजारों-लाखो योद्धाओं को पराजित कर दिया, मगर सीता की आँखो को वह न जीत सका। अतएव काम ने पराजित करके उसे नचा डाला। जिसके प्रबल प्रताप के आगे बड़े-बडे राजा-महाराजा नतमस्तक होते

थे, जिसकी प्रचण्ड शक्ति से बड़े-बड़े शूरवीर भी अभिभूत हो जाते थे, वह लाखों को जीतने वाला रावण, अबला कहलाने वाली सीता के आगे हाथ जोड़ने लगा और उसके पैरो मे पड़ने लगा। मगर सीता ने उसे ठुकरा दिया।

यहां प्रश्न खड़ा होता है—वीर कौन था ? रावण या काम ?

सेनापति—काम। काम को जीतना बहुत कठिन है।

साधु—काम लाखो को जीतने वाला वीर है। मगर जो सत्यशाली पुरुष वीर, काम को जीत लेता है उसे क्या कहना चाहिए ? काम-विजय का ढोंग करने की बात दूसरी है, मगर सचमुच ही जो काम को पराजित कर देते हैं उन्हें क्या कहेंगे ? ऐसा महान् पराक्रमी पुरुष 'महावीर' कहलाता है।

साधु अकेले काम को नही जीतता किन्तु क्रोध, मोह, मत्सरता आदि विकारो को भी जीतता है। इस प्रकार इन सब विकारो को जीत लेना क्या साधारण बात है ?

मुनि के स्पष्टीकरण को सेनापति ने सहर्ष स्वीकार किया। उसने कहा—काम, क्रोध, मोह आदि समस्त विकारों को जीत लेना तो वीरता है ही, किन्तु इनमें से एक को जीत लेना भी वीरता है।

६४ : व्यापार की बेईमानी

सुनने में आता है कि कई लोग दो तरह के बाट-पैमाने रखते हैं। एक तो नियत बाट-पैमाने से कम होते हैं, और दूसरे अधिक। जब किसी को कोई वस्तु देनी होती है, तब तो उन बाट-पैमाने से तोलते-नापते हैं जो कम होते हैं और किसी से लेनी होती है, तब उन बाट-पैमाने से तोल नापकर लेते हैं, जो अधिक होते हैं। कई लोग पूरे बाट-पैमाने रखकर भी तोलने नापने में ऐसी चालाकी से काम लेते हैं, कि दी जाने वाली वस्तु तो कम

जावे और ली जाने वाली वस्तु अधिक आवे । तोलने नापने मे किस तरह बेईमानी की जाती है, इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है ।

सग्रामसिह नाम के एक राजपूत सज्जन थे । वे थे तो गरीब, परन्तु थे सत्यभक्त । उनकी स्त्री भी बडी पतिव्रता थीं । दम्पती बडे धैर्य-पूर्वक अपनी गरीबी के दिन काटते थे । गरीबी से घबरा कर सत्य छोडने का तो कभी विचार भी नही करते थे ।

सग्रामसिह की स्त्री, गर्भवती थी । जब प्रसवकाल समीप आया, तब उसने अपने पति से कहा—"सन्तान-प्रसव के पश्चात् ही मुझे अजवायन आदि की आवश्यकता होगी । घर मे अजवायन था तो सही, परन्तु वह कही ऐसी जगह रखा गया है, जो मिलता नही है । ठीक समय पर अजवायन के लिये दौड-धूप न करनी पड, इसलिये कही से एक सेर अजवायन, उधार ले लेते, तो अच्छा होता ।"

पत्नी की बात के उत्तर में सग्रामसिह ने कहा—मैं किसी से उधार लेना अनुचित समझता हूँ । जब पास मे पैसे होगे, तब मोल ले आऊँगा ।

सग्रामसिह की पत्नी ने, फिर प्रार्थना की, अपन गृहस्थ हैं, इसलिए ऐसे समय मे उधार लेने मे कोई हर्ज तो नहीं है । अजवायन की आवश्यकता शीघ्र ही होगी, और पैसों का क्या ठीक है कि कब हाथ मे आवें ? फिर भी यदि आप उधार लाना ठीक न समझे, तो घर का कोई बर्तन बधक रखकर ले आवें ।

घर की एक थाली बधक रखकर अजवायम लाने के लिये, सग्रामसिह बाजार गये । एक दुकान पर जाकर, सग्रामसिह ने दुकानदार से कहा—मुझे एक सेर अजवायन दे दीजिये ।

सग्रामसिह की गरीबी दशा को दुकानदार जानता था, इसलिए उसने—यह समझकर, कि ये अजवायन उधार माँग रहे हैं—सग्रामसिह की बात सुनी-अनसुनी कर दी । सग्रामसिह के दो तीन बार कहने पर भी, जब दुकानदार ने ध्यान नही दिया, तब सग्रामसिह दूकानदार का अभिप्राय ताड गये और पास की थाली दुकानदार को बताते हुए कहा कि मैं उधार लेने नही आया हूँ । उसकी कीमत के वदले यह थाली बधक रखकर अजवायन लेने आया हूँ ।

थाली देखकर, दूकानदार ने सग्रामसिह की बात सुन एक सेर अजवायन तोल दिया, और अजवायन की कीमत के वदले, थाली बधक रख ली ।

कपडे मे अजवायन लेकर, सग्रामसिह अपने घर गये । घर पहुंचने पर, उनकी स्त्री ने उनसे कहा—मैंने आपको अकारण ही कष्ट दिया । घर में रखा हुआ अजवायन मिल गया, अत इस अजवायन की आवश्यकता नही रही । पत्नी की बात सुन कर, सग्रामसिह वैसे ही दूकानदार के यहाँ लौट गये, और उससे कहा क मेरे घर मे अजवायन मिल गया है, इसलिये आप अपना अजवायन लौटा लीजिये । दुकानदार नाराज होकर सग्रामसिह से कहने लगा – मैं, वेची हुई चीज नही लौटाता । अब इस अजवायन का तुम चाहे जो करो ।

सग्रामसिह ने नम्रतापूर्वक दुकानदार से कहा—'आपके अजवायन का कुछ बिगडा तो है नही । अभी ही ले गया और अभी ही लौटा लाया हूँ । मेरे यहाँ जब अजवायन मिल गया तव इस अजवायन को क्या करूँगा ? क्या ठीक है कि पैसे कब हाथ मे आवें, और तब तक एक बर्तन आपके यहा बधक रखा रहेगा, जिसके बिना घर में कष्ट होगा । यद्यपि आपकी कोई हानि तो हुई नही है, फिर भी यदि आप चाहें, तो नुकसान

लोग हाथो से पत्थर डालकर, अपने-अपने घर चले गये।

बादशाह के पास ईसा के नाम की पुकार गई कि ईसा ने पत्थर मारने के लिये आये हुए सब लोगो को भडका दिया, इससे सब लोग अपने-अपने घर चले गये। बादशाह ने, ईसा को पकड मगवाया और ऐसा करने का कारण पूछा।

ईसा ने बादशाह से कहा—आपने इस चोर को पत्थरों से मार डालने की आज्ञा दी है, परन्तु आप अपने हृदय मे भली भाँति विचार करके कहिये कि क्या आप चोर नही हैं ? प्रत्यक्ष मे या परोक्ष मे, सभ्य उपायो से या असभ्य उपायो से, दूसरे के हको को हरण करना ही चोरी है। क्या आप दूसरे के हको को हरण नही करते ? यदि करते है, तो क्या आप चोर नहीं हैं ? ऐसी दशा मे, आप इसे पत्थर मार कर मार डालने की आज्ञा देने के अधिकारी कैसे रहे ? आप पत्थर मार-मार कर चोरी को ही क्यो नहीं मार डालते ? आप अपनी चोरी को तो मारते नही और इस चोर को मार डालने की आज्ञा देते हैं, यह कहाँ का न्याय है ?

ईसा के उक्त कथन का, बादशाह पर भी बहुत प्रभाव पडा। उसने पश्चात्ताप किया और ईसा को छोड देने के साथ ही चोर को भी छोड दिया।

६६ : सभ्य चोरी

कइयों ने, विज्ञापनबाजी को ही चोरी का साधन बना रखा है। पत्रों, हैण्ड-बिलों आदि द्वारा विज्ञापन करके, लोगो से आर्डर

या पेशगी कीमत लेते हैं, परन्तु विज्ञापन के अनुसार न माल ही देते हैं, न कार्य ही करते है। विज्ञापन द्वारा किस तरह चोरी की जाती है, इसके लिये, एक विज्ञापन के विषय मे सुनी हुई बात इस प्रकार है—

एक विज्ञापन बाज ने, मक्खियो से बचने की दवा का विज्ञापन किया। उसने अपने विज्ञापन मे लिखा कि 'केवल १ आने के टिकट भेज देने मात्र से, हम वह दवा भेजते हैं, जिसे भोजन करते समय पास रखने पर, मक्खियें नही सताती।' लोगो ने उसके पास एक एक आने के टिकट भेजे। विज्ञापक ने, उन टिकटों मे से, तीन पैसे के टिकिट तो अपनी जेब मे रखे, और एक पैसे के कार्ड पर, टिकिट भेजने वालों को उत्तर दे दिया, कि "आप भोजन करते समय, एक हाथ हिलाते जाइये, फिर मक्खियें नही सता सकती।"

मतलब यह है कि आज के कानूनों से असभ्य चोरियों की सख्या चाहे कम हो गई हो, परन्तु सभ्यता की ओट मे होने वाली चोरियो की सख्या मे तो वृद्धि ही सुनी जाती है। असभ्य उपायों से चोरी करने वाले को, राज्य भी दण्ति करता है, और समाज भी घृणा की दृष्टि से देखता है, परन्तु इन सभ्य उपायो से चोरी करने वाले को, न तो राज्य ही दण्ड देता है, और न समाज में ही वह घृणित माना जाता है। हाँ ऐसी चोरी करने वाला, समाज में 'चतुर' या 'होशियार' अवश्य कहलाता है। इसका परिणाम यह हो रहा है, कि आज, ससार का अधिकाश समाज चोरी के पाप में पड़ा हुआ है।

६७ : परोपकारी

संसार मे श्रमजीवी मूर्ख समझे जाते हैं, मगर देखा जाय तो संसार का अमन-चैन उन्ही पर निर्भर है। बुद्धिजीवी लोगों को प्राण देने वाले श्रमजीवी ही हैं। 'अन्न वै प्राणाः अर्थात् अन्न प्राण हैं', इस उक्ति के अनुसार श्रमजीवी कृषक ही तो बुद्धिजीवी लोगों को अन्न रूप प्राण देते हैं।

एक व्यक्ति को लोग मूर्खराज कहा करते थे। वह वास्तव मे मूर्ख नही, दयालु था। उसे किसी प्रकार तीन बूटियाँ मिल गईं। उनमे यह गुण था कि उनमें से एक का सेवन करने से सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते थे। मूर्खराज के पेट मे दर्द था, अतएव एक बूटी उसने खुद खाली। उसने सोचा—अपने ऊपर प्रयोग करना ठीक भी होगा। इससे पता चल जाएगा कि वास्तव मे यह बूटी सब रोगों को नाश करने वाली है या नही? उसने बूटी खाई और उसके पेट का दर्द चला गया। बूटी की परीक्षा भी हो गई, मूर्खराज बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—बडी अच्छी चीज है।

मूर्खराज घर आया। उसने देखा—घर का कुत्ता पडा तड़फड़ा रहा है। कुत्ते मुँह से अपना दर्द नही बतला सकते। अतएव मूर्खराज की समझ में नहीं आया कि कुत्ते को क्या दर्द है? उसने सोचा—सम्भव है, कुत्ता भूखा हो और भूख का मारा तड़फ रहा हो। वह घर में से रोटी लाया। कुत्ते के सामने रख दी। मगर कुत्ते ने रोटी नही खाई। तब मूर्खराज ने विचा[illegible] इसे कोई दर्द मालूम होता है। मेरे पास जो बूटी है, [illegible] आएगी? एक बूटी [illegible] गया है और [illegible] मिटा देना चाहिए।

क्या बुद्धिवादी लोग ऐसा करने को तैयार होंगे ? क्या कुत्ते के प्राणो की उनके आगे इतनी कीमत है कि ऐसी अनमोल बूटी देकर उसके प्राणो की रक्षा की जाय ? बुद्धिवादी ऐसा करना बूटी का अपव्यय समझेगा। मगर वह तो मूर्खराज जो ठहरा ? उसने एक बूटी रोटी में मिलाकर किसी तरह कुत्ते को खिला दी। थोडी देर मे कुत्ता ठीक हो गया और पूंछ हिलाकर प्रसन्नता प्रकट करने लगा।

जो मनुष्य कुत्ते को एक भी टुकडा डाल देता है, उसे कुत्ता भौंकता नही है लेकिन मनुष्य क्या करता हैं ? लड्डू खिलाने वाले पर भी मनुष्य भौंकने से कब चूकता है ? लोग लड्डू खिलाने वाले के लड्डू भी खा जाते हैं और उस पर भौंकने भी लगते है। फिर भी मनुष्य के सामने कुत्ते के प्राणो की कोई कीमत ही नही है !

जब घर वालों ने देखा कि मूर्खराज ने कुत्ते को सहज ही ठीक कर दिया है तो वे कहने लगे—हम इसे मूर्ख समझते थे, मगर यह तो होशियार जान पडता है। इसने देखते-देखते कुत्ते को ठीक कर दिया ! एक ने उससे पूछा—क्या तुम्हें कुछ जादू आता है कि आनन-फानन कुत्ते को ठीक कर दिया ?

मूर्खराज ने बाकी बची बूटी दिखाकर कहा—मैं जादू नहीं जानता हूँ, पर मेरे पास यह बूटी है। इस बूटी की करामात से ही कुत्ता अच्छा हुआ है। इस बूटी से सब प्रकार के रोग मिट जाते हैं।

जो मूर्खराज अभी-अभी होशियार हो गया था, वही फिर अब बुद्धू बन गया। घर के लोग उससे कहने लगे—आखिर तो मूर्खराज ही ठहरा न ! ऐसी अमृत सरीखी अनमोल बूटी कुत्ते को खिलाकर तू ने अपना नाम सार्थक कर दिखाया। भला, यह कुत्ता अच्छा होकर क्या करेगा ? किसी दूसरे को अच्छा किया होता तो कुछ लाभ भी होता !

बुद्धिमान् कहलाने वाले अन्य लोग भी ऐसा ही सोचते होंगे। बेचारे कुत्ते पर कौन दया करना चाहता है? लेकिन किसी प्रकार की आशा से किसी का भला करना सच्ची करुणा नहीं है। निरीह भाव से—बदला पाने की आशा न रखते हुए दूसरो की भलाई करना ही वास्तव मे करुणा है।

भगवान् पार्श्वनाथ को सांप से कुछ मिलना नही था। फिर भी करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने उसका उपकार किया ही था! करुणा किसी प्रकार का भेद-भाव नही रखती और जो लोभ में पडा है, उससे भेद भाव नहीं छूट सकता। अतएव करुणा करने के लिए 'मूर्खराज' सरीखा बनना पडता है।

मूर्खराज के माता-पिता भी जब उसकी अवहेलना करने लगे और कुत्ते को बूटी खिला देने के लिए उपालभ देने लगे तो उसने उत्तर दिया—आप लोगो के लिए वह कुत्ता है और मेरे लिए मेरे ही समान प्राणी है। अतएव उसके लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूँ।

घर वाले खिन्नचित्त होकर कहने लगे—चलो, जो कुछ हुआ सो हुआ। अब एक बूटी है, वह किसी को मत देना।

मूर्खराज ने कहा—ठीक है मैं इसे नष्ट नही करूंगा।

सयोगवश उस शहर के बादशाह की लडकी बीमार हो गई। लडकी बादशाह और उसकी पत्नी को अत्यन्त प्रिय थी। इसलिए बादशाह ने ढिढोरा पिटवाया कि मेरी लडकी को जो अच्छा कर देगा उसे मैं मुंह मांगा इनाम दूंगा। बादशाह द्वारा पिटवाये गये ढिंढोरे को मूर्खराज के घर वालों ने भी सुना। उन्होंने मूर्खराज से कहा—बूटी की बदौलत अब तेरा भाग्य खुल जायगा। तेरे पास जो बूटी है, उसे बादशाह की लडकी को खिला दे। लडकी अच्छी हो जायगी तो उसके साथ तेरा विवाह हो जायगा। तू सुखी हो जायगा और तेरे साथ हम लोग भी सुखी हो जाएगे।

मूर्खराज ने माता-पिता आदि की बात स्वीकार करते हुए कहा—ठीक है, मैं जाऊँगा।

माता-पिता आदि ने मूर्खराज को स्नान करवाया। अच्छे कपडे पहनने को दिये और बादशाह के पास जाने को रवाना किया। मूर्खराज बूटी अपने साथ लेकर बादशाह के महल की तरफ चल पडा। मार्ग मे उसने देखा कि एक स्त्री को लकवा मार गया है, जिसके कारण वह चल फिर नहीं सकती। उसका हाथ बेकार हो गया है और मुँह टेढ़ा हो गया है। मूर्खराज ने उस स्त्री से पूछा—'माँ जी! क्या हो गया है तुम्हें?'

स्त्री—बेटा, देख ले। मेरी कैसी बुरी हालत है! मेरा शरीर बेकार हो गया। पेट पालने के लिए भी दूसरो की मोहताज हो गई हूँ। बडा कष्ट है!

मूर्खराज मन ही मन सोचने लगा—यह बूढी माँ इतने कष्ट मे है। मेरे पास बूटी है। मैं इसका कष्ट मिटा सकता हू। यह बूटी किस काम आएगी? गरीबिनी बुढिया का कष्ट मिटा देना उचित है।

मूर्खराज ने बुढ़िया से कहा—ले माँजी! यह बूटी खाले। तेरा रोग अभी चला जाएगा।

बुढ़िया बोली—बेटा, मेरा रोग मिटा देगा तो मैं समझूगी कि तू ही मेरे लिए ईश्वर है।

मूर्खराज—मैं ईश्वर नही हूं। मुझे यह बूटी कही मिल गई है। इसका दूसरा क्या उपयोग हो सकता है? तू इसे खा जा।

बुढ़िया ने बूटी खाई। वह चगी हो गई। उसे सहसा अपना चगापन देख विस्मय के साथ आनन्द हुआ। मूर्खराज को उसने सैंकडों आशीर्वाद दिये।

मूर्खराज सन्तोष के साथ अपने घर लौट आया। उसे आया देख घर वाले पूछने लगे—क्यों, बादशाह के पास नहीं गया?

लौट क्यों आया ?

मूर्खराज—मार्ग में मुझसे एक अच्छा काम हो गया, इस लिए लौट आया हूं।

घर वालों को बडी चिन्ता हुई। उन्होंने पूछा—क्या हुआ, कुछ बता भी सही।

मूर्खराज ने बुढिया का वृत्तान्त कह सुनाया। घर वालों ने यह सुना तो क्रोध के मारे पागल हो उठे। कहने लगे—मूर्खराज कहीं के ! तू ने हमारे सारे मसूवे मिट्टी मे मिला दिये !

भगवान् पार्श्वनाथ को तो आप भी पुकारते हैं, मगर किस लिए पुकारते हैं ? आप उनके शिष्य कहलाते हैं, मगर क्या करने के लिए ? पार्श्वनाथ के शिष्य कहला कर भी क्या आप मे मूर्खराज सरीखी दया है ? मूर्खराज की निस्पृह दया कितनी सराहनीय है ? क्या आपका अन्तःकरण इस प्रकार की दया से जीवन मे एक वार भी कभी द्रवित हुआ है ? स्वयं मे ऐसी दया होना तो दूर रहा, आपके घर का कोई आदमी इस मूर्खराज के समान कार्य करे तो आप इसे शायद घर से निकाल देने के लिए तैयार हो जाए ! ऐसी स्थिति मे आप भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा की गई दया का असली महत्त्व समझ सकते हैं ? अगर आप सचमुच ही दया का महत्त्व समझते हैं तो अछूतों को व्याख्यान सुनने देने से क्यो वंचित रखते हैं ? मैं आपके मकान में ठहरा हूं। अतएव आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नही कर सकता। किसी को आने या न आने देने का मुझे अधिकार नहीं है। लेकिन इस विषय मे आ क्या चाहते हैं ? अगर हम आपके मकान मे न ठहरे होते और प्राचीन काल के मुनियों की तरह जंगल में ठहरे होते तो हमारा व्याख्यान सभी लोग सुन सकते थे। वहां किसी के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव का व्यवहार नही किया जा सकता था। भगवान् के समवसरण मे बारह प्रकार की परिषद् होती थी। उसमें किसी के प्रति, किसी भी प्रकार

का भेदभाव नही किया जाता था। अगर आपके अन्तःकरण में भगवान् पार्श्वनाथ के समान दया है तो आप किसी भी जाति वालों को व्याख्यान सुनने से न रोके।

मूर्खराज के घर वाले क्रोध से बावले हो उठे। कहने लगे—वह मूर्ख कितना अभागा है! पहले तो इसने कुत्ते को बूटी खिला दी और अब, जब कि सभी का भाग्य चमकने वाला था, किसी बुढ़िया को बूटी देकर चला आया। ऐसा न किया होता और बादशाह की लड़की की बीमारी मिटाई होती तो खुद बादशाह का दामाद बन गया होता और हम लोगो को इस मकान के बदले राजमहल मिला होता! हमारा घर धन से भर जाता और सब दुःख दूर हो गये होते!

मूर्खराज ने अपने घर वालो से कहा—आप लोग मुझे क्षमा कीजिये। मेरा नाम मूर्खराज है! मैं आप लोगों की बुद्धि के अनुसार काम कैसे कर सकता हूँ? आप मुझ से वृथा ही ऐसी बड़ी आशा क्यो रखते हैं? मैं मूर्ख ठहरा। सामने किसी दुखी को देखता हूँ तो अपने को रोक नही सकता। मेरे पास जो कुछ होता है, सभी देने को उद्यत हो जाता हूँ और दे डालता हूँ। मेरी प्रकृति ही ऐसी बनी है। मैं क्या करूँ?

मूर्खराज की सरल सीधी बात सुन कर सन्तानप्रेम के कारण माता पिता आगे कुछ न कह सके। वे चुप हो रहे। सोचने लगे—इसका क्या दोष! दोष अगर है तो हमारी तकदीर का ही है।

मूर्खराज के हृदय मे यह था कि जो दुखी सामने आवे, उसका दुःख दूर करने के लिए, अपने पास जो भी कुछ हो, दे देना चाहिए। मगर आपके हृदय मे क्या है? जरा अपने हृदय को टटोलो। आप भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य हैं। आपके अन्तःकरण में दया का कैसा शीतल झरना बहना चाहिए? भगवान् साँप सरीखे जहरीले प्राणी के लिए भी हाथी से नीचे उतरे उन्होने पास जाकर

उसे उपदेश का अमृत पिलाया। मगर आप दया-दया की पुकार करते हुए भी मान के हाथी पर ही सवार बने रहते हैं। ऐसी दशा में कैसे कहा जा सकता है कि आपने दया को पहचाना है? दया करने के लिए मूर्खराज के समान बनना पड़ता है। मूर्खराज को जैसी बूटी मिली थी, आपको वैसी मिल जाय तो आप उसे लेने को फौरन तैयार हो जाएंगे। और कदाचित मूर्खराज मिल जाय तो कहने लगेंगे 'यह तो मूर्खराज है। हम इसे लेकर क्या करेंगे? आप मूर्खराज का अस्थि-पंजर लो, यह मैं नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि मूर्खराज के गुणों को ग्रहण करो। जिस प्रकार मूर्खराज निस्वार्थ और निष्पक्ष होकर दया करता था, उसी प्रकार आप भी दया करो।

खरगोश हाथी का क्या लगता था? हाथी को उसकी रक्षा करने से क्या मिलने वाला था? हाथी को खरगोश से कुछ भी आशा नही थी। फिर भी उसने घोर वेदना सहन करके भी खरगोश की रक्षा की! इसी तरह आप भी निष्काम भाव से दीन-दुखी पर दया करो। बुद्धि के चक्कर मे मत पडो। दया करने के लिए 'मूर्खराज' के सदृश बनो। आप मे मूर्खराज की सी आदत नहीं है, इसी कारण आप किसी के मरने के बाद तो उसकी याद कर करके रोते हो परन्तु जब वह जीवित रहता है तब तक उसकी पूरी सम्हाल नहीं करते और उसे कल्याण के मार्ग पर नहीं लगाते।

यदि ससार में मूर्खराज के समान ही प्राणी जन्में, जो दिन-रात दूसरे की दया करने मे ही लगे रहें तो ससार सुखी हो सकता है। यह ध्रुव सत्य समझ लो कि ऐसे दयालु और परोपकारी मनुष्य ही ससार के शृङ्गार हैं। ससार में अगर कुछ सार है तो ऐसे मनुष्यों का जीवन ही है। ऐसे दयावान मनुष्य ही ससार में सुख और शान्ति का प्रसार करते हैं। मारकाट मचाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में संलग्न रहने वाले बुद्धिवादी लोग ससार को

सुखमय नहीं बना सकते। मूर्खराज कपडे पहन कर बादशाह की बेटी को बूटी देने चला था, मगर मार्ग मे बीमार वृद्धा को देखते ही उसका दिल द्रवित हो गया और उसने उसे बूटी खिला दी। मूर्खराज का यह त्याग मामूली नही क ा जा सकता। उसे राजकुमारी पत्नी मिल सकती थी, कदाचित् राज्य का भी कुछ भाग मिल सकता था और कीर्ति तो मिलती ही। पर उसने इन चीजों को तनिक भी परवाह नही की। सच्ची दया वही है जहाँ लेश मात्र भी स्वार्थ नही है। मगर बुद्धि की खटपट त्याग कर मूर्खराज के समान बनने पर ही ऐसी दया की जा सकती है।

६८ : मनोयोग

कई लोग चित्त की चचलता को सर्वथा ही रोक देने की चेष्टा करते हैं और उसी मे कल्याण समझते हैं, किन्तु ऐसा होना दुसाध्य है। ज्यो-ज्यों आप चित्त को रोकने का प्रयत्न करेंगे, वह अधिकाधिक चचल होता जायगा। अतएव उसे सर्वथा रोकने का विचार छोड कर उसकी चाल की चौकसी करना और उसे टेढा मेढा जाने से रोकना ही अधिक व्यवहार्य है। किसी अच्छे प्रकार के चिन्तन मे फँसाये रहने से ही मन टेढी चाल से बचता है। खाली रहने पर बडा उत्पात मचाता है। इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण लीजिए—

एक मनुष्य किसी सिद्ध पुरुष की सेवा करता था। सिद्ध ने उसकी मनोकामना पूछी। सेवक ने कहा—महाराज! मैं खेती कर कर के मरता पचता हूँ, फिर भी पेट नहीं भर पाता। इससे

खम्भा बता देना चाहिए, जिस पर चढता उतरता रहे। वह खम्भा कौनसा है ? भगवत्—भजन का।

तुम सुमरन विन इण कलियुग मे अवर न को आधारो।
मै वारी जाऊँ तो सुमरन पर, दिन दिन दिन प्रीत वधारो ॥
पदम प्रभु पावन नाम तिहारो ॥

६१: स्वामी नहीं, ट्रस्टी

(१)

शिमला मे एक पुरुष और एक स्त्री को देख कर गांधीजी का हृदय आनन्दित हो उठा था। वह दोनों गांधीजी के पास आये और उन्होंने सौ रुपये का एक नोट निकाल कर एक संस्था की सहायता के लिए गांधीजी के सामने रख दिया। यह संस्था सेठ जमनालालजी बजाज द्वारा संचालित होती थी। गांधीजी ने कहा 'जमनालालजी के पास पैसे की कमी नहीं है। उनके पास काफी पैसा है। उस संस्था को सहायता की आवश्यकता नहीं है। अतः आप यह रुपया अपने पास ही रहने दीजिए।'

यह सुनकर आगन्तुक पुरुष ने कहा—'जिस किसी कार्य मे रुपयों की आवश्यकता हो उसी में यह लगा दीजिए। अमुक कार्य मे रुपये लगाने की शर्त लगाना व्यर्थ है—भूल है। इस बात को मेरी अपेक्षा आप अधिक समझते हैं। अतएव अब इस विषय में मैं कुछ न कहूंगा। मैंने सरकारी नौकरी करके पैंतीस हजार रुपया बचाया है और इस समय भी मेरी आय लगभग एक हजार रुपया

मासिक है। इस सम्पति को मैं अपनी नहीं समझता। चाहता हूँ कि आप इसकी व्यवस्था करें और अपने हाथ में ले लें। इसी से आनन्द होगा। मैं इस सम्पति पर से अपना आधिपत्य हटा लेना चाहता हू, जिससे अपने उत्तरदायित्व से बच सकूं।'

मित्रों! आप लोगो के पास जो द्रव्य है उसे अगर परोपकार मे, सार्वजनिक हित मे और दीन-दुखियो को साता पहुचाने मे न लगाया तो याद रखना, इसका ब्याज चुकाना तुम्हें कठिन हो जायगा। ऐसे द्रव्य के स्वामी बन कर आप फूले न समाते होंगे कि चलो हमारा द्रव्य बढा है, मगर शास्त्र कहता है और अनुभव उसका समर्थन करता है कि द्रव्य के साथ क्लेश बढ़ा है। जब आप बैंक से ऋण रूप मे रुपया लेते हैं तो उसे चुकाने की कितनी चिन्ता रहती है? उतनी ही चिन्ता पुण्य रूपी बैंक से द्रव्य को चुकाने की क्यो नहीं करते? समझ रखो, यह सम्पत्ति तुम्हारी नही है। इसे परोपकार के अर्थ अर्पण कर दो। याद रखो की यह जोखिम दूसरे की मेरे पास धरोहर है। अगर इसे अपने पास रख छोड़ूंगा तो यह तो यहीं रह जायगी, लेकिन इसका बदला चुकाना मेरे लिए बहुत भारी पड जायगा।

श्रावक के तीन मनोरथों मे से एक मनोरथ यह भी है कि—'लोभ की वृद्धि करने वाले और खराबी पैदा करने वाले परिग्रह का त्याग करके कब मैं आत्म-कल्याण मे लगूंगा?' अतएव परिग्रह के पाश को ढीला होने दो—उससे बाहर निकलने का प्रयत्न करो।

गांधीजी ने आगन्तुक पुरुष से कहा—'तुम इस धन के ट्रस्टी रहो। जब किसी कार्य में इसे लगाने की आवश्यकता होगी, तब उस काम मे लगा दिया जायगा।'

(२)

एक महिला को उसके पिता से बहुत-सी सम्पत्ति मिली थी।

खम्भा बता देना चाहिए, जिस पर चढता उतरता रहे । वह खम्भा कौनसा है ? भगवत्—भजन का ।

तुम सुमरन विन इण कलियुग मे अवर न को आधारो ।
मै वारी जाऊं तो सुमरन पर, दिन दिन दिन प्रीत वधारो ॥
पदम प्रभु पावन नाम तिहारो ॥

६१: स्वामी नहीं, ट्रस्टी

(१)

शिमला मे एक पुरुष ओर एक स्त्री को देख कर गांधीजी का हृदय आनन्दित हो उठा था । वह दोनों गांधीजी के पास आये और उन्होंने सौ रुपये का एक नोट निकाल कर एक सस्था की सहायता के लिए गांधीजी के सामने रख दिया । वह सस्था सेठ जमनालालजी बजाज द्वारा सचालित होती थी । गांधीजी ने कहा 'जमनालालजी के पास पैसे की कमी नहीं है । उनके पास काफी पैसा है । उस सस्था को सहायता की आवश्यकता नहीं है । अतः आप यह रुपया अपने पास ही रहने दीजिए ।'

यह सुनकर आगन्तुक पुरुष ने कहा—'जिस किसी कार्य में रुपयों की आवश्यकता हो उसी मे यह लगा दीजिए । अमुक कार्य में रुपये लगाने की शर्त लगाना व्यर्थ है—भूल है । इस बात को मेरी अपेक्षा आप अधिक समझते हैं । अतएव अब इस विषय मे मैं कुछ न कहूगा । मैंने सरकारी नौकरी करके पैंतीस हजार रुपया बचाया है और इस समय भी मेरी आय लगभग एक हजार रुपया

भासिक है । इस सम्पति को मैं अपनी नहीं समझता । चाहता हूँ कि आप इसकी व्यवस्था करें और अपने हाथ मे ले लें । इसी से आनन्द होगा । मैं इस सम्पति पर से अपना आधिपत्य हटा लेना चाहता हू, जिससे अपने उत्तरदायित्व से बच सकूँ ।'

मित्रों ! आप लोगो के पास जो द्रव्य है उसे अगर परोपकार में, सार्वजनिक हित मे और दीन-दुखियो को साता पहुंचाने में न लगाया तो याद रखना, इसका व्याज चुकाना तुम्हें कठिन हो जायगा। ऐसे द्रव्य के स्वामी बन कर आप फूले न समाते होंगे कि चलो हमारा द्रव्य बढा है, मगर शास्त्र कहता है और अनुभव उसका समर्थन करता है कि द्रव्य के साथ क्लेश बढा है। जब आप बैंक से ऋण रूप में रुपया लेते हैं तो उसे चुकाने की कितनी चिन्ता रहती है ? उतनी ही चिन्ता पुण्य रूपी बैंक से द्रव्य को चुकाने की क्यो नहीं करते ? समझ रखो, यह सम्पत्ति तुम्हारी नहीं है । इसे परोपकार के अर्थ अर्पण कर दो। याद रखो की यह जोखिम दूसरे की मेरे पास घरोहर है । अगर इसे अपने पास रख छोड़ूंगा तो यह तो यहीं रह जायगी, लेकिन इसका बदला चुकाना मेरे लिए बहुत भारी पड जायगा ।

श्रावक के तीन मनोरथों में से एक मनोरथ यह भी है कि— 'लोभ की वृद्धि करने वाले और खराबी पैदा करने वाले परिग्रह का त्याग करके कब मैं आत्म-कल्याण मे लगूंगा ?' अतएव परिग्रह के पाश को ढीला होने दो—उससे बाहर निकलने का प्रयत्न करो ।

गाधीजी ने आगन्तुक पुरुष से कहा—'तुम इस धन के ट्रस्टी रहो । जब किसी कार्य में इसे लगाने की आवश्यकता होगी, तब उस काम मे लगा दिया जायगा ।'

(२)

एक महिला को उसके पिता से बहुत-सी सम्पत्ति मिली थी।

उसका पति आवारा है और उसने दूसरा विवाह भी कर लिया है । वह महिला उससे अलग रहती है । जैसे पूर्वोक्त पुरुष ने अपनी सम्पत्ति का त्याग किया उसी प्रकार वह भी अपनी पैतृक सम्पत्ति का दान करना चाहती है । वह देश-सेवा के फलस्वरूप दो बार जेलयात्रा कर चुकी है और चर्खा आदि कात कर उसी की आमदनी से अपना निर्वाह करती है । वह भी एक बार गांधीजी के पास आई और अपनी सम्पत्ति के दान के विषय में गांधीजी से निवेदन किया । गांधीजी ने उससे भी वही बात कही कि उस सम्पत्ति को तुम अपनी न समझ कर अपने को उसका ट्रस्टी मानो और उसे सम्भालो ।

मित्रो ! अगर आप लोग भी अपनी सम्पत्ति से पाप न करके उसके ट्रस्टी-मात्र बने रहो तो क्या उस सम्पत्ति को कुछ दाग लग जायगा ? हाँ, उस अवस्था में अपने भोग-विलास में उसका दुरुपयोग न कर सकोगे । लेकिन बहुत लोगों को तो ट्रस्टी बनने की आवश्यकता ही नहीं होती । क्या श्रावक की जिन्दगी ऐसी होती है कि वह धन के कीचड़ में फंसा रहे और उससे अपनी आत्मा को मलिन बना डाले ? उसे परोपकार में न लगावे ? क्या श्रावक को धर्म पर विश्वास नहीं है ? बैंक पर विश्वास करके उसमें लाखों रुपया जमा कर देने वालों को धर्म रूपी बैंक पर क्या विश्वास नहीं है ?

७० : समझदारी

(१)

[illegible] बहनों ने [illegible] मेरे समीप

ही हो तो अच्छा है। वह जब-तब मेरी निन्दा करेगा और उसके द्वारा की हुई निन्दा से मुझे बहुत कुछ जानने को मिलेगा इससे मेरी अवनति रुकेगी और उन्नति होगी। मेरी आत्मा की अशुद्धि हटेगी और शुद्धि की वृद्धि होगी।

किसी कवि ने राजा से कहा— 'आप के शत्रु चिरजीव हों।' यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर राजा नाराज हो गया। दूसरे सुनने वालों को भी इस आशीर्वाद से बुरा लगा, मगर उनमें एक पकी हुई बुद्धि का समझदार आदमी था। उसने राजा से कहा— आप यह आशीर्वाद सुनकर नाराज क्यों होते हैं? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए।

राजा झुंझलाकर कहने लगा—यह तो शत्रुओं के लिए आशीर्वाद दे रहा है। तब उस समझदार आदमी ने कहा—ऐसा आशीर्वाद देकर कवि ने आपका हित ही चाहा है। जब आपके शत्रु जीवित रहेंगे तो आप में बल, बुद्धि, पराक्रम और सावधानी जागृत रहेगी। आप सावधानी रखने के कारण ही राजा हैं। राजा को सदा सावधान रहना चाहिए, सावधानी तभी रह सकती है जब शत्रु का भय हो। शत्रु के होने पर ही होशियारी आती है। इस प्रकार कवि ने आपको दुराशीष नहीं वरन् शुभाशीष ही दिया है। कवि ने सूचित किया है कि आप आलसी और भोग के कीड़े मत बन जाना किन्तु बलवान् बनना और सावधान रहना। इसमें आपके नाराज होने योग्य कोई बात नहीं।

७१ : अदृश्य शक्ति

एक मजदूर था। मजदूरों की स्थिति बडी बेढंगी होती है। अगर वह किसी दिन मजदूरी न करे तो उसे भूखा रहना पडता है। खास कर वर्षा ऋतु में तो मजदूरो की हालत और भी खराब हो जाती है। इस ऋतु मे उन्हे बराबर काम नहीं मिलता। एक दिन जोरो की वर्षा हुई और इस कारण उस मजदूर को कोई काम नहीं मिला। वह इसी चिन्ता मे बैठा था कि कल क्या होगा ? इतने मे एक सेठ उसके घर आया। उसने कहा—यह दो हजार की थैली है। अगर अमुक गांव में, अमुक के घर पहुंचा आओ तो आठ आना मजदूरी दी जायगी। मजदूर ने थैली ले ली और नियत जगह पहुंचाना स्वीकार कर लिया।

उसी मजदूर के घर के पास एक मकरानी पठान रहता था। उसने सोचा—यह रुपयों की थैली लेकर पर गांव जा रहा है। आज लूटने का अच्छा अवसर मिला है! रास्ते मे मजदूर के प्राण लेकर रुपया लूट लेना कोई कठिन बात नहीं है। यह सोच कर पठान ने कहा—मुझे भी किसी काम से उस गांव जाना है।

मजदूर ने कहा—चलो, एक से दो भले। अच्छा हुआ कि तुम्हारा साथ मिल गया।

पठान ने अपनी बन्दूक ले ली। उसने सोचा—इसी बंदूक से मजदूर का काम तमाम कर दूंगा और उससे रुपया ले लूंगा। बेचारे भोले मजदूर को पठान की बदनियत का पता नहीं था। दोनों रवाना हुए। जब वह रास्ते मे जा रहे थे तो अचानक घन-घोर घटा छा गई और मूसलाधार पानी बरसने लगा। दोनों के कपडे पानी में भीग गए। दोनों एक सघन पेड के नीचे जा खडे

हुए। वर्षा होते देख मजदूर कहने लगा - लोग परमात्मा-परमात्मा चिल्लाते हैं पर परमात्मा है कहाँ ? अगर सचमुच परमात्मा होता तो हम जैसे गरीबो के ऊपर दया न करता ? देखो न, मेरे सारे कपडे पानी से तरबतर हो गए हैं और दूसरे कपडे मेरे पास है नही ।

मजूर की बात सुन कर पठान ने कहा—तुम यही समझ लो कि खुदा ने तुम्हारे ऊपर आज बडी मेहरबानी की है।

मजूर—पानी बरसने में मेरे ऊपर खुदा की क्या मेहरबानी हुई ?

पठान—देख, यह बन्दूक मैं इस लिये लाया था कि रास्ते मे तुम्हें इससे ठिकाने लगा दूँगा और तुम्हारे पास जो रुपये हैं, छीन लूँगा। मगर कुदरत को तुम्हारी मौत मजूर नही थी। मूसलाधार पानी बरसा और बन्दूक में डाला बारूद गीला हो गया। अब यह बन्दूक बेकार है। इस प्रकार तू कुदरत की मेहर से ही आज बच सका है। पानी न बरसा होता तो आज तुम इस बन्दूक के शिकार हो गए होते और तुम्हारे पास के रुपये मेरे कब्जे मे होते। तुम चाहो तो मुझ से बदला ले सकते हो। मगर सच्ची बात मैंने तुम्हे बता दी।

मजूर, पठान की बात सुन कर प्रसन्न हुआ। उसे ऐसा लगा मानो उसने नया जीवन पा लिया हो। वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए परमात्मा को धन्यवाद देने लगा। वह सोचने लगा— मैं बाहर ही बाहर देख रहा था, पर कौन जानता है कि भीतर ही भीतर कुदरत की करामात कैसी है ? दरअसल दुख का कारक अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही मजूर वर्षा और परमात्मा को कोस रहा था।

७२ : दूसरा विवाह

साधारणतया लोग अपने विषय मे जो बात सोचते हैं वही दूसरों के विषय में वही सोचते। इसी कारण घोर अन्याय हो जाता है। आज पुरुषों में यह पद्धति प्रचलित हो गई है कि वे अपना स्वार्थ देखते हैं। उन्हे लेश-मात्र भी यह विचार नहीं आता कि जो काम स्वय उन्हें पसन्द नही है वह स्त्रियों को कैसे पसन्द आता होगा। इस विषय मे गुलिश्तां में एक कथा कही गई है। उसमे कहा है—

एक अमीर की स्त्री मर गई। अमीर के मित्रों ने उससे कहा—तुम्हारे पास अखूट धन-सम्पत्ति है। तुम दूसरा विवाह कर लो।

अमीर ने कहा—मुझे बूढ़ी स्त्री पसन्द नही है।

मित्र—यह कौन कहता है कि तुम बुढिया के साथ विवाह करो। किसी नवयुवती के साथ शादी कर लो। तुम्हें किस चीज की कमी है ?

अमीर—तुम मेरे कहने का मतलब नही समझे। मेरे कहने का आशय यह है जब मुझे बूढी स्त्री पसन्द नही है तो नवयुवती स्त्री को मुझ जैसा बूढा क्यो पसन्द आने लगा ? मैं अपना ही मतलब समझूं और दूसरे के हिताहित का विचार न करूँ यह किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ?

क्या आपको अमीर की बात युक्तिसगत जान पडती है ? अगर वास्तव में आप अमीर के कथन को सत्य और न्यायसगत समझते हैं तो आपको विवाह सम्बन्धी अन्यायपूर्ण कार्यों मे कदापि भाग नहीं लेना चाहिए। जहाँ किसी वृद्ध का तरुणी के साथ विवाह

होता हो तो वहाँ आपको सम्मिलित नही होना चाहिए। वृद्धविवाह में भाग लेने से तुम पाप के भागी होते हो और उसमें अपना सहयोग न देकर अपने आपको पाप से बचा सकते हो।

७३ : चार ब्राह्मण

अगर सब जीवो को मित्र बनाने से काम नही चलेगा तो क्या सब को शत्रु मानने से ससार का काम ठीक चलेगा ? अगर आपका यह विचार हो कि सब को शत्रु बनाने से ही ठीक काम चल सकता है तो आप भी सब के शत्रु माने जायेंगे और इस दशा मे ससार में एक क्षण का जीवन भी कठिन हो जाएगा। सब को मित्र बनाने से क्या फल होता है और शत्रु बनाने का परिणाम क्या निकलता है, इसके लिए एक उदाहरण लीजिए।

किसी दातार ने चार ब्राह्मणों को एक गाय दी। चारो भाई-भाई थे, मगर अलग-अलग हो गये थे। उनके चूल्हे अलग-अलग जलते थे और दरवाजे भी अलग-अलग हो गये थे। दान मे मिली हुई गाय पहले बड़े भाई के यहाँ लाई गई। उसने सोचा—'गाय को आज मैं खिलाऊँगा तो कल उसका दूध होगा। वह दूध मेरे किस काम का ? कल वह दूसरे के यहाँ चली जायगी और वही कल दूध दुहेगा। ऐसा सोचकर उसने दूध तो दुह लिया, मगर खाने को नही दिया। दूसरे दिन दूसरा भाई गाय अपने घर ले गया। उसके मन मे भी यही विचार आया—कल यह दूसरे घर चली जायगी, फिर आज खिलाने से मुझे क्या लाभ है ? कल का दूध तो मुझे मिलना नही। अतएव इसके स्तनों का दूध ले लूँ।

कल वह आप खिलाएगा। ऐसा सोचकर उसने भी दूध दुह लिया और खाने को नहीं दिया। शेष दो भाइयों के घर भी यही हुआ। भूख के मारे गाय की हड्डियाँ निकल आईं। चार-ही रोज में गाय का कायाकल्प हो गया। उसकी दुर्दशा देखकर लोग कहने लगे— यह ब्राह्मण हैं या कसाई! इन्हें गाय की रक्षा करते हुए दूध लेना था, मगर यह तो उसका खून पीने पर उतारू हो गये हैं।

इसी प्रकार किसी दूसरे दाता ने किन्हीं अन्य चार भाइयों को गाय दी है। उन्होंने सोचा—'दाता ने उदारतापूर्वक, कृपा करके हमे गाय दी है तो हम उसे माता के समान मानकर उसकी रक्षा करेंगे। उसे किसी प्रकार का कष्ट न देंगे।' इस प्रकार विचार कर उन्होंने गाय को खिलाया-पिलाया। उन्हें दूध भी मिला और गाय की रक्षा भी हुई।

७४ : छोटा और बड़ा

एक अमीर अपने बाए हाथ की छोटी अगुली मे अगूठी पहने था। किसी गरीब ने उसके पास आकर पूछा—'दाहिना हाथ बड़ा होता है या बायाँ?' अमीर ने उत्तर दिया—'जो हाथ ज्यादा काम करता है, इस कारण वही बड़ा माना जाता है।' अब गरीब ने कहा—तो आपने अगूठी बायें हाथ में क्यों पहन रखी है? दाहिने हाथ को क्यो नहीं पहनाई? अमीर बोला—मैंने पहले ही कहा कि जो ज्यादा काम करे, वही बड़ा है। जो छोटे से काम कराता है, वह बड़ा नहीं है। मैंने बायें हाथ में अगूठी पहन रखी है, इससे दाहिने हाथ का बड़प्पन आप ही प्रकट हो जाता है। छोटे

को देना ही तो बड़प्पन है। बड़प्पन और क्या है? मैंने दुनियाँ को यही सीख देने के लिए बाएँ हाथ मे अंगूठी पहनी है। इससे यह जाहिर हो जाता है कि छोटे को शृंगार करादो, जिससे बड़े के बड़प्पन को धक्का न लगे।

गरीब ने फिर अमीर से पूछा— अच्छा, यह अंगूठी बड़ी उंगली को न पहना कर सब से छोटी को किस लिए पहनाई है?

अमीर ने कहा—दाहिना हाथ बड़ा और बांया हाथ छोटा है, यह बात तो मैं बता चुका हूं, लेकिन यह और जान लो कि इस हाथ मे यह उंगली सब से छोटी हैं। सबसे छोटी होने के कारण ही इसे अंगूठी पहना रखी है। छोटे की सार-सम्भाल करने वाले ही बड़ा कहलाता है।

जो बड़ा कहलाने वाला पुरुष इस बात का ध्यान रखता है, वह नीचे नही गिरता, किन्तु चढ़ता ही जाता है। यद्यपि बड़प्पन और छुटपन सापेक्ष हैं, तथापि छोटों की रक्षा करने वालों का बड़प्पन बढ़ता ही है, घटता नहीं।

अमीर की बात सुनकर गरीब ने कहा—'आपके विचार बड़े उत्तम हैं, इसी कारण आप बड़े हैं। जो मनुष्य अपने शरीर के सम्बन्ध मे ऐसा विचार रखता है, वह छोटों को क्यों नहीं बढ़ाएगा?'

७५ : सत्यनिष्ठा

मनुष्य को जब तक अनुभव नहीं हो जाता, तब तक सत्य का महत्व उसकी समझ में नही आता। जब उसके सिर पर कोई

ऐसी आपत्ति आ पडती है जो असत्य का आश्रय लेने से उत्पन्न हुई हो तो, तत्काल ही वह समझ जाता है कि सत्य का क्या महत्त्व है। इसके लिए प्राचीन कथा का उदाहरण दिया जाता है—

एक मनुष्य ने, अपने पुत्र को नाना प्रकार की शिक्षाए देने का प्रयत्न किया, अनेक प्रकार से उसे समझाने की चेष्टा की, किन्तु उसके दिमाग मे एक भी न जची और वह कुसगति छोडने को तैयार न हुआ। अन्तत कुसगति का जो फल हो सकता है वही हुआ। धीरे-धीरे वह चोरी करने लगा। पिता ने, अनेक प्रयत्न किये, किन्तु सब निष्फल। वह लडका न सुधर सका और दिन-दिन चोर-कर्म मे नैपुण्य प्राप्त करने लगा। पिता से तिरस्कृत होकर भी, उसने अपना काम बन्द न किया और एक दिन राजा के भण्डार पर छापा मारा।

राजा की निपुणता से चोरी का पता लग गया। चोर भी पकडा गया। पकड लिए जाने पर, उस लडके ने यह जाल रचा कि, जिस दिन राज भण्डार में चोरी हुई, उस दिन मैं इस नगर मे था ही नही। इस बात को उसने, अपने मित्रों की गवाही दिला कर प्रमाणित कर दिया। चालाकी पूरी चली, यह देखकर राजा दंग रह गया। उसने अपने मन में सोचा कि, यद्यपि चोरी इसी ने की है, तथापि जब तक इसकी चोरी नियमानुसार प्रमाणित न हो जाय, तब तक इसे चोर कैसे ठहराया जा सकता है? इतने ही मे राजा को युक्ति याद आई। उस लडके का पिता सत्य-भाषण के लिए प्रख्यात था। राजा ने उसी की साक्षी पर मुकदमे का निर्णय छोड दिया।

लडके ने जब यह जाना की मेरे पिता की साक्षी पर ही मेरा भाग्य निर्भर है, तो वह दौडा हुआ अपने पिता के पास गया। वहाँ जाकर उसने पिता के पैरों पर गिरकर प्रार्थना की—'यद्यपि चोरी मैंने ही की है, तथापि यदि आप राजा के सम्मुख यह कह

देंगे कि उस दिन मेरा लडका नगर में नहीं था, तो मैं बच जाऊगा।

लडके ने यद्यपि उक्त प्रार्थना नम्रता-पूर्वक की, किन्तु वह श्रावक ऐसा न था। उसे सत्य की अपेक्षा अपना अन्यायी पुत्र कदापि प्रिय नही हो सकता था। वह एक विद्वान् के निम्न कथन का कट्टर समर्थक था कि—

आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवा।
अनृत ये न भाषन्ते ते बुधाः स्वर्गगामिनः॥

'जो अपने या पराये मतलब के लिए या अपने पुत्र के लिये भी असत्य नहीं बोलते, वे ही बुद्धिमान् देवलोक को जाते हैं।

पिता ने उत्तर दिया—यद्यपि पिता होने के कारण तेरी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है, लेकिन 'सत्य' मेरा सर्वस्व है। सत्य ही मेरा परम मित्र है, सत्य से ही मेरी रक्षा होती है, अत उस परम प्रिय-सत्य को छोड कर, मैं तेरे अन्याय का समर्थन करने के लिए झूठ बोलू, यह कदापि सम्भव नही है। यदि सत्य से तू बचता हो, तो मैं सब कुछ कर सकता हू।

अन्यायी मनुष्य में क्रोध बहुत होता है. पिता का यह उत्तर सुनकर, इस लडके का क्रोध उमड पड़ा। उसने कहा—तुम मेरे बाप क्यों हुए? पुत्र पर दया नही आती और उसकी जान लिवाने को तैयार हो? क्या तुम ही अनोखे बाप हो, या दुनियाँ में और भी किसी के बाप हैं? अच्छी सत्य की पूछ पकड रखी है! लडका चाहे बचे या मर जाय, किन्तु आप अपने सत्य को ही चाटा करेंगे!

पिता—पुत्र! तुझ पर मेरी अनन्त दया है लेकिन तेरे सिर पर इस समय क्रोध का भूत सवार है। इसी से मेरा अच्छा स्वरूप भी तुझे उल्टा दीख रहा है। ऐसा न होता, तो स्वयं समझता कि मैं तुझे बचाने के लिए, असत्य भाषण कर दूं तो मेरा 'सत्य-

व्रत' भंग हो जायगा।

पुत्र—तुम्ही मेरी जान ले रहे हो।

पिता—मैं तेरी जान नहीं ले रहा हू, किन्तु तेरा पाप तेरी जान ले रहा है। मैं तो तेरी रक्षा ही चाहता हू। इसीलिए मैं तुझे बचपन से ही बुरे कर्म से बचने का उपदेश देता रहा। लेकिन तू मेरी शिक्षा की उपेक्षा करता रहा। अब भी मैं तुझे यही उपदेश देता हूँ कि, सत्य की शरण जा, सत्य ही तेरी रक्षा करेगा। यदि असत्य से प्राण बच भी गये, तब भी मृतक के ही समान है और सत्य से प्राण गये तब भी जीवन से श्रेष्ठ है।

निश्चित समय पर राजा ने श्रावक को बुलाया और गवाह के कठघरे मे खडा कर के पूछा—'कहिये सेठजी, जिस दिन राज्य-भण्डार मे चोरी हुई, उस दिन क्या तुम्हारा लडका यहाँ नहीं था? और उसने चोरी नहीं की है?

सेठ—उस दिन वह नगर मे ही था और चोरी उसी ने की है।

धन्य है इस श्रावक को! जिसने अपने पुत्र के लिये भी झूठ बोलना उचित न समझा। यदि वह चाहता तो, झूठ बोल कर अपने लड़के को निरपराध सिद्ध कर सकता था, लेकिन उसने अपने लडके से भी सत्य को कहीं विशेष उच्च समझा। यह श्रावक तो अपने लडके के लिए भी झूठ नहीं बोला, लेकिन आज के लोग कौड़ी-कौड़ी के लिए झूठ बोलने में नहीं हिचकिचाते। इतना ही नहीं बल्कि अकारण ही हँसी-मजाक और अपनी या दूसरे की प्रशसा तथा निन्दा के लिए भी, झूठ को ही महत्व देते हैं। कहाँ तो यह श्रावक, जिसने प्राण-प्रिय सन्तान को भी सत्य के आगे तुच्छ समझा और कहाँ आज के लोग, जो सत्य को कौड़ियों से भी तुच्छ समझते हैं। अस्तु।

श्रावक चाहता तो झूठ बोल सकता था, लेकिन वह इस

बात को जानता था, कि पुत्र की रक्षा वास्तव में सत्यवादी ही कर सकता है, मिथ्यावादी नही।

सेठ का उत्तर सुनकर, राजा धन्यवाद देता हुआ सेठ से कहने लगा—'तुम्हारे जैसे सत्यवादी सेठ मेरे नगर मे मौजूद हैं, यह जान कर मेरे आनन्द की सीमा नही रही। मेरे नगर मे जैसे चोर हैं, वैसे ही सर्वथा सत्य बोलने वाले मनुष्य भी मौजूद हैं, यह अति आनन्द की बात है। मैं तुम पर प्रसन्न हू। तुम इच्छानुसार याचना कर सकते हो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने की प्राणपण से चेष्टा करूंगा।'

सेठ प्रतीक्षा कर रहा था कि, देखें लड़के को उसके अन्याय का क्या दण्ड मिलता है? किन्तु राजा के मुख से यह सान्त्वना-पूर्ण वचन सुन कर वह एकान्त मे जा बैठा और अपने लड़के को बुलाकर उससे बात-चीत करने लगा।

पिता—पुत्र, तेरे ऊपर चोरी का अपराध प्रमाणित हो गया है। अब तुझे जीवित रहने की इच्छा है या मरने की? तू मुझे कहता था कि, झूठ बोल कर बचाओ, किन्तु अब देख कि सत्य बोल कर भी मैं तुझे बचा सकता हू। धर्म रहे, तो जीवित रहना उत्तम है, किन्तु यदि धर्म जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाय तो धर्म जाने के पूर्व मृत्यु ही श्रेष्ठ है। यदि तुझे जीवित रहने की इच्छा हो, तो पाप कर्मों को छोड़ कर सत्य-मार्ग ग्रहण कर। यदि तू मेरे धर्म का अधिकारी बनना चाहे तो मैं राजा से तुझे छोड़ देने की प्रार्थना करू। इसके पश्चात् यदि मैं तेरा आचरण अच्छा देखूंगा, तो तुझे अपना उत्तराधिकारी बनाऊंगा, अन्यथा नही।

पुत्र—आपने पहले भी मुझे यही उपदेश दिया था किन्तु मैं बराबर कुमार्ग पर चलता रहा। यदि अब मैं जीवित बच जाऊंगा, तो सदैव अच्छा आचरण रखूंगा। पिताजी! थोड़ी देर पहले आप मुझे पिशाच के समान मालूम होते थे, किन्तु अब आपके वचन सुन-

कर मेरी दृष्टि ऐसी स्वच्छ हो गई है कि, आप मुझे ईश्वर के समान पवित्र मालूम होते हैं। जहाँ सत्य है वहीं ईश्वर है, यह बात मैं आज समझ सका। आप धन्य हैं, जो अपने सत्य-व्रत के सन्मुख पुत्रप्रेम को भी हेय समझते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ और प्रतिज्ञा करता हू कि भविष्य में मैं सत्य का पालन करूंगा। यदि मैं अपने इस व्रत का, ठीक तरह से पालन न कर सकूंगा तो प्राण त्याग दूंगा। अब आपकी इच्छा पर निर्भर है—चाहे जिलावें या मारें।

हृदय की साक्षी हृदय भरता है। जब सामने वाले का हृदय स्वच्छ होगा तो तुम्हारा भी हृदय स्वच्छ ही रहेगा।

लडके की स्वच्छ हृदय से कही हुई बात सुनकर, सेठ राजा के पास गया और प्रार्थना की—मेरा लडका भविष्य मे सत्य-मार्ग पर चलने का सच्चे हृदय से प्रण करता है, अतः मैं आप से यही चाहता हूँ कि आप उसे छोड दें। मुझे और किसी चीज की आवश्यकता नहीं है।

राजा ने कहा—हम अपराधी को इसीलिए दण्ड देते हैं कि वह भविष्य मे अपराध न करे। किन्तु यदि कोई अपराधी, सच्चे दिल से अपने अपराध पर पश्चाताप कर ले, तो हमे उसके छोड देने में कोई आपत्ति नही हो सकती। मैं तुम्हारे विश्वास दिलाने पर इसे छोडता हूँ और आशा करता हू कि यह अब तुम्हारे आदर्श से पवित्र बन जायगा।

पहले के राजा लोग कुमार्ग से सन्मार्ग पर लाने के लिए ही अपराधी को दण्ड दिया करते थे, आजकल की तरह जेलों मे ठूंसकर केवल बन्दियो की सख्या बढ़ाना उन्हें अभीष्ट न था। वे राज्य मे शान्ति और प्रजा को सुखी बनाने के ही इच्छुक रहा करते थे। यदि अपराधी सच्चे हृदय से, अपने अपराध का पश्चाताप करके, भविष्य मे फिर अपराध न करने की प्रतिज्ञा करता,

तो उसे क्षमा कर दिया जाता था। ऐसी ही उदारता का प्रभाव, मनुष्य के मन पर पड़ा करता है और भविष्य मे वह कुमार्ग पर चलने की इच्छा नही करता।

७६ : सत्य भाषण

सत्यव्रत के पालने वाले मनुष्यो में ऐसी शक्ति होती है कि उनके एक बार सम्पर्क से ही, पतित से पतित व्यक्ति, अपना कल्याण-मार्ग देख लेता है। जिसने सत्य-व्रत का एक देश भी ग्रहण कर लिया, वह भविष्य मे पूर्ण सत्यव्रती बन सकता है। सत्य के प्रभाव से, परिस्थितियाँ ही ऐसी उपस्थित होती हैं कि वे उस मनुष्य को उत्थान की ओर ले जाती हैं। इसके लिये जैन ग्रन्थो मे वर्णित जिनदास नाम के एक श्रावक की कथा इस प्रकार है:—

राजगृह नगर में, एक बडे व्यापारी के यहाँ जिनदास नाम के श्रावक कार्यवश गये। जिनदास, उस समय के बडे आदमियो मे गिने जाते थे। व्यापारी ने उन्हे अपना स्वजातीय-अतिथि समझ कर भोजन का विशेष रूप से प्रबन्ध किया। जिनदास ने, व्यापारी से कहा—आप मेरे लिए कष्ट न कीजिये। मेरा नियम हैं कि जिसकी आय सत्य द्वारा होती है, मैं उसी के यहाँ भोजन करता हूँ। मैं विश्वास कर लेता हूँ कि जिसकी आय असत्य से होती है, उसके यहाँ भोजन नही करता। यदि आप मुझे अपने यहाँ भोजन कराना चाहते हैं तो अपना आय-व्यय का लेखा मुझे बतलाइये। उससे यदि विश्वास हो गया कि आपकी आय सत्य से होती है, तो मुझे भोजन करने मे किसी प्रकार की भी आना-कानी न होगी।

जिनदास श्रावक का, व्यापारी से यह कहना कि—"मैं उस मनुष्य के यहाँ भोजन नहीं करता, जो असत्य से जीविकोपार्जन करता है" यथार्थ है। यह बात अनुभव-सिद्ध है कि जो मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसकी बुद्धि भी वैसी ही हो जाया करती है। श्रीकृष्ण ने, इसी सिद्धान्त को सामने रखकर दुर्योधन के यहा भोजन करने से इन्कार कर दिया था और विदुर के यहाँ जाकर साधारण भोजन किया था।

कई लोग कहते हैं कि सामाजिक करते समय न मालूम क्यो हमारा चित स्थिर नही रहता, लेकिन ऐसा कहने वाले लोग, यह विचार नही करते कि, अनीति से पैदा किया हुआ अन्न पेट मे होने पर, मन स्थिर कैसे रह सकता है! चित्त स्थिर तभी रहेगा जब नीतिपूर्वक अर्जित अन्न पेट मे होगा तथा नीतिपूर्वक जीवन बिताने की भावना होगी।

जिनदास इस बात का अनुमान पहले ही कर लिया करते थे कि, इसका भोजन कैसा है? इसलिये उन्होंने व्यापारी से, अपना आय-व्यय का लेखा बताने को कहा। व्यापारी ने उत्तर मे कहा कि आप तो स्वय नीतिज्ञ हैं, और भली-भाँति जानते हैं कि अपनी आय का भेद दूसरे को न बताया जाय ऐसा होते हुए भी मुझे, आपका आय व्यय का लेखा बताने के लिये बाध्य करना, कैसे उचित कहा जा सकता है?

जिनदास—आप अपना लेखा नही बताना चाहते हैं तो आपकी इच्छा। मैं अपने निश्चयानुसार बिना विश्वास किये भोजन करने मे असमर्थ हूँ।

व्यापारी, जिनदास के शब्दो को सुनकर विचारने लगा—इनकी प्रतिज्ञा तो ऐसी है और ऐसे सत्पुरुष को बिना भोजन कराये घर से जाने देना भी अपने भाग्य को बुरा बनाना है। ऐसी अवस्था मे, क्या करना चाहिए? क्योकि अतिथि को निराश

लौटाने के लिये कहा है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो, गृहात् प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृत दत्वा, पुण्यमादाय गच्छति ॥

अर्थात्—कोई अतिथि, निराश होकर घर से लौट जावे तो वह उस गृहस्थ की पुण्यवानी लेकर, अपना दुष्कृत्य उसे दे जाता है।

इस प्रकार सोच-विचार कर व्यापारी ने जिनदास से कहा—आप लेखा देखकर क्या करेंगे, सच्ची बात मैं जबान से ही सुनाये देता हूँ। वास्तव में तो मैं रात को चोरी करके धन कमाता हूँ, और दिन को व्यापार का ढोंग रचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता हूँ।

व्यापारी की बात सुन कर जिनदास ने कहा—ऐसी दशा मे मैं आपके यहाँ भोजन नही कर सकता।

व्यापारी—यह आपका अन्याय है। दूसरो की अप्रतिष्ठा भी करना और फिर भोजन भी न करना, यह कैसे उचित है ?

जिनदास—यद्यपि मैंने आपकी कोई अप्रतिष्ठा तो नहीं की है, फिर भी यदि आप मेरी एक बात को स्वीकार कर लें, तो मैं भोजन कर सकता हूँ।

व्यापारी के पूछने पर, जिनदास ने कहा—आप चाहे अपने चोरी के कार्य को बन्द करें या न करें, परन्तु सदा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा करलें। यदि आपने यह प्रतिज्ञा धारण कर ली, तो मैं भोजन कर लूंगा।

व्यापारी के ऊपर, प्रतिभाशाली जिनदास के शब्दो का बहुत प्रभाव पड़ा। उसने जिनदास की बात स्वीकार करके असत्य न बोलने की प्रतिज्ञा करली। जिनदास भोजन करके विदा हो गये।

सदा की भाँति व्यापारी आधी रात के समय चोरी करने निकला। परन्तु आज राजा श्रेणिक और प्रधान अभयकुमार प्रजा

का सुख दुख जानने के लिए नगर मे चक्कर लगा रहे थे।

आधी रात के समय अकेला जाते देख, अभयकुमार ने व्यापारी को रोक कर पूछा—कौन है ? व्यापारी इस प्रश्न को सुन कर भयभीत तो अवश्य हुआ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा याद आते ही, उसने निर्भय हो उत्तर दिया—'चोर'। व्यापारी का उत्तर सुनकर, राजा और प्रधान विचारने लगे, कहीं चोर भी अपने आपको चोर कहता है ? यह झूठा है। उन्होंने व्यापारी से प्रश्न किता, 'कहाँ जाता है ?' व्यापारी ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया, 'चोरी करने।'

व्यापारी के इस उत्तर को सुनकर राजा और प्रधान अभयकुमार ने सोचा—यह कोई विक्षिप्त है। विनोद के लिए उन्होंने फिर प्रश्न किया—'चोरी कहाँ करेगा ? व्यापारी ने उत्तर दिया—'राजा के महल में।'

व्यापारी के इस उत्तर से राजा और कुमार का अनुमान और भी पुष्ट हो गया कि, वास्तव मे यह विक्षिप्त ही है। उन्होने व्यापारी को 'अच्छा जाओ कह कर जाने दिया।' इस प्रकार चोर कहते हुए भी न पकडे जाने से, व्यापारी बडा ही प्रसन्न हुआ। वह जिनदास की प्रशसा करने लगा कि, मैं अपने आपको चोर बतलाता जाता हूँ, परन्तु मुझे कोई पकडता नही है। यदि उस समय मैं भागता या झूठ बोलता तो अवश्य ही पकड लिया जाता, परन्तु सत्य बोलने से बच गया।

व्यापारी, इसी विचार-धारा में मग्न राजमहल के पास जा पहुँचा। योग ऐसा मिला कि, व्यापारी जिस समय राजमहल को पहुँचा, उस समय राजमहल के पहरेदार नीद मे झूम रहे थे। ऐसा समय पाकर व्यापारी बेधडक महल में जा घुसा और कोष से रत्नों के भरे हुए दो डिब्बे चुरा कर चलता बना।

लौटते समय व्यापारी को राजा और अभयकुमार फिर भी

मिले। उनके प्रश्न करने पर, व्यापारी ने अपने आपको पुनः चोर बताया। राजा और कुमार ने पहले वाला ही विक्षिप्त समझ कर हंसते हुए प्रश्न किया—'कहां चोरी की और क्या चुराया ? व्यापारी ने उत्तर दिया—राजमहल मे चोरी करके रत्नों के दो डिब्बे चुरा लाया हूं।' राजा ने व्यापारी को पहले ही विक्षिप्त समझ रखा था, इसलिए उसके इस उत्तर पर भी उन्हें कुछ सन्देह न हुआ और उसे जाने दिया।

व्यापारी अपने घर की ओर चलता जाता था और हृदय मे जिनदास को धन्यवाद देता जाता था, कि उन्होंने अच्छी प्रतिज्ञा कराई, जिससे मैं बच गया। अन्यथा मेरे बचने का कोई उपाय न था। अब मुझे भी उचित है कि कभी झूठ न बोल कर अपनी प्रतिज्ञा का दृढतापूर्वक पालन करूं। इस प्रकार विचारता हुआ, व्यापारी अपने घर आया।

प्रातःकाल, कोषाध्यक्ष को कोष मे चोरी होने की खबर हुई। कोषाध्यक्ष, कोष को देखकर और यह जान कर कि, चोरी में रत्नो के दो ही डिब्बे गये हैं, सोचने लगा कि चोरी तो निश्चय ही हुई है, फिर ऐसे समय मे मैं भी अपना स्वर्थ-साधन क्यो न कर लूं ? राजा को तो, मैं सूचना दूंगा तभी उन्हें मालूम होगा कि चोरी हुई है, और चोरी में अमुक अमुक वस्तु इतनी गई है।

इस प्रकार विचार कर कोषाध्यक्ष ने, कोष मे से रत्नो के आठ डिब्बे निकाल कर अपने घर रख लिये और राजा को सूचना दी कि, कोष में से रात को रत्नो से भरे हुए दस डिब्बे चोरी में चले गये।

इस सूचना को पाते ही, राजा को रात की बात का स्मरण हुआ। वह विचारने लगा कि, रात को जिसने अपने आपको चोर बताया था, सम्भवतः वही रत्नो के डिब्बे ले गया है। लेकिन उसने तो, रत्नो के दो ही डिब्बे चुरा कर लाने

को कहा था, फिर दस डिब्बे कैसे चले गये ? जान पड़ता है कि, आठ डिब्बे बीच ही मे गायब हो गए है। इस तरह सोच-विचार कर, राजा ने अभयकुमार को रात वाले चोर का पता लगाने की आज्ञा दी।

नगर मे घूमते-घूमते, प्रधान अभयकुमार उसी व्यापारी की दूकान पर पहुँचा और उसके स्वर को पहचान कर अनुमान किया—रात को इसी ने अपने आपको चोर बतलाया था। अभयकुमार ने व्यापारी से पूछा—'क्या आपने रात को राजमहल में चोरी की थी ? यदि हाँ, तो क्या चुराया था और चोरी की वस्तु मुझे बतलाइये।' व्यापारी ने चोरी करना स्वीकार करके दोनों डिब्बे अभयकुमार के सामने रख दिये। वह सत्य का महत्व समझ चुका था, इसलिये उसे ऐसा करने में किंचित् भी हिचकिचाहट न हुई।

रत्नों के डिब्बों को देखकर विश्वास करने के लिए अभयकुमार ने व्यापारी से फिर प्रश्न किया कि, 'क्या यही थे ?'

व्यापारी ने इस प्रश्न का उत्तर भी 'हाँ' कह कर दिया। कुमार ने डिब्बों सहित व्यापारी को साथ लेकर, राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा, कुमार की चातुरी पर प्रसन्न होकर कहने लगा कि, इसने तो दो ही डिब्बे चुराये थे, जो मिल गये; शेष आठ डिब्बो का पता और लगाओ।

अभयकुमार ने अनुमान किया, और डिब्बो मे कोषाध्यक्ष की ही चालाकी होगी। उसने कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि, चोरी गये हुए दस डिब्बो मे से दो डिब्बे तो मिल गये, शेष आठ डिब्बे कहाँ हैं ? कोषाध्यक्ष घबरा उठा और कहने लगा कि, चोरी हुई तब मैं तो अपने घर था, ऐसी अवस्था में मुझे यह क्या मालूम कि, शेष डिब्बे कहाँ है ?

अभयकुमार, कोषाध्यक्ष की घबराई हुई दशा को देख और

उस का अस्थिर उत्तर सुनकर ताड गया कि, आठ डिब्बो के जाने में इसी की बेईमानी है । उसने कोषाध्यक्ष को भय दिखाते हुए कहा—सत्य कहो, अन्यथा बडी दुर्दशा को प्राप्त होओगे'।

झूठ कहाँ तक चल सकता है ? कोषाध्यक्ष के होठ भय के मारे चिपक से गये और वह कहने लगा—आठ डिब्बे मैंने अपने घर में रख दिये हैं । मैं अपने कर्त्तव्य और सत्य से च्युत हो गया इसके लिये क्षमा प्रार्थी हूँ ।

अभयकुमार ने कोषाध्यक्ष को भी आठ डिब्बों सहित राजा के सामने उपस्थित किया । कोषाध्यक्ष की धूर्तता और व्यापारी की सत्यपरायणता देख, राजा ने कोषाध्यक्ष को तो बन्दीगृह भेजा और व्यापारी को कोषाध्यक्ष नियत किया ।

राजा ने व्यापारी को अपराधी होते हुए भी सत्य बोलने के कारण अपराध का कोई दण्ड न देकर, कोषाध्यक्ष नियत किया इसका प्रभाव लोगो पर क्या पडा होगा, यह विचारणीय बात है । चोरी का अपराध तो व्यापारी और कोषाध्यक्ष का लगभग समान ही था । लेकिन व्यापारी सत्य बोला था और कोषाध्यक्ष झूठ । झूठ के कारण ही, कोषाध्यक्ष अपने पद से हटाया जाकर जेल भेजा गया और व्यापारी को सत्य के कारण ही, अपराध का दण्ड मिलने की जगह कोषाध्यक्ष पद प्राप्त हुआ । राजा के ऐसा करने से, लोगों के हृदय मे सत्य के प्रति कितनी श्रद्धा और झूठ से कितनी घृणा हुई होगी, यह आप स्वय अनुमान कर सकते हैं ।

७७ : अंतिम अवस्था

लोग बूढ़ा आदमी देखते हैं, पर क्या सब को अपनी स्थिति का विचार आता है ? जवानी की मस्ती ऐसा विचार नहीं आने देती। यौवन की कोमल और मधुर प्रतीत होने वाली कल्पनाओं मे यह कठोर और नीरस सत्य स्थान नही पाता। असत् के बाजार में सत् की कोई पूछ ही नहीं है ! लेकिन अन्त मे तो सत् ही सामने आता है।

एक जवान आदमी जवानी के नशे मे अकड़ता जा रहा था। सामने की ओर से एक बूढ़ा लकडी के सहारे आ रहा था। जवान आदमी की टक्कर से वह बूढा गिर पडा। यद्यपि बूढ़े को गिराने का अपराध जवान का ही था, फिर भी वह बूढे पर नाराज होकर कहने लगा—'क्या जानते नही हो कि यह सडक जवानों के चलने के लिए है। तुमने मेरे चलने मे बाधा पहुंचाई है। क्या मुझे जानते नहीं ? आइन्दा ऐसी हरकत की तो हड्डियां चूर चूर कर दी जाएंगी।

बूढा दबने वाला नहीं था। उसने कहा—अकडते क्यो हो ? मैं तुम्हें ही नही, तुम्हारी बुनियाद को भी जानता हूँ।

जवान—मेरी बुनियाद को क्या जानते हो ?

बूढा—तुम्हारी बुनियाद दो बूंद पेशाब ही तो है। दो बूंद पेशाब से मांस का लोथ बना, वह बढ़ा और तब तुम बाहर आये। यह तो तुम्हारी बुनियाद है और उस पर इतना घमण्ड करते हो !

७८ : असलियत

किसी जगह बाजार के बीच में एक पेड था। एक आदमी ने उस पेड को अपनी अंकवार (बाथ) में लपेट लिया और फिर चिल्लाना शुरू किया—अरे दौडो ! मुझे छुडाओ ? पेड ने मुझे पकड रखा है !

लोग इकट्ठे हुए। उन्होने कहा—मूर्ख कही के ! पेड ने तुझे पकड रखा है या तूने पेड को पकड रखा है ?

आज संसार मे लोगो की यही स्थिति हो रही है। वे कहते हैं—स्त्री, पुत्र आदि हमे नहीं छोडते ! यह कैसी उलटी बात है ! स्त्री-पुत्र आदि पदार्थों ने आपको पकड रखा है अथवा आपकी ममता ने उन्हें पकड रखा है ? स्मरण रहे, अगर आप इन्हे नही छोडेंगे तो ये आपको छोड कर अवश्य चले जाएंगे। संसार में कितना स्वार्थ भरा हुआ है, यह बात दो मित्रो की बात सुनने से स्पष्ट हो जायगी।

दो मित्र थे। उनमे से एक ज्ञानी और धर्मात्मा था और दूसरा ससार की माया में फंसा हुआ था। धर्मात्मा मित्र इससे कहता—'मित्र ! ससार की माया मे इतने पचे-पचे मत रहो। दुनिया की सब चीजें दगा देने वाली हैं।' मगर वह उसकी बात पर ध्यान नहीं देता था।

एक दिन धर्मात्मा मित्र ने कहा—जिससे तुम खूब प्रेम करते हो उसकी परीक्षा करके देख लो। परीक्षा करने पर मेरी बात झूठ निकल जाय तो जो इच्छा हो, करना। दूसरे ने यह बात स्वीकार कर ली। धर्मात्मा ने उसे कहा—अपने शरीर की अमुक नस बन्द करके सो रहना। फिर देखना तुम जिसे प्यार करते हो वह

तुम्हें कैसा प्यार करती है ?

उसके घर मे दो ही प्राणी थे—वह स्वय और उसकी पत्नी। उसने अपनी पत्नी से कहा—आज बेसन का हलुआ बनाओ। पत्नी ने बढिया हलुआ बना कर तैयार किया। आज पति पत्नी प्रेमवश शामिल ही भोजन करने बैठे। भोजन कर चुकने के पश्चात् पति ने पेट दुखने का बहाना बनाया। पत्नी ने चूरन-चटनी दी; मगर उससे क्या लाभ हो सकता था ? पति झूठ-मूठ तडफडाने लगा और फिर उसने वह नस दबा ली। उसकी नाडिया बन्द हो गई। पत्नी ने यह हाल देख कर समझ लिया—हस उड गया ! पति की मृत्यु हो गई !

अब पत्नी ने विचार किया—अगर मैं अभी रोने लगूंगी तो सारा मोहल्ला और सगे-सम्बन्धी इकट्ठे हो जाएगे और घर, चीजें, जो इधर-उधर फैली हुई हैं, उठा ले जाएगे। यह सोचकर उसने सब चीजें एक कमरे मे बन्द कर दीं। इसके बाद उसने सोचा—अब रोऊ ? मगर फिर एक बात याद आई। यह रोना-चिल्लाना आज ही तो खत्म होगा नहीं। अगर चार-पाच दिन भी चलता रहा तो भूखो मर जाऊगी। अत अभी जो हलुआ और मीठा दही पडा है उसे पहले खा लूं ! फिर निश्चिन्त होकर रोऊंगी। यह सोचकर पत्नी चौके मे गई। उसने खूब ठास-ठांस कर पेट भरा। फिर रोने की तैयारी करने लगी। उसी समय उसे एक बात और याद आ गई। पति के दांतों मे सोने की कीलें जडी थी। उसने विचार किया—अब मेरे यहां कोई कमाई करने वाला तो है नहीं। इनके दांतों में सोने की जो कीलें लगीं हैं, उन्हें क्यो न निकाल लू। सुना है—मुर्दे के शरीर से खून नही निकलता है और न उसे कोई दर्द ही होता है। तो पत्थर से दांत तोड़कर ४-५ रुपये का सोना निकाल लेना ही उचित है। नहीं तो वह व्यर्थ चला जायगा।

पत्नी ने दांत तोड़ने के लिए ज्यों ही पत्थर उठाया कि उसी

समय पति आँखें मलता हुआ उठ बैठा। पति की यह हालत देखकर पत्नी 'खमा-खमा' करने लगी— ऐसी दशा तो बैरी की भी न हो! चलो, अलाय-बलाय टली।

पति ने पूछा —क्या हुआ ?

पत्नी—कुछ तो नही। जो हो गया सो हो गया!

पति—जरा खुलासा करके कहो।

पत्नी—बुद्धिमान् बीती बातो को याद नही करते।

पति—घर सूना क्यों दिखाई देता है ? सब समान कहाँ गया ?

पत्नी—वह सब कोठे मे डाल दिया है। पिछली बात भूल जाइए।

पति—ठीक हैं पिछली सभी बातों को भूल जाना ही कल्याण-कारी है। मैं उन्हे भुलाने का प्रयत्न करूगा। भूल गया तो मेरा उद्धार हो जायगा।

मित्रो! ससार की इस स्थिति पर टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। आप अपने पिछले ममत्वमय जीवन को भूल कर आत्म कल्याण में लगेंगे तो आपका परम कल्याण होगा।

७१ : मृतक-भोज

मृतक-भोजन राक्षसी भोजन है। पवित्र ब्राह्मण पहले ऐसा भोजन नहीं खाया करते थे, किन्तु आज कई लोग इस अन्न को खाकर ब्राह्मणत्व से च्युत हो गये हैं। आज उनमे वह दिव्य तेज कहाँ है ? उनमें वह वीरता आज कहाँ है जिसके कारण एक बार सारा संसार

चकित था ?

गरीब लोग भूखों मरें—पेट भर अन्न भी न पा सकें और आप मृत्यु के उपलक्ष्य मे भी लड्डू उडाएं ! मित्रों ! आपको यह शोभा नहीं देता। इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण लीजिए—

किसी गाव का पटेल मर गया। उस गाँव मे एक बावाजी हमेशा भिक्षा मांगने आया करते थे। इस दिन पटेल का 'औसर' था। बाबाजी भिक्षा मांगते-मांगते उसी मकान मे पहुचे जिसमे 'औसर' का भोजन बना था। लोगों ने उन्हे मालपुवा, खीर, पुडी और दो-चार शाक दिये। बाबाजी ने सोचा—हमेशा थोडी-थोडी भिक्षा मिला करती थी परन्तु, आज मामला ही दूसरा है। आज इतनी भिक्षा मिली है कि दो-चार दिन का काम चल सकता है ! इसका क्या कारण है ?

आखिर बाबाजी ने एक आदमी को आवाज दी और पूछा—आज यह भोजन किस उपलक्ष्य में है ?

उत्तर मिला—महाराज, इस गांव का पटेल मर गया है। आज उसका औसर है। पटेल बडा धर्मात्मा, न्यायी और भला आदमी था। उसके मरने से सभी लोग बहुत दुखी हैं।

बाबाजी—कैसे मर गया ?

आदमी—सांप ने डंस लिया।

बाबाजी समझ गये, दुनियां बडी ठगोरी है। वह बोले—

बलिहारी उस परड की जो पटेल को खाया।
न्यात भी जीमी और हम भोजन पाया॥

भाइयो ! आप लोग मिलकर उस सांप को अभिनन्दन-पत्र क्यों नहीं देते ?

लोग—वाह महाराज ! ऐसे दुष्ट सर्प को भी क्या अभिनन्दन-पत्र दिया जाता है ?

बाबाजी—क्यों नही ?

लोग—ऐसे पापी को अभिनन्दन-पत्र देकर कौन पाप का भागी होगा ?

बाबाजी—अभिनन्दन-पत्र देने में पाप और खीर मालपुवा उडाने में पाप नही है ? यह कैसी मूर्खता है ?

बाबाजी की बात सुन कर लोगो ने समझा—आज बाबाजी भग के नशे मे मालूम होते हैं ! पर वास्तव मे बाबाजी नशे में नहीं थे। उनके हृदय से मर्मपूर्ण वाक्य निकल रहे थे। उन्होंने फिर कहा—भाईयो ! सर्प ने तो दो ही दांत मारे हैं। उसने खून भी नहीं पिया है परन्तु तुम लोग तो पटेल के मरने पर खीर मालपुवे उडा रहे हो ! पटेल के घर वाले हाय-हाय करके रो रहे हैं और तुम हंसते-हसते माल गटक रहे हो ! सच-मुच ही पटेल के प्रति यदि तुम्हारा आदर-भाव है तो कोई ऐसा काम करो जिससे दूसरों का उपकार हो ! उसका कोई ऐसा स्मारक बनाओ कि दूसरों पर भी उसके गुणों की छाप पडे और दूसरे भी वैसे ही गुणी बनने का प्रयत्न करें।

बाबाजी के वाक्यों का उन ग्रामीणों पर अच्छा असर पड़ा। उन्होंने गो माता की सौगन्द खाकर ओसर-मोसर न करने की प्रतिज्ञा की।

भाइयो ! क्या आप ओसर-मोसर त्यागने की प्रतिज्ञा न लेंगे ? आप दयाधर्मी हैं। दूसरो को दुखी देख कर पसीजने वाले हैं। आपको मौत के उपलक्ष्य में माल खाना नहीं सोहता।

८० : समय का मोल

समय की उपेक्षा मत करो। जो अवसर तुम्हें मिला है, उसे

प्रमाद में मत गवाओ। गया समय फिर कभी हाथ नहीं आता। समय का क्या मूल्य है, यह बात आपको एक उदाहरण से बतलाता हूँ—

किसी गाँव में एक जोशीजी रहते थे। वह ज्योतिष-शास्त्र के बड़े विद्वान्, नीति में निपुण, सत्यशील पालने वाले आत्मनिष्ठ पुरुष थे। विद्वान् अक्सर दरिद्र ही हुआ करते हैं। जोशीजी भी दरिद्रता से मुक्त नहीं थे। कहते हैं—लक्ष्मी और सरस्वती में वैर है। जहाँ लक्ष्मी होती है वहाँ सरस्वती नहीं और जहाँ सरस्वती का वास होता है वहाँ लक्ष्मी नहीं रहती। देखते हैं कि मूर्खों के पास धन का बाहुल्य होता है और विद्वानों के पास बिलकुल अभाव! विद्वान् पुरुष लक्ष्मी की उतनी परवाह भी नहीं करते, फिर भी उसके बिना संसार व्यवहार नहीं चलता। इस कारण कुछ इच्छा रखनी पड़ती है।

तो जोशीजी किसी के सामने हाथ नहीं पसारना चाहते थे। जोशिन इस अवस्था से दुखी थी। जोशीजी की एक पुत्री थी। जब विवाह के योग्य हुई तो जोशिन ने जोशीजी से कहा—सारे दिन घर में पड़े रहते हो। घर में लड़की है, सयानी हो रही है, विवाह करना है। कुछ खर्च की भी फिकर है या दिन-रात पोथी-पत्रा ही पलटते रहोगे? तुम्हारे पीछे मैंने जिन्दगी में कभी सुख नहीं पाया!

जोशीजी उस समय पुस्तकावलोकन में मग्न थे। पत्नी की बातों से उनका ध्यान टूटा। उन्होंने पत्नी के वाक्यों में सत्य अंश देखा। विचार किया—पत्नी की बात ठीक है। कुछ धनोपार्जन न किया तो कन्या का विवाह कैसे होगा? इसके बाद उन्होंने सोचा—द्रव्योपार्जन तो करना ही होगा, मगर किसी से कुछ माँगने से पहले अपनी विद्या की परीक्षा भी तो कर लेनी चाहिए।

जोशीजी ग्रन्थों को टटोलने लगे। पंचांग के पन्ने पलटने

लगे। पन्ने पलटते-पलटते उनका मुँह एकदम खिल उठा।

जोशिन ने पूछा—यह अचानक खुशी किस बात की है?

जोशीजी—समझ लो, अब अपनी दरिद्रता दूर हो गई।

जोशिन—कैसे हो गये हो? न कहीं गये हो न आये हो, और दरिद्रता दूर ही हो गई! मुझे नन्हीं-सी बच्ची समझ कर बहका रहे हो!

जोशी—न आने-जाने से क्या हो गया? मेरी पुस्तकों ने रास्ता दिखला दिया है। अब सब दुख दूर हो जाएँगे।

जोशिन—क्या पागलों की-सी बातें कहते हो! मजूरी तुमसे होती नहीं, काम करते नहीं, बस पुस्तकों से धनवान् बनना चाहते हो! किसी भोली स्त्री को अपनी बातों से बहकाइए। मैं आपके चक्कर में आने वाली नहीं।

जोशी—तू हमेशा ऐसी ही बातें कहा करती है।

जोशिन—अच्छा बतलाइए, दरिद्रता कैसे दूर होगी?

जोशी—पुस्तक में ऐसा लिखा मिला है कि अमुक समय में, अमुक नक्षत्र के योग में, मन्त्र जाप के साथ मेरे 'हूँ' कहते ही यदि हाँडी में जवार ओर दी जाय तो उसके मोती बन जाते हैं।

जोशिन—वाह वाह! क्या गप्प मारी है! मैं तो पहले से ही जानती हूँ कि काम न करने का कोई न कोई बहाना चाहिए। और नहीं तो यही सही!

जोशी—तू कैसी मूर्खा है कि मेरी प्रत्येक बात पर अविश्वास ही अविश्वास किया करती है! क्या मैं कभी झूठ बोलता हूँ?

जोशिन—हाँ, यह बात तो मानती हूँ कि आप कभी झूठ नहीं बोलते। अच्छी बात है- मैं आपका कहा करूँगी।

जोशी—सब ठीक है, तैयारी करो।

जोशिन पड़ोस में रहने वाली एक सेठानी के घर गई।

सेठानी जोशिन को सदा उदास देखा करती थी। आज उसे प्रफुल्लित देखकर बोली—आज तुम्हारे चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई देती है। क्या शुभ समाचार है ?

जोशिन—अब मेरे भाग्य खुलने वाले हैं। इसीलिए तुमसे एक चीज लेने आई हूं।

सेठानी—बडी खुशी की बात है। ले जाओ क्या चाहिए !

जोशिन—थोडी जवार चाहिए।

सेठानी—जवार अपने यहां बहुत है। कहो कितनी दे दू ?

जोशिन—एक सूप भर दे दो।

सेठानी गरीब ही थी मगर हृदय उसका उदार था। जवार को साफ सूफ करके जोशिन को देती हुई वह बोली—जोशिनजी, इससे भाग्य कैसे खुल जाएंगे ?

जोशिन—जोशीजी अमुक समय मे, अमुक नक्षत्र मे एक मन्त्र की साधना करेंगे। जब वे 'हूं' कहेंगे तभी मैं जवार हांडी में डाल दूंगी। ऐसा करने से जवार मोती हो जाएगी।

सेठानी—बहुत अच्छी बात हैं। ईश्वर तुम्हारा भाग्य खोले ! हमें भी तुम्हारी हवेली की कम से कम छाया तो मिलेगी ही ! तुम गायें-भैंसें रखोगी, दूध-दही खाओगी तो छाछ हमे भी मिल जायगी।

जोशिन चली गई। सेठानी ने विचार किया—जोशीजी का घर दूर तो है नहीं, सिर्फ एक टाटी बीच मे है। उस मौके पर अगर मैं भी उनके 'हूं' कहने पर जवार ओर दूं तो क्या हानि हैं ? मोती होंगे तो हो जाएंगे, नहीं तो खिचडी बन जायगी। बिगाड तो होगा नहीं।

जोशिन घर पहुची। जोशीजी ने कहा—देखो, समय होने वाला हैं। चूल्हा जलाकर हांडी ऊपर रख दो। मैं जब 'हूं' कहूं, उसी वक्त जवार डाल देना। क्षण भर की भी देरी मत करना।

जोशिन—एक दम डाल दूंगी देरी क्यों करूंगी ?

जोशी—तू बातूनी बहुत है। याद रखना 'हूँ' कहने के साथ ही डाल देना। नहीं तो सब बेकार हो जायगा।

सेठानी ने सारी कार्रवाई चुपके-चुपके कर ली। इधर जोशिन ने भी चूल्हा जला लिया। जोशीजी मन्त्र पढने लगे। वही समय, वही नक्षत्र और वही योग आते ही उन्होंने 'हूँ' किया।

'हूं' की आवाज सुनते ही सेठानी ने हांडी में जवार डाल दी। पर जोशिन 'हूँ' आवाज सुनकर पूछने लगी—'क्या अब डाल दूँ? आपने जो समय कहा था वह आ गया? इस समय डालने में जुवार मोती बन जायगी? अच्छा, देखना अब डालती हूँ। आपके कहने से डालती हूं, फिर मत कहना कि मेरा कहा नहीं किया!

जोशीजी ने अपना माथा ठोंका और उदास हो गये। उन्होंने सोचा—कितनी बार कहा था कि 'हूँ' कहते ही जवार डाल देना, बातें मत बनाना। फिर भी इसने बातों मे समय खो दिया। क्या मेरे भाग्य मे दरिद्रता ही लिखी है?

समय होने पर जोशिन ने हांडी नीचे उतारी। देखा तो उसमे खीचडी थी। वह उलटी जोशीजी पर चिढने लगी—वाह क्या बढिया मन्त्र है और कैसी उत्तम विद्या है! कहीं जुवार के मोती होते हैं? लो, अपने मोती सभाल लो!

बेचारे जोशी को काटो तो खून नही! इधर पत्नी के वाक्य बाणो से विध रहे थे, उधर पश्चाताप की आग में जल रहे थे। उलटा चोर कोतवाल को डांट रहा है!

उधर पडोसिन ने भी हांडी उतारी। उसकी थाली मे उज्ज्वल मोतियो का ढेर लग रहा था! उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। वह जोशीजी की विद्या की तारीफ करने लगी। उसने सोचा—यह मोतियों का ढेर जोशीजी के प्रताप से ही हुआ है। कुछ मोती उन्हे भेंट करने चाहिए। वह मुट्ठी भर मोती लेकर जोशीजी के घर

गई। उसने अत्यन्त आदर के साथ मोती जोशीजी के चरणो मे अर्पित कर दिये। वह बोली—महाराज, आपकी विद्या के प्रताप से ही मैंने यह मोती पाये हैं। लोभ के कारण थोडे-से ही लाई हूं। आप इन्हे स्वीकार कीजिए।

जोशी—मेरे प्रताप से कैसे ?

सेठानी ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर जोशिन से कहा—जोशिनजी, आप जोशीजी को जली कटी सुना रही हो, पर वास्तव मे दोष आपका ही है। देखो, मैंने समय पर जवार डाली तो वह मोती बन गई कि नहीं !

जोशीजी अपनी विद्या की सफलता देखकर बहुत प्रसन्न हुए। जोशिन, जोशी के चरणो मे गिर पडी। कहने लगी—सचमुच मैं बडी अभागिनी हू। मुझे क्या पता था कि जरा-सी देर मे इतना फर्क पड जायगा ! अब आप दूसरा मुहूर्त्त निकालिए। इस बार मैं हर्गिज चूक नही करूगी।

जोशी—"लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितु क समर्थ।" भाग्य लिखे को कौन मिटा सकता है ? अब मुहूर्त्त मेरे हाथ मे नही है। ऐसा मुहूर्त्त हमेशा नही आया करता। हजारो वर्षों मे कभी ऐसा योग मिलता है।

मित्रो आपको जो अनमोल अवसर मिला है, वह बहुतो को असख्य-असख्य जन्म धारण करने पर भी नहीं मिलता इस अवसर को वृथा प्रमाद मे गवा देने वालों को घोर पश्चात्ताप करना पडेगा। अगर आप पश्चात्ताप की आग मे दग्ध होने से बचना चाहते हैं तो इस अनमोल अवसर का सदुपयोग कर लीजिए।

८० : श्रद्धा

एक सेठ के दो लड़के जंगल में गये। वहाँ से वे मयूरनी के दो अण्डे उठा लाये। दोनों अंडे मुर्गी के पास रख दिये गये। मुर्गी उन अंडों को अपने पंखों के नीचे रखती और उनकी हिफाजत करती।

दोनों लड़कों में से एक को पूरा विश्वास था कि मयूरनी के अंडे में से मयूर का बच्चा जरूर निकलता है। यह बात प्रत्येक मनुष्य जानता है, परन्तु दूसरे लड़के में विश्वास की कमी थी। उसका चित्त बहुत अस्थिर था। अतएव उसे सन्देह होता—अंडे में से मयूर निकलेगा या नहीं? वह अंडे को कभी ऊँचा करता, कभी नीचा करता, कभी हिला-डुलाकर देखता कि इसमें बच्चा है या नहीं? दूसरा लड़का अपनी शान्ति में मस्त था। वह जानता था कि मयूरनी के अंडे में से बच्चा निकलेगा अवश्य, पर निकलेगा समय पर ही।

अस्थिर चित्त वाले लड़के के अंडे का रस जम न सका। हिलाने-डुलाने से वह पतला पड़ गया। उसने एक दिन ज्यों ही अंडा उठाया कि वह फूट गया। दूसरे अंडे को समय होने पर मुर्गी ने फोड़ा। भीतर से मयूर का बच्चा निकला। जब वह बड़ा हुआ तो उसे नृत्यकला सिखलाई गई। एक दिन कहीं जल्सा होने वाला था। वह लड़का अपने मयूर को वहाँ ले गया। मनुष्य पक्षियों का प्रेमी होता ही है, फिर मयूर जैसे सुन्दर पक्षी को कौन न प्यार करेगा? उस मयूर को देखकर सब लोग प्रसन्न हो गये। परन्तु जब उसने अपनी नृत्यकला दिखलाना आरम्भ किया तब तो सब लोगों के मुख से 'वाह-' और 'शाबाश शाबाश' की आवाजें

निकलने लगीं। सब ने उस पालने वाले लडके को धन्यवाद दिया। यह दृश्य देखकर दूसरा लडका बहुत पछताया और दुखी हुआ।

मित्रो! एक अपनी दृढ श्रद्धा के कारण प्रसन्न हुआ और धन्यवाद का पात्र बना और दूसरा अश्रद्धा के कारण दुखी हुआ। इसी प्रकार निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर वीतराग की वाणी पर जो प्रगाढ़ श्रद्धा रखता है, वह अवश्य ही सुख का भागी होता है।

८२ : ऊंची-भावना

एक लखेरा गधी पर चूडियों का गौन लाद कर बाहर जाया करता था। गधी की चाल सुस्त थी, इसलिए यह उसको टिक-टिक करता हुआ 'चल मेरी बहिन, चल मेरी काकी' आदि कहा करता था।

लोग मसखरे होते ही हैं। राह चलते मनुष्य को भी वे पागल बनाने की कोशिश करते हैं, तो गधी को माँ, बहिन और काकी बनाने वाले को कब छोडने लगे—वाह रे बेवकूफों के सरदार! गधी को भी माँ-बहिन बना रहा है। तुझे शर्म नही आती?

लखेरे ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—भाइयो! मेरा धन्धा और ही प्रकार का है। राजाओं, रईसों, सेठो और साहूकारों के घर की स्त्रियों के हाथों मे मुझे चूडियाँ पहनानी पडती है। मगर मैं स्त्री जाति के प्रति माता बहिन की भावना न रक्खूँ तो मेरा धन्धा तो डूबे सो डूबे ही, मेरा सारा भव भी डूब जाय।

ऐसी भावना वाले चाहे कोई लखेरा हो या और कोई अवश्य ही धन्यवाद का पात्र है। ऐसी ऊँची और पवित्र भावना

वाले नररत्न ही अपने जीवन को ऊंचा बना सकते हैं ।

८३ : पाप-पुण्य

एक सेठ थे । सेठ जब दुकान से लौट कर आते तो उन्हें गरम-गरम रोटी दाल मिलती । सेठजी भोजन करके वापिस लौट जाते । तब सेठानी चूल्हे मे से गोल बाटियां निकालती, उन्हे साफ-सूफ करके घी मे डुबा कर चीनी के साथ मजे मे खाया करती थी । सेठजी कभी कहते—तू भी भोजन करने बैठ जा । साथ ही साथ खा लें ।' तो सेठानी कहती—अजी पहले आप तो जीम लीजिये । मैं पड़ी चूल्हे मे । सेठ इस उत्तर को सुनकर समझना—मेरी पत्नी बड़ी पतिभक्ति करने वाली है । देखो न कभी साथ भोजन करने नहीं बैठती । मेरे भोजन करने के बाद ही भोजन करती है ।

बहुत दिनो तक यही क्रम चलता रहा । एक दिन कार्यवश सेठानी पडौस मे गई और भोजन का समय हो जाने से सेठजी घर में आ पहुचे । थोड़ी देर बैठे तो उन्हें सेठानी की बात याद आ गई । सोचा—सेठानी हमेशा कहा करती है कि मैं पड़ी चूल्हे में, तो देखना चाहिए बात क्या है ? ज्यो ही उन्होंने चूल्हे की राख उठाई कि अन्दर से गोल बाटी निकली । देखकर सेठजी समझ गए कि सेठानी के कहने का आशय क्या है ।

सेठजी उसी समय बाटियां खाने बैठ गये । अब वह खा पी चुके और हाथ मुह धो चुके तब सेठानी आई और बोली—भोजन तैयार है । परोसू ?

सेठ—आज पहले तुम्हीं जीम लो ।

सेठानी—अजी, मैं तो पड़ी चूल्हे में ।

सेठ खिलखिला कर हंस पड़े और बोले – हमेशा तुम चूल्हे मे पड़ती थी, आज मैं ही पड़ गया ।

सेठानी ने चूल्हे की तरफ देखा । उसकी लज्जा का पार न रहा ।

भाइयो ! जो बहिन भुक्कड़ होती है, अपने स्वार्थ के लिए भोजन बनाती है, किन्तु दूसरों को सुख-शान्ति एवं साता पहुचाने के उद्देश्य से भोजन बनाने वाली बहिन पाप मे भी पुण्य का उपार्जन कर लेती है ।

८४ : 'यह भी न रहेगी'

आज मैं बहुत से भाइयो के चेहरे पर उदासी देखता हूँ । इस उदासी का कारण क्या है ? लोग उदास क्यो हैं ? ये भूखे नहीं हैं, सब को समय पर खाने को भोजन मिलता है । ये नंगे भी नहीं हैं, सब के पास पहनने को अच्छे-अच्छे कपड़े हैं । फिर उदासी का कारण क्या है ? एक ही कारण है और वह यह कि थोड़ीसी हानि होने से ही यह रंज कर बैठते हैं और थोड़ा-सा लाभ होने से ही फूल जाते हैं ।

एक बादशाह को मानसिक बीमारी थी । वह दिन-दिन सूखता चला जा रहा था । उसको खाने पीने की किसी प्रकार की कमी नहीं थी । फिर भी वह इतना दुबला और तेजो हीन दिखाई पड़ता था, मानो कई दिनों से उसे भोजन नसीब नहीं हुआ है ।

बादशाह का वजीर बड़ा बुद्धिमान था । उसने बीमारी का

कारण समझ लिया । अतएव एक दिन बादशाह से निवेदन किया—हुजूर, आप दुबले होते जाते हैं ।

बादशाह—मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है, पर मैं अपनी बीमारी को समझ नहीं पा रहा हूं ।

वजीर—मैं आपकी बीमारी को समझ गया हूं । उसे दूर करने के लिए एक मंत्रित अंगूठी आपको दूंगा । उसे पहन रखने से बीमारी दूर हो जायगी ।

बादशाह—बहुत अच्छा ।

थोड़े दिनों के पश्चात् वजीर ने बादशाह को एक अंगूठी दी और कहा—हुजूर अब आपकी बीमारी चली गई समझिए । अब किसी प्रकार की चिन्ता न होगी ।

बादशाह को सन्तोष हुआ । उसने उंगली में अंगूठी पहन ली ।

कुछ दिनों बाद खबर आई कि अमुक गांव लुट गया है, शाही सिपाही मारे गये हैं और बहुत हानि हुई है ।

इस खबर से बादशाह को बहुत चिन्ता हुई । जब वजीर आया तो बादशाह ने उससे कहा—वजीर, तुम कहते थे कि मेरी सब चिन्ताएं दूर हो गई, पर मुझे तो इन समाचारों से बड़ा रंज हो रहा है ।

वजीर—आप जरा अंगूठी पर नजर डालिए ।

अंगूठी पर लिखा था—'यह भी न रहेगी ।'

यह शब्द बादशाह को शान्तिदायक हुए । वह समझ गया कि आज जो स्थिति है वह कायम रहने वाली नहीं है ।

कुछ दिनों बाद खुशी के समाचार आये । बादशाह हर्ष के मारे फूल उठा । तब वजीर ने अंगूठी की तरफ इशारा किया—'यह भी न रहेगी ।' यह शब्द पढ़ कर बादशाह के हर्ष का उफान शान्त हुआ । अब बादशाह समझ गया कि मेरी बीमारी की सच्ची

दवा यही हैं ।

मित्रो ! यही बात आप अपने लिए समझो । विपत्ति आने पर विषाद और सम्पत्ति मिलने पर हर्ष मत करो। प्रत्येक स्थिति में समभाव रक्खो । ससार में लिप्त न होओ । अपने अन्त करण को समभाव से भूषित करना कठिन कार्य नही है । थोडे दिनों के अभ्यास से यह सुगम हो जायगा ।

८५ : मच्छीमार साधु

एक राजा को जुआ खेलने का शौक लग गया । उसने समझा-वैसे तो बडे परिश्रम से और बहुत दिनों में खजाना भरेगा, जुए से जल्दी भर जायगा । उसे सीधा धन कमाने की इच्छा हुई ।

राजा के पास बहुत से पडित आया करते थे । वे राजा को बहुत समझाते, पर वह किसी की न सुनता । पडित आखिर दुनियादार थे । उन्हें राजा का लिहाज रखना पडता था । अतएव वे जोर देकर कह भी नही सकते थे । मगर एक दिन एक मस्त फक्कड आया । उसे राजा की बुरी लत का पता चला । उसने सोचा—यह बहुत बुरी बात है । राजा बिगड गया तो सारी प्रजा बिगड जायगी । 'यथा राजा तथा प्रजा' प्रजा का सुधार और बिगाड राजा पर ही निर्भर है । किसी उपाय से राजा को सुधारना चाहिए ।

अवसर देख कर उस साधु ने अपने कन्धे पर मछली फसाने का जाल रख लिया और वह जगल मे घूमने लगा । सयोग से

राजा भी उधर आ निकला। साधु के कन्धे पर जाल देख कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने सोचा—यह कौन व्यक्ति है जिसने साधु का भेष बनाया है पर मच्छीमार का काम करता है। आखिर राजा ने उसे अपने पास बुला कर पूछा—तुम कौन हो?

साधु—मैं साधु हूं।

राजा—साधु होकर मच्छी मारते हो?

साधु—हां, मांस भी खाता हूं।

राजा—क्या कहते हो? साधु होकर मांस खाते हो?

साधु—हां, खाता हू पर मदिरा के साथ मिलाकर।

राजा (आश्चर्य से)—मदिरा भी पीते हो?

साधु—वेश्यागमन का आनन्द मदिरापान किये बिना नहीं आता।

राजा—छिः छि! साधु होकर वेश्यागमन भी करते हो?

साधु—जी हां, मैं चोरी भी करता हूं।

राजा—साधु होकर चोरी! और फिर मेरे सामने उसे स्वीकार करते हो?

साधु—जुआ भी तो खेलता हूं। सच पूछिए तो जुए के कारण ही यह सब आदतें मुझ मे आ गई है।

साधु की बात सुनकर राजा चौंक पड़ा। उसने मन मे सोचा—जुआ तो मै भी खेलता हूं! जो काम मैं स्वयं करता हूं, उसके लिए दूसरे को दंड किस प्रकार दे सकता हूं?

साधु की मुस्कान भरी मुखमुद्रा देख कर राजा समझ गया कि यह कोई व्यसनी पुरुष नहीं है। मुझे शिक्षा देने के लिए ही इन्होंने यह दिखावा किया है। अन्त मे राजा साधु के चरणो में गिर कर बोला—महात्मन्! आपने मुझे सुधारने के लिए इतना कष्ट उठाया है। मैं आपका आभारी हू: क्षमा कीजिए।

साधु ने कहा—मुझे प्रसन्नता है कि मेरा प्रयत्न सफल हुआ। मैं ऐसे कष्ट को कष्ट नही समझता। ससार को सुधारना, लोगो को गलत रास्ते से हटाकर सही राह पर लाना साधुओं का कर्त्तव्य ही है।

मित्रो ! सतो के समागम की ऐसी महिमा है। अनेक विद्वान् से भी जो काम नहीं होता, वह सच्चे सन्त पुरुष के समागम से सहज ह हो जाता है।

८६ : शरणागत प्रतिपाल

मैंने सुना था, सन् १९२३ के लगभग दिल्ली मे एक दरबार भरा था। उसमे भारत के तमाम राजा-महाराजाओं ने भाग लिया था। उसमे रतलाम के कुंवर भी गये थे। उनकी उम्र बहुत छोटी थी। उनके साथ एक मुशीजी आये थे, जो शायद उस समय रतलाम के दीवान या और कोई ऑफीसर रहे होंगे। दरबार में सब राजाओं के लिए कुर्सियां लगाई गई थी पर रतलाम के कुंवर क्योंकि बहुत छोटे थे, अतएव उनके लिए कोई कुर्सी नही थी। मुशीजी ने सोचा—कुंवर साहब के लिए कोई कुर्सी नही है और इधर-उधर बैठना भी ठीक नही है। लौट जाने से रतलाम की प्रतिष्ठा को क्षति पहुचती है। मुशीजी बड़े चतुर आदमी थे। आखिर उन्होंने कुंवर साहब को लाट साहब की गोद मे बिठला दिया।

यह देख लाट साहब चौंक उठे। बोले—हैं, यह क्या किया ? तब मुंशीजी ने नम्रता से उत्तर दिया—मैंने तो आपकी गोद में

इन्हें बिठला दिया है। अब जैसी आपकी इच्छा हो सो कीजिए।

लाट साहब कुंवर को अपनी गोद से फेंक तो सकते नहीं थे। मुन्शीजी का आशय समझ कर उन्होंने एक और कुर्सी लगा देनें की आज्ञा दे दी।

भाइयो! यह एक लौकिक उदाहरण है। जब लाट साहब लोक-लज्जा के कारण शरण मे आये हुए का इतना खयाल करते हैं तो त्रिलोकीनाथ प्रभु क्या किसी तरह उदासीन रह सकते हैं? क्या प्रभु की शरण में जाने पर भी कोई चिन्ता शेष रह सकती है? भगवान् शरणागत प्रतिपाल हैं।

८७ : वफादार

एक किसान पर किसी सेठ का कर्ज था। किसान कभी कभी शहर मे आता, पर उसे डर लगा रहता कि कहीं सेठजी न मिल जाएँ। उसके पास कर्ज अदा करने को कुछ भी नहीं था। अतएव वह शहर मे आकर चुपके-चुपके अपना काम करके लौट जाता था।

एक दिन अचानक सेठ ने किसान को देख लिया। सेठ ने कहा—क्यो रे! आजकल दिखाई ही नही देता। जान पड़ता है कर्ज चुकाने की इच्छा नहीं है?

किसान—नहीं सेठ साहब, ऐसी बात नहीं है। मैं आपका कर्ज जरूर चुकाऊंगा, पर इस समय मेरे पास नहीं है। इसलिए लाचार हूं।

सेठ—तेरे पास नही है? मैं सब समझता हूं। तेरे

पास खेत हैं, बैलों की जोडी है । फिर झूठ क्यों बोलता है ?

किसान—झूठ बोलना मैं नहीं जानता । मेरे पास होता तो कभी का चुका देता ।

सेठ—ऐसा झांसा किसी और को देना । बहुत दिनों में पकड़ पाया है । अब मैं नही छोडने का । चल मेरे घर पर । कर्ज चुकाये बिना हर्गिज नहीं छोड़ूंगा ।

यह कह कर सेठ उसे अपने घर ले गया । सेठ ने जहाँ बिठलाया, वही वह बैठा रहा । बैठे बैठे तीन दिन हो गये । किसी ने रोटी के टुकडे के लिए भी उसे न पूछा । सब अपने-अपने काम मे मस्त थे । तीन दिन बाद अचानक सेठजी की निगाह उस पर पडी । उन्हे ख्याल आया कि तीन दिन से यह यहीं बैठा है । इसने न कुछ खाया है, न पिया है ।

सेठजी समझ गये कि इसके पास देने को कुछ नहीं है । आखिर उनका दिल पसीजा और उसे जाने की छुट्टी दी । बोले—जाओ, कर्ज जल्दी चुकाने का ध्यान रखना ।

किसान घर पहुंचा । उसकी स्त्री और बाल-बच्चे भूखे बिलबिला रहे थे । स्त्री ने कहा—घर मे एक दाना भी नहीं है । तीन दिन तक कहाँ चले गये थे ? किसान ने आप बीती सुना दी । साथ ही कहा—मैं भी तीन दिन का भूखा हूं । कुछ हो तो ले आओ ।

किसान की स्त्री मर्माहता होकर बोली—लाऊँ कहाँ से ? बच्चों के लिए इधर-उधर से रोटी ले आई थी । मैं स्वय तीन दिनों से भूखी हूँ । समझती थी, आप आएंगे तो कुछ लाएंगे । अब मैं क्या करूं ?

पति और पत्नी—दोनों का साहस चुक गया । भला इस भूख मे मेहनत-मजदूरी भी कैसे हो सकती है ? निराश हो किसान ने कहा—इस जिन्दगी से मौत क्या बुरी है ? दोनों

जहर क्यो न खालें ?

किसान की पत्नी इस भयानक विचार से घबरा उठी। उसने कहा नही, ऐसा विचार मत कीजिए। एक बार उन्ही सेठजी के पास जाकर कुछ और मदद माँग लेना उचित है।

किसान - मुझे तो अब लाज आती है।

पत्नी—लाज किस बात की ? हजम कर जाने की तो अपनी नीयत है नही। जाकर कहिए—सेठ साहब, हमारे यहाँ खाने को कुछ नही है। खाये बिना काम नही होता। मर जाएँगे तो आपका कर्ज सारा डूब जायगा। जिन्दा रहें तो अगला-पिछला सब चुका देंगे।

स्त्रियाँ लक्ष्मीरूप होती हैं। उनकी सलाह कई बार इतनी अच्छी होती है कि हतप्रभ मनुष्य के ख्याल मे भी नहीं आती। किसान अपनी पत्नी की सलाह मानकर सेठ के पास गया। ज्यो की त्यो सारी बात सेठजी से कह दी। सेठ दयालु था। उसने किसान की बात पर विश्वास करके कहा—अच्छा, तू जितना ले जा सके उतने गेहूँ बाँध कर ले जा।

गेहूँ लेकर किसान घर पहुचा तो उसकी पत्नी को बडी प्रसन्नता हुई। किसी प्रकार से अपना काम चलाने लगे। मगर किसान को दिन रात यही चिन्ता लगी रहती कि सेठ का कज किस प्रकार चुकाया जाय ? वर्षा के दिन नजदीक आ गये थे। किसान के पास खेती करने का कोई साधन नही था। उसने स्त्री से कहा—अब चोरी किये बिना सेठ का कर्ज अदा नही हो सकता। मैं चोरी करके ही सेठ का कर्ज अदा करूँगा !

स्त्री बोली—चोरी करोगे तो पकडे जाओगे। यह काम अपने को नहीं सोहता।

मगर किसान अपने संकल्प मे दृढ रहा। एक

वह चोरो का वेष बनाकर चोरी करने निकल पड़ा।

रास्ते मे २६ चोर कही चोरी करने जा रहे थे। वे इसे देखकर दौडने लगे। तब किसान बोला - भाइयों! डरो मत। मैं भी चोर हूँ। चोरी करने ही निकला हूँ। मुझे भी साथ ले लो तो अच्छा हो।

चोरों ने हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला मजबूत आदमी देख कर उसे अपने साथ ले लिया। सब मिलकर उसी शहर में चोरी करने गये, जहाँ उस किसान का सेठ रहता था। चोरो ने धनवान् की हवेली देखकर सेंध लगाई। अन्दर घुसने का अच्छा रास्ता बन गया।

इसके बाद चोरो के मुखिया ने कहा—जो सबसे पहले अन्दर घुसेगा उसे सबसे ज्यादा हिस्सा मिलेगा। बोलो, कौन तैयार होता है?

किसान ने कहा—मुझे अपने सेठ का कर्ज चुकाने के लिए धन की विशेष आवश्यकता है। मैं पहले जाऊँगा।

किसान सेंध मे होकर भीतर घुसा। उसने इधर-उधर नजर दौडाई तो वह घर सेठ का ही मालूम हुआ। वह चट बाहर निकल कर बोला—भाइयो! यहाँ से चोरी नहीं कर सकते। यह तो मेरे सेठ का ही घर हैं।

चोर—पागल! कही चोरी के लिए भी ऐसा विचार किया जाता है?

किसान—नहीं, इस घर में चोरी नहीं कर सकते।

चोर—चल, हट, हम भीतर घुसेंगे।

किसान—हर्गिज नहीं। जब तक मेरे शरीर मे प्राण हैं, यहाँ चोरी नही करने दूगा।

चोरो में साहस ही कितना? वे सब चुपचाप वहाँ से चलते बने।

किसान ने सेठ को आवाज देकर जगाया। सारी कहानी सुनाकर सावधान रहने की बात कह कर वह चलने लगा। सेठ ने उसका हाथ पकड़ लिया। किसान बोला—मैंने आपकी चोरी नहीं की है फिर क्यों मुझे पकड़ते हैं?

सेठ गद्‌गद् होकर बोला—तू धन्य है। मैंने सारा कर्ज भर पाया। आज तू मेरी रक्षा न करता तो मेरी तकदीर फूट जाती। खैर, अब यह घर तेरा है। तू मेरा भाई है। जब कभी जिस चीज की आवश्यकता हो, निस्संकोच ले जाया कर।

मित्रो! जिस प्रकार तीस चोरों में से एक चोर के फूट जाने से २९ का दाव न लगा और सेठ का धन बच गया, उसी प्रकार दिन-रात के तीसों मुहूर्त्त रूप चोर आत्मिक धन को लूट रहे हैं। अगर उनमें से एक मुहूर्त को भी अपना लिया जाय—एक मुहूर्त्त भी सामायिक आदि धर्मक्रिया मे लगा दिया जाय तो आत्मधन की चोरी को सहज ही बचाया जा सकता हैं।

८८ : पंचों का मकान—शरीर

कलकत्ता भारतवर्ष का सबसे बड़ा शहर है। उसकी आबादी भी घनी है। यहाँ लोगों को रहने के लिए मकान तक नहीं मिलते। ऐसी स्थिति मे हरेक को बड़ा मकान मिलना मुश्किल है। गृहस्थ के यहाँ विवाह आदि कई काम होते रहते हैं। ऐसे अवसरों पर बड़े मकान के बिना काम नहीं चलता। इसी दृष्टि को सामने रखकर किसी जाति के पंचों ने मिलकर एक बड़ा जातीय मकान बनवाया। उस जाति का कोई भी व्यक्ति विशेष

प्रसग पर उसे काम मे ला सकता था। मकान लेने का नियम यह था कि उसे जो लेना चाहे, किरायानामा लिख दे और किराया तय कर ले। लोग इसी नियम के अनुसार मकान लिया करते और भाडा दिया करते थे। कार्य हो चुकने पर मकान पचो को सौंप दिया जाता था

सब मनुष्य सरीखे नही होते। एक मनुष्य ने लडके के विवाह के लिए मकान मांगा। मकान उसे नियमानुसार दिया गया। विवाह का कार्य समाप्त हो गया। दो चार दिन अधिक बीत गये। लोगो ने समझा-अब मकान खाली हो जायगा। पर जिसने मकान लिया था, उसने मन मे सोचा—मकान बहुत अच्छा है। ऐसा मकान मुझे और कहाँ मिलेगा ? आखिर पचो का मकान हैं। मैं भी पच हूं। मैं मकान खाली नही करूँगा।

इस तरह बहुत दिन बीत जाने पर भी जब उसने मकान खाली नहीं किया तो पचो के पास शिकायत पहुँची। पचो ने अपना आदमी भेज कर कहलाया—आपके लिखे अनुसार दिन समाप्त हो चुके हैं। अब आप तुरन्त मकन खाली कर दीजिए। परन्तु वह मनुष्य उस आदमी की बात सुनकर आग बबूला हो गया। बोला—जा, जा, पचो से कह दे कि मकान खाली नहीं होगा। मकान पचो का है। मैं भी पच हूं। क्या वे अकेले ही पच है ?

नौकर ने पचो से यही बात कह दी। पच अचम्भे मे पड गये। कोई रास्ता न देखकर उन्होने अदालत की शरण ली। पुलिस आई। उसने मकान खाली कर देने का सरकारी हुक्म दिखलाया। कहा—इसी वक्त मकान खाली करो, वरना चालान कर दिया जायगा।

वह आदमी उधार खाये बैठा था। पुलिस की बात सुन कर उन पर उबल पडा। मार-पीट करके पुलिस को भगा दिया।

अब मामला जटिल बन गया। पहले पच मुद्दई थे, अब

सरकार भी मुद्दई बन गई। आखिर वह आदमी गिरफ्तार कर लिया गया। फौजदारी मुकदमा चलाया गया।

उस आदमी ने अपने बचाव मे कहा—पुलिस ने मुझे अपने मकान मे से निकाल कर अत्याचार किया है। मकान पचों का है और मैं भी पच हूँ। फिर मुझे मकान मे से क्यों निकाला जाता है? मगर सार्वजनिक सम्पत्ति को न्यायालय व्यक्ति की सम्पत्ति कैसे स्वीकार कर लेता? फैसला हुआ तो मालिक बनने की जाल-साजी और फौज्दारी—तीनो अपराधो मे उसे कडी सजा मिली। मकान-मालिक बनना तो दरकिनार, वह बस्ती मे भी नही रह सका।

मित्रो! इस दृष्टान्त को सामने रख कर सोचना चाहिए—यह शरीर पच भूत रूपी पचो का मकान है। हमें पुण्य रूप किराया देने पर कुछ कर लेने के लिए यह मिला है। अतएव इसका मालिक बनने की चेष्टा न करते हुए जल्दी ही शुभ काम कर लेना चाहिए, ताकि पचों को धक्का देकर निकालने की नौबत न आवे। अगर आप वृथा स्वामित्व जमाने की चेष्टा करेंगे तो अन्तत नरक रूप कारागार का अतिथि बनना पडेगा।

८१ : सौ सयाने एक मत

एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा—'सो सयानों का एक मता और एक मूर्ख के सो मता' कैसे? बीरबल ने कहा—जहाँ-पनाह! इसका उत्तर कल दूंगा।

रात्रि मे बीरबल अच्छे-अच्छे सो सयानों के पास गया। उनसे कहा—शाही बाग होज मे, बिना कुछ बोले एक घडा दूध का

डाल आना।

उन्होने पूछा—वह किस काम आएगा ?

बीरबल—बादशाह सलामत होली खेलेंगे।

समझदारों ने कहा—ठीक है। आज्ञा का पालन किया जायगा।

सब समझदारो ने अपने-अपने मन मे सोचा—सौ आदमी दूध के घड़े हौज मे डालेंगे। बादशाह को दूध पीना तो है नहीं, अगर मैं उसमे मे एक घडा पानी डाल दू तो क्या हर्ज है ? इस प्रकार सोच कर सभी ने एक-एक घडा पानी हौज मे डाल दिया।

बादशाह और बीरबल हौज देखने गये। बादशाह ने हौज देखकर कहा—यह क्या ? हौज में तो पानी है। इसे तो दूध से भरवाने को कहा था न ?

बीरबल—हुजूर, आपने दूध से ही भरवाने का हुक्म दिया और मैंने भी लोगों को दूध से भरने के लिए ही कहा था।

बादशाह—अच्छा, उन सब को बुलाया जाय।

आखिर सब समझदार सयाने इकट्ठे हुए। बीरबल ने उनसे कड़क कर कहा—मैंने दूध के घडे लाने के लिए कहा था। तुमने हौज पानी से क्यों भर दिया ? तुमने बादशाह सलामत की आज्ञा को भग किया है। तुम्हें भारी से भारी दण्ड दिया जायगा।

सौ समझदारों मे से एक ने उठ कर निर्भयता से कहा—श्रीमान् आपने हमे दोषी ठहराया और दण्ड देने का विचार भी कर लिया, मगर पहले हमारी अर्ज सुन लेते और बाद मे हुक्म फरमाते तो अच्छा था !

बादशाह—बोलो, क्या कहना चाहते हो ?

समझदार—हुजूर, मैं सिर्फ इस खयाल से पानी का घडा लाया था कि बादशाह होली खेलेंगे तो खेल के लिए दूध क्यो बिगाड़ा जाय ? हाँ, पीने के लिए यदि दूध मगवाया होता तो

हम अच्छे से अच्छा लाकर हाजिर करते । फिजूलखर्ची होते देख हमने किफायतसारी का काम किया है । मेरा खयाल है कि मेरे और सब साथी भी इसी खयाल से पानी का घडा लाये होंगे ।

उन सब ने कहा—हाँ, यही विचार था ।

उसने फिर कहा—हुजूर को मालूम हो गया है कि हमने सिर्फ किफायतसारी की गर्ज से ही ऐसा किया है । मगर आप हम लोगों को फाँसी की सजा दे देंगे तो आपके राज्य मे किफायत करने वाले लोग कहाँ से आएँगे ?

बादशाह ने सोचा—बात ठीक है ।

बीरबल बोले—हुजूर, देखा आपने सौ सौ सयानों का एक मता ।

बादशाह बीरबल के इस प्रत्यक्ष उदाहरण से बहुत प्रसन्न हुआ ।

मित्रो ! आप लोग अगर समझदार हैं तो आपका भी एक ही विचार, एक ही सकल्प और एक ही भावना होनी चाहिए । आपस में फूट होने से सघ निर्बल और निस्तेज हो जाता है । चक्रवर्ती भरत ने जब अपने भाइयों को अपने अधीन करने का विचार किया था तो उन्होंने एकमत होकर ही उसका प्रतिकार किया था ।

१० : अस्पृश्यता का अभिशाप

जैनधर्म का विधान है कि तप करने से शूद्र भी ब्राह्मण बन सकता है । हिन्दू शास्त्र से भी इसी मत की पुष्टि होती है ।

निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि आज शूद्रो के प्रति जितनी घृणा की जाती है, पहले उतनी नही की जाती थी। पीछे से लोगो ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए मनगढन्त नियम बना लिए हैं। इन मनगढ़न्त नियमो से हिन्दू जाति की भारी क्षति हुई है।

हिन्दू जाति अपने अन्त्यज भाइयो पर इतना जुल्म करती है कि उनकी कहानी सुनकर ही हृदय रो उठता है। 'चांद' पत्रिका के अछूतांक मे टामस नामक एक भारतीय ईसाई की आत्मकथा छपी है। उसे पढ़कर हृदय हिल उठता है। अन्तरात्मा पुकारने लगती है—ससार मे अपनी सभ्यता का सिक्का जमाने वाली हिन्दू जाति आज किस प्रकार निष्ठुर होकर अपने ही भाइयो पर अत्याचार पर तुली हुई है!

टामस भारतीय ईसाई थे। बडे हंसमुख और प्रसन्नचित व्यक्ति थे। जाति-भाई होने के कारण ईसाइयो पर तो उनकी कृपा रहती ही थी, मुसलमानों पर भी वे बडे मेहरबान थे। सिर्फ हिन्दुओं पर बहुत क्रुद्ध रहते थे और उन्हें देखकर नाक-भौंह सिकोडा करते थे। वे रामपुरा मे तहसीलदार थे। हिन्दुओ के मामले में आवश्यकता से अधिक सख्ती से काम लिया करते थे।

उनके पास कई क्लर्क थे। उनमे एक ब्राह्मण पडित भी था। वह लिखता है—टामस अपने अदने से अदने मुसलमान क्लर्क को प्रेम की दृष्टि से देखते थे, पर मैं उनका रीडर था। बडी सावधानी से काम करता था, तो भी मुझ पर वक्र दृष्टि रखते थे। कभी थोडी-सी भूल भी हो जाती तो साहब मुझे डाटने-फटकारते पर मुसलमान मुंशी से बडी गलती हो जाने पर भी वे केवल मीठी फटकार बतलाते। उनके इस दुरंगे व्यवहार से मेरा हृदय जल उठता। मैं मन ही मन सोचता—मुझ पर इतनी शनिदृष्टि क्यों रहती है? पर कारण पूछने की हिम्मत न हुई।

एक बार मेरी स्त्री बीमार पडी। दवा-दारू का प्रबन्ध करने

के लिए छुट्टी की आवश्यकता पड़ी। मैंने छुट्टी माँगी तो साहब ने बुरी तरह झिड़क दिया। क्रोध के मारे मेरा सारा शरीर भन्ना उठा। आखें लाल हो गई। पर करता क्या? उनका मातहत जो ठहरा। पर निश्चय क लिया कि आज कारण पूछ कर ही रहूंगा।

अदालत बन्द होते ही मैं साहब के बंगले पर गया। साहब कुर्सी पर बैठे थे। मैं चुपचाप खड़ा हो गया। साहब बोले—पण्डित, क्या है?

मैंने नम्रता से कहा—हुजूर, कुछ प्रार्थना चाहता हूँ।

साहब रुखाई से बोले—मैं समझ गया। तुम लोगो को छुट्टी के सिवाय और भी कुछ काम है? मैं छुट्टी नही दे सकता।

मैंने कहा—नही, मैं कुछ और ही निवेदन करना चाहता हूं।

टामस—बोलो।

मैं | हुजूर कही नाराज न हो जाए।

टामस—नाराज होने की क्या बात है। बोलो।

मैं—मैं जब आपको देखता हूँ, हिन्दुओ पर अप्रसन्न ही देखता हूँ। मैं जैसा काम करता हूं, आप भली-भाँति जानते हैं। मेरे साथी मुसलमान का भी काम आप देखते हैं। मैंने आपसे पहले कभी छुट्टी नही माँगी। मेरी पत्नी इस समय बीमार है। सहानुभूति मिलनी दूर रही, मुझे झिड़कियाँ मिल रही हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि हिन्दुओ पर आपकी अप्रसन्नता क्यों है?

कहने को तो कह गया, पर प्राण काँपने लगे। उनकी तरफ देख न सका। नीची निगाह करके खड़ा हो गया। इतने मे साहब बोले—पण्डित, हिन्दुओं से मुझे बड़ी घृणा है। उन्हें देखकर मेरा खून खौल उठता है। हिन्दुओं जैसी पापी और भयकर कौम दुनियाँ में दूसरी नहीं है। तुम लोग ईसाइयो और मुसलमानों को नीच मानते हो, पर वे तुम जैसे नीच नही हैं। हो सकता है कि वे दूसरों को सताया करते हो, पर अपने भाइयों के प्रति सुख-दुःख में

सहानुभूति रखते है। एक तुम्हारी कौम है जो आपस में प्रेम करना जानती ही नही। वह अपनों को सताती ही सताती है। अपने भाइयो पर वह और अधिक निर्दयताक्रूरता करती है। फिर भी दावा करते हो कि हमारी कौम ऊँची है।

मैं इसी देश मे, इसी जाति मे पैदा हुआ हिन्दू था। मुझे ईसाई किसने बनाया ? तुमने और केवल तुमने। तुमने मुझे राम और कृष्ण की गोद से उठाकर ईसा की गोद मे फेंक दिया। अब तुम मेरे कौन हो ? हिन्दू जाति मेरी कौन होती है ? मैं तुमसे घृणा न करूगा तो क्या उनसे घृणा करूँगा जिन्होने दुख मे मेरे प्रति सहानुभूति दिखलाई और पढा-लिखा कर आदमी बनाया ?

पण्डित, तुम मेरी बात को न समझोगे। अच्छा, एक बात बताओ। तुम जिस बेंच पर बैठे हो, यदि इस पर कोई भगी या बसोर आ बैठे तो तुम क्या करोगे ?

पण्डित—हुजूर, यह भी कोई पूछने की बात है ? अव्वल तो मैं अपने पास उसे बैठने ही न दूगा। अगर बैठ जायगा तो उसकी मरम्मत किये बिना न रहूँगा ?

साहब—आखिर तुम उन बेचारों से क्यों घृणा करते हो ? क्या वे मनुष्य नहीं हैं ? क्या उन्हें तुम्हें उत्पन्न करने वाले भगवान् ने उत्पन्न नही किया है ?

पण्डित—भगवान ने तो सारी सृष्टि उत्पन्न की है, पर भगवान ने उन्हे नीच जाति मे जन्म दिया हैं। उनका काम हमारी सेवा करना है। उनका आचार-विचार भी अपवित्र होता है।

साहब—सब तो ऐसे नहीं होते। कई शूद्रो का आचार विचार पवित्र होता है। ऊँची जाति के हिन्दुओं मे कौन से सभी शुद्ध आचार विचार वाले होते हैं। उनके कई कृत्य तो शूद्रो से भी गये-बीते होते हैं।

पडित—कुछ भी हो, उच्च जाति वाले शूद्रों मे हजार दर्जे

अच्छे हैं।

साहब - यही तो तुम्हारी अघ परम्परा है । तुम लोग अपने ही हाथो अपने धर्म-शास्त्रो पर हड़ताल फेरते हो । मनुस्मृति मे साफ कहा है कि जो ब्राह्मण ब्राह्मणधर्म का पालन नही करता, वह ब्राह्मण नहीं है। शूद्र भी सुकृत्य करके ब्राह्मण बन सकता है । अच्छा बताओ, तुम्हारे मन्दिर मे कोई शूद्र ठाकुरजी के दर्शन करने जाना चाहे तो तुम उसे जाने दोगे ?

पडित—यह बिलकुल असम्भव है । इसमे मन्दिर अपवित्र हो जायगा और ठाकुरजी का अपमान होगा । अछूत लोग स्वय मन्दिर बनाकर प्रसन्नता से ठाकुरजी के दर्शन कर सकते हैं।

साहब - वहाँ ठाकुरजी का अपमान नही होगा ?

साहब की बातो से मैं हतप्रभ हो गया । मुझसे कोई उत्तर न बन पड़ा । साहब फिर बोले—तुम लोग ऐसे पोचे विचारों के कारण अछूनो पर घोर अत्याचार करते हो । वे दिन-रात तुम्हारी सेवा करते हैं, फिर भी तुम उनसे घृणा करते हो , उन्हे जली-कटी सुनाते रहते हो। कुत्ता घर भर मे फिर जाय तो कुछ नही, अछूत तुम्हारे मकान की एक भी सीढी पर पाँव नहीं रख सकता । वे तुम्हारे कुए से पानी नहीं भर सकते, तुम्हारे मन्दिरों की तरफ दृष्टि नहीं डाल सकते । कितने अत्याचार उनकी सेवा के पुरस्कार हैं ? जानते हो, तुम्हारी इस हृदयहीनता से उनके हृदय पर कितनी गहरी चोट लगती है ? और इससे तुम्हारी भी कितनी हानि हुई है ?

पडित—जी नही ।

साहब—अच्छा, सुनो । किसी छोटे गाँव में एक बसोर रहता था । उसका टूटा-फूटा झोंपड़ा गाँव से बिलकुल बाहर था । उसके झोंपडे से ही जगल लगा हुआ था । तुम समझ सकते हो कि उस बेचारे के जीवन के दिन कितनी भयपूर्ण अवस्था में

बीतते होंगे ?

वसोर का परिवार बहुत छोटा था। उसमे तीन ही आदमी थे—पति, पत्नी और उसका आठ वर्ष का लड़का। फिर भी उन्हें दोनो वक्त भरपेट रोटी नसीब नहीं होती थी। वसोर गाव मे बाजा बजाने जाता था और उसकी पत्नी दाई का काम करती थी। इस सेवा के बदले उन्हे वर्ष मे बँधा हुआ धान्य मिलता था और वह भी कितनी ही बार करुण प्रार्थना करने पर।

एक बार की बात सुनो। गर्मी के दिन थे। गाव के माल-गुजार के बेटे की शादी थी। बसोर को वहाँ बाजा बजाने के लिए जाना पड़ा। उसे आशा थी कि यहाँ से अच्छी आमदनी होगी। बेचारा दिन भर धूप मे बैठा-बैठा बाजा बजाता रहा। पर उसकी आशा घातक बन गई। बेचारे को लू लग गई। शाम होते-होते बुखार चढ आता। घर आकर चटाई पर आ गिरा। सवेरा हुआ। वसोर मालगुजार के यहाँ न पहुचा। बस उसका चपरासी यमदूत के समान उसके घर आ पहुचा। गरज कर बोला—क्यो रे कमीने! तेरा इतना दिमाग! अब तक बाजा लेकर न आया।

बसोर को उस वक्त भी बुखार चढा था। दर्द के मारे उसका सिर फटा जा रहा था। आखें लाल हो रही थीं। बडी दीनता से चपरासी से कहा—सरकार! मैं मारे बुखार के मरा जा रहा हूँ। मुझ मे चलने की हिम्मत नहीं है।

बसोर की बात सुनते ही चपरासी को क्रोध चढ आया। बिगड़ कर बोला—साले, मैं खूब जानता हूँ। तू एक नम्बर का बदमाश है। शराब पी गया होगा। अब बहाना बनाता है! चलता है कि नही ?

बसोर और उसकी पत्नी ने बहुत प्रार्थनाएं की, पर चप-रासी न माना। बसोर आखो मे आसू भर कर उसके पीछे-पीछे चला। उसने मालगुजार को अपना दुखड़ा सुनाया। मालगुजार ने

नौकर को आज्ञा दी—इस बदमाश को गाँव मे किसने बसाया है ? इसे यहाँ से निकाल बाहर करो और निकालते-निकालते इतना मारो कि यह भी याद रखे कि किसी के साथ बदमाशी की थी।

अब बसोर क्या करता ? जान पर खेल कर बाजा बजाता रहा। दियाबत्ती होते-होते लडखडाता हुआ घर लौटा। द्वार पर पहुँचते पहुँचते उसे चक्कर आ गया। गिर पडा। आधी रात होते होते उसकी जीवन-ज्योति सदा के लिए बुझ गई। उसकी पत्नी निराश्रित हो गई। बालक अनाथ हो गया।

प्रातःकाल हुआ। विधवा बसोरिन ने बिलखता हृदय लेकर द्वार खोला। फिलहाल उसके सामने पति के शव को ठिकाने लगाने का सवाल था। पास मे पैसा नही। सारा गाँव उसे अस्पृश्य-अपवित्र समझता है पति का शव ठिकाने कैसे लगेगा ? उस गाँव के दूसरे कोने मे एक बसोर और रहता था। विधवा, पति के पास अपने अज्ञान बालक को बिठला कर उसके पास गई। वह उससे बोला बहिन मैं भी तुम्हारे समान दुखी हूँ। मैं अकेला आदमी क्या करूँ ? तुम मालगुजार के यहाँ जाओ। अच्छा, मैं भी चलता हूँ। शायद उसे दया आ जाय और कुछ बन्दोबस्त कर दे।

बसोरिन उसके साथ मालगुजार के घर पहुँची। मालगुजार दालान में बैठा हुक्का गुडगुडा रहा था। उसे देखते ही बसोरिन चीख मार कर रो उठी। बोली—सरकार, मैं लुट गई। विधना ने मेरा सुहाग छीन लिया। मालगुजार पशु के समान था। उसके हृदय में दया का एक कण भी नहीं था। वह बिगड कर बोला—लुट गई तो मैं क्या करूँ ? मैं तो तेरा सुहाग लौटा नही सकता। राड सवेरे-सवेरे अपशकुन करने आ गई !

साथ के बसोर ने कहा—सरकार, आप सच कहते हैं। कोई किसी का सुहाग नही लौटा सकता। दया करके ऐसा प्रबन्ध कर दीजिए कि उस बेचारे की लाश ठिकाने लग जाय।

इस पर मालगुजार और भी तीखा होकर बोला—मैंने क्या तुम्हारे बाप का कर्ज खाया है ? जाओ, अपनी राह लो ।

बसोर हाथ जोड़कर कातर स्वर से कहने लगा—सरकार, ऐसा न कहिए । आप हमारे माई-बाप हैं । हम आपके राज्य में रहते हैं । आप ही हमारी न सुनेंगे तो कौन सुनेगा ?

पर उस पाषाण हृदय पर इस कातरोक्ति का कुछ भी प्रभाव न पड़ा । वह गरज कर बोला—सीधी तरह जाते हो कि नहीं ? परन्तु बसोरिन न मानी । विलाप करते-करते लेट गई और बोली —पिता, मैं आपकी बेटी हूँ । मुझ पर दया कीजिए ।

अब तो मालगुजार का गुस्सा और ज्यादा भड़क उठा । कहने लगा—हाय, हाय, सवेरे सवेरे ऐसा अपशकुन ! कोई है इन सालों को मार-मार कर अभी हटा दो ।

टामस बोले—पंडित, यह है तुम्हारी हिन्दू जाति की उच्च-तर करतूत ! हिन्दू अपनी सेवा करने वालों के साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार करते हैं । पर तुम्हारे समाज की गौरव-गाथा यहीं समाप्त नहीं हो जाती । आगे और सुनो ।

पति के मरने से बसोरिन बड़ी दुखिया हो गई । अब पुत्र ही उसका एक मात्र आधार था । वही उसकी आँखों का तारा और आशाओं का केन्द्र था उसका नाम दमरू था । माता के लाड-प्यार से वह कुछ स्वच्छन्द हो गया था । रोटी खाई नहीं कि बाहर चला जाता । माता भी उससे कुछ न कहती थी ।

मालगुजार के घर के पिछवाड़े बेर के कई पेड़ लगे थे । मीठे-मीठे बेर खाने के लालच से दमरू वहाँ पहुँच जाया करता था । मालगुजार का एक सात-आठ वर्ष का बालक भी बेर बीनने आया करता था बच्चे छुआछूत का भेद नहीं समझते । दमरू पेड़ पर चढ़ जाता और डालियाँ हिलाकर पड़ापड़ बेर बरसाता । माल-गुजार का लड़का बेर बीनता । बाद में दोनों बाँट कर खाते ।

धीरे-धीरे दोनों मे बड़ा प्रेम हो गया। एक दिन मालगुजार ने दोनो को देख लिया। उसे बड़ा क्रोध आया। अपने लड़के को दो चपत लगा कर कहा—खबरदार, अब इस नीच के साथ मत रहना। दमरू से कहा—खबरदार आगे से इधर न आना। नही तो चमड़ी उधड़वा लूंगा। मालगुजार के इतना कहने पर भी दोनों मिलते रहे।

गाँव में एक छोटा-सा मन्दिर था। एक दिन मालगुजार के लड़के ने दमरू से कहा—आज मन्दिर मे जलसा होगा। प्रसाद मे पेड़े बँटेंगे। तुम भी मेरे साथ चलो। पेड़े का नाम सुनते ही दमरू नाच उठा। उस बेचारे को नहीं मालूम था कि मेरे जाने से मन्दिर अपवित्र हो जायगा। ताली पीटता हुआ वह मन्दिर मे जा पहुंचा। उसे देखते ही मन्दिर में हलचल मच गई। यह हलचल देख दमरू भौंचक्का-सा खड़ा रह गया। पुजारी पागल हो उठा। बोला—कलयुग मे कमीनो के हौंसले इतने बढ़ गये हैं! यह कह कर वह दमरू पर टूट पड़ा। उसे पशु से भी बुरा पीटा। हिन्दू लोग अहिंसा की दुहाई दिया करते हैं। वे छोटे-छोटे कीड़ों पर अवश्य दया करते हैं, पर उनके हृदय में मनुष्य रूपधारी अछूतों के लिए दया का एक भी कण शेष नहीं है।

प्रसाद के बदले मार खाकर दमरू रोता-बिलखता घर पहुंचा। माता अपने लाल की यह दशा देख अस्थिर हो गई। गोद में लेकर स्नेहपूर्वक पूछा—क्या हुआ? दमरू ने सब हाल सुनाया। माता बोली—बेटा, उधर कभी मत जाना।

मन्दिर में जाने की भर पूर सजा दमरू को मिल चुकी थी, फिर भी लोगों को इससे सन्तोष न हुआ उन्होंने मालगुजार के पास जाकर शिकायत की। बसोरिन बुलाई गई। लोग क्रोध से पागल हो रहे थे। अछूत स्त्री होने के कारण बसोरिन पर हाथ नहीं उठाया, केवल गालियाँ देकर रह गये।

ठाकुरजी को श्रद्धा के साथ मस्तक झुकाता था और अब घृणा नहीं करोगे, क्योंकि वह हिन्दू नही है और तुम्हारे ठाकुरजी से घृणा करता है। कैसी मूर्खता है ? क्यों आँखें रहते अन्धे हो गये हो ?

साहब—महात्मा ईसा की शीतल छाया मे दमरू की यथेष्ट उन्नति हुई और टामस नाम लेकर वह तुम्हारे सामने तहसीलदार के रूप मे तुम्हारा स्वामी बना बैठा है !

मित्रो ! इस उदाहरण से मिलने वाली शिक्षा स्पष्ट है। हिन्दुओ, नेत्र खोल कर देखो।

९१ : माया की महिमा

दो मित्र थे। दोनों शामिल रहते थे। एक दिन दोनों ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि किसी भी अवस्था में हम एक दूसरे को नही भूलेंगे। कोई कैसा ही ऋद्धिशाली हो जाय अथवा कैसा भी गरीब रहे, एक दूसरे को बराबर याद रखेगा और सहायता करेगा। उस समय दोनो की स्थिति समान थी, अतएव यह प्रतिज्ञा करने में किसी को कोई कठिनाई नही थी।

कुछ समय बाद एक मित्र को कोई बडा ओहदा मिल गया। अधिकार भी मिल गया और धन भी प्राप्त हो गया। दूसरा मित्र ज्यों का त्यों गरीब ही रहा।

गरीब मित्र ने सोचा— मेरा मित्र सब प्रकार से सम्पन्न हो गया है, लेकिन मुझे कभी स्मरण ही नहीं करता। सचमुच गरीब को गरीब के सिवाय कोई नही पूछता। कहावत है—

माया से माया मिले, कर-कर लम्बे हाथ ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात ॥

गरीब मित्र ने सोचा—मेरा मित्र मुझे नही पूछता तो न सही, मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसे नही भूल सकता । मैं स्वय उसके पास जाकर मिलूंगा ।

यह सोचकर गरीब अपने धनी मित्र के पास गया । उसने पूर्ववत् स्नेह के साथ अपने मित्र का अभिवादन किया । मगर धनी मित्र उसकी ओर चकित दृष्टि से देखने लगा और बोला—मैंने पहचाना नही, कौन हो तुम ?

गरीब ने सोचा—आगे की बात तो दूर ही रही, यह तो मुझे पहचानता भी नही है ! प्रकट में उसने कहा—मैंने सुना था कि मेरा मित्र अन्धा हो गया है । सोचा, जाकर देख आऊँ, क्या हाल है ? बिलकुल अन्धा हो गया है या थोडा बहुत सूझता भी है ? यहाँ आकर देखा—मित्र तो एकदम ही अन्धा हो गया है !

धनी मित्र ने कहा—यह कैसे कह रहे हो ?

गरीब ने उत्तर दिया—आप मुझे बिलकुल भूल गये । अब आपकी वह आँखें नहीं रही, जो प्रतिज्ञा करते समय थी । अब मैं भी यहाँ से भागता हूँ, वर्ना मैं भी अन्धा हो जाऊँगा !

माया के प्रभाव से प्रभावित होकर लोग अन्धे हो जाते हैं ।

१२ : अर्थ का अनर्थ

कई बार वक्ता लोग कथा के बाहरी वर्णन को बड़े अलंकारो से सजाते हैं पर सार-भूत वर्णन को बहुत सूक्ष्म-रूप—अल्प

रूप देते हैं, इसलिए श्रोता उस कथा के सार को समझ ही नहीं सकते। कई जगह ऐसा भी होता है कि श्रोता ही अर्थ का अनर्थ कर देता है! वक्ता कहता कुछ और है और श्रोता कुछ और ही समझता है।

एक पण्डितजी रामायण की कथा बाँच रहे थे। उन्होंने कहा—'सीता-हरण हो गया' पर एक श्रोता ने समझा—'सीता का हरणिया हो गया' यानी सीता मृगी (हरिणी) बन गई।

कथा रोज बँचती थी। वह श्रोता हमेशा उत्सुक रहता कि देखें सीता, हरिणी से वास्तविक सीता कब बनती है। बहुत दिनो बाद कथा समाप्त होने के अवसर तक भी, हरिणी बनी हुई सीता की वास्तविक सीता होने की बात न सुनी, तब उस श्रोता से न रहा गया। वह बोल ही तो उठा—'पण्डितजी महाराज, सीता हरिणी तो हो गई पर फिर सीता हुई या नही?'

पडिण्तजी ने अपने सिर पर हाथ लगाकर कहा—'फूटे नसीब तुम्हारे और हमारे शामिल ही! मैंने कहा था क्या और तुम समझे क्या।'